

THE
LIBRARY
OF THE
MUSEUM OF
ART AND
ARCHAEOLOGY
OF THE
UNIVERSITY OF
CHICAGO

जनवरी १९४१

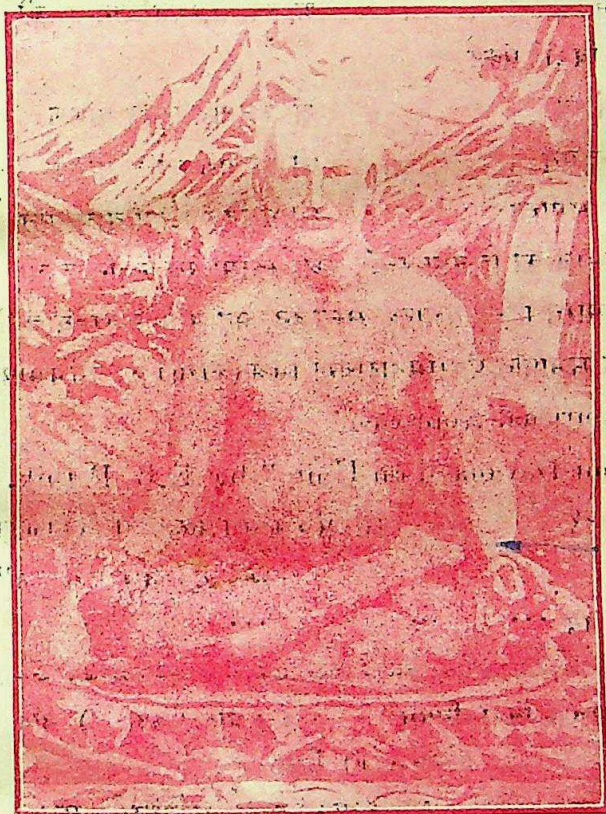
Reg. No. L 2121



ऋग्वेद

यजुर्वेद

सावदाशक



सम्पादक— प्रो० सुधाकर, एम० ए०

सं० सम्पादक— श्री विष्णुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश २, एक प्रति का २० विदेश से २ शि० वार्षिक

अथर्ववेद

सामवेद

लेख-सूची

सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	वेद की शिक्षाएँ	...	५३७
२	मानस पाप	श्री पं० गंगाप्रसादजी एम० ए० रिटायर्ड जज	५३८
३	स्वप्न संसार	श्री ज्ञानी	५४२
४	आर्यसमाज और उसकी प्रगति	श्री पं० नरदेव शास्त्री	५४६
५	सम समुचयवाद	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी	५५१
६	आर्य विवाह एकट		५५४
७	सुमन संचय	श्री रघुनाथप्रसाद पाठक	५५८
८	महिला-जगत्	श्री रघुनाथप्रसाद पाठक	५६३
९	साहित्य समीक्षा	श्री धर्मदेव विद्या वाचस्पति	५७१
१०	आर्य समाज की चिनगारियाँ	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी	५७५
११	दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन, मद्रास के ग्यारहवें अधिवेशन के सभापति पं० रामनारायण मिश्र (काशी) का अभिभाषण		५७८
१२	The Spiritual Approach		५८५
१३	"Swami Dayanand on Unity" by K.B. Pathik.		५८६
१४	सन् १९४१	श्री पं० रामगोपाल जी विद्यालङ्कार सम्पादक बीर "अर्जुन"	५९०
१५	सम्पादकीय ...	...	५९२

आर्यसमाज के नियोगनियम

१। प्रवि सैकड़ा १। प्रति

प्रवेश-पत्र ॥ सैकड़ा ।

मिशन का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

बीज

सस्ता, ताजा, बढ़िया सब्जी व फूल-फल का

बीज और गाछ हमसे मँगाइये ।

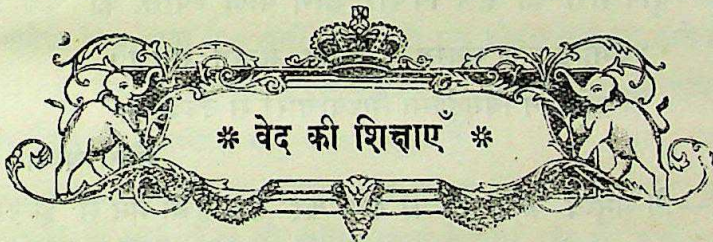
पता:—मेहता डी० सी० वर्मा, बेगमपुर (पटना)

॥ ओ३म् ॥



* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १५	पौष १९९७	अङ्क ११
{ जनवरी १९४१ ई० }	[दयानन्दाब्द ११६]	



अपध्वान्तमृणुं हि पूर्धि चक्षुः । साम० ४।१।३७

हमारा अन्धकार दूर करदो और हमारी आंखें खोलदो ।

Remove the darkness of our ignorance and open our eyes
to see Truth and Reality.

*

*

*

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम ।

यजु० २५।११

हम कानों से उत्तम बात ही सुनें ।

May we always hear nice and peaceful things with our ears.

अध्यात्म-धारा

मानस पाप

(ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० स्टियर्ड चीफ जज)

—०—

कुछ लोगों का कहना है कि कलियुग में मानस पाप पाप नहीं होता । यह बड़ी भयंकर भूल है । क्योंकि मानस पाप सब पापों का मूल है, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है, “यन्मनसा मनुते तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति ।” अर्थात् मनुष्य जैसा मन से विचार करता है, वैसा वाणी से कहता है, और जैसा वाणी से कहता है, वैसा कर्म से करता है ।

कुछ मनुष्य यह युक्ति दिया करते हैं कि यदि हम वास्तव में शरीर से बुरा कर्म न करें, तो केवल मन में बुरे विचार होने से क्या हानि हो सकती है, और यदि कुछ होगी तो हमको ही होगी, किसी दूसरे को उससे क्या हानि पहुंच सकती है । फिर केवल बुरे विचारों का मन में आना पाप क्यों माना जाय ?

इस विषय पर कृष्ण महाराज ने ‘गीता’ में कहा है—

दुर्विचारों का फल विचार करने वाले व्यक्ति को

“कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारी स उच्यते ॥”

गीता अध्याय ३ । ६

अर्थ—जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को रोक कर बैठा हुआ मन से इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करता है, वह मूढ़ात्मा मिथ्याचारी है । और भी योगिराज कृष्ण गीता में कहते हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहाद् स्मृतिर्विभ्रमः ।

स्मृतिर्भ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥”

अध्याय २ । ६२-६३

अर्थ—विषयों का ध्यान करने से मनुष्य को उनके साथ संग व राग पैदा

(५३६)

होता है, उससे काम अर्थात् तीव्र इच्छा पैदा होती है। काम की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूढ़ता होती है। मूढ़ता से स्मृति में दोष आता है। स्मृति के बिगड़ने से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि के नाश से उस मनुष्य का नाश हो जाता है।

इन श्लोकों में कृष्ण महाराज ने मनुष्य के धार्मिक वा राजनैतिक पतन का कैसा अच्छा चित्र खींचा है। केवल मन में विषयों का ध्यान करने से वह सीढ़ी दर सीढ़ी गिरता जाता है और अन्त में उसकी बुद्धि का नाश होकर सर्वनाश हो जाता है। क्योंकि मनुष्य में बुद्धि ही तो ऐसी वस्तु है जिससे मनुष्य और पशु में भेद होता है; जब बुद्धि नष्ट हो गई तो मनुष्य में शेष रहा ही क्या ?

इससे स्पष्ट है कि मानस पाप से मनुष्य को स्वयं साधारण हानि नहीं किन्तु बड़ी भारी हानि होती है जिससे उसका सर्वनाश हो सकता है। बुरे विचारों से दूसरे लोगों को भी भारी हानि पहुंचती है। क्योंकि एक मनुष्य के बुरे विचारों से मानस वातावरण दूषित होकर अन्य मनुष्यों के मनों को हानि पहुंचती है। इसकी कुछ व्याख्या की आवश्यकता है।

यदि हम एक पानी के तालाब में पत्थर फेंकें तो उससे पत्थर के चारों ओर लहर फैलती है। इसी प्रकार यदि एक घण्टी बजायी जाय तो घण्टी से वायु में लहर पैदा होकर चारों ओर फैलती है। जो आंखों से नहीं दीखती है, क्योंकि जल की अपेक्षा वायु सूक्ष्म है। इसी तरह यदि एक दीपक जलाया जावे तो उससे आकाश में लहरें पैदा होकर चारों तरफ फैलती हैं। इन्हीं लहरों के द्वारा दीपक का प्रकाश फैलता है। आकाश वायु से भी सूक्ष्म है।

मानसतत्त्व जिसके द्वारा विचार एक मनुष्य के मन से दूसरे मनुष्यों के मन तक पहुँचते हैं आकाश से भी अधिक सूक्ष्म हैं और वह भी उसी तरह सर्वत्र फैला हुआ है जैसा कि आकाश और वायु। उसमें भी लहरें होती हैं। जब कोई मनुष्य बुरा विचार अपने मन में करता है तो उससे मानसतत्त्व में लहरें पैदा होकर चारों ओर फैलती हैं। जैसे एक दुर्गन्धित पदार्थ से वायु में लहरें होकर दुर्गन्धि चारों ओर फैलती है और आसपास की सारी वायु में दुर्गन्धि फैला देती है, उसी प्रकार एक मनुष्य के विचार मानसतत्त्व में लहरें उत्पन्न करके सारे मनुष्य वातावरण को दूषित कर देते हैं। जैसे दुर्गन्धित वायु से उन मनुष्यों का स्वास्थ्य जो उसमें श्वास लेते हैं हानि पहुंचती है, उसी प्रकार एक मनुष्य के विचारों से

(५४०)

वातावरण मलिन होकर उन मनुष्यों को हानि पहुंचाती है जो वहां रहते व कार्य करते हैं ।

उस व्यक्ति को जो दुर्विचारों का लक्ष्य हो

मनुष्य के बुरे विचारों में उस मनुष्य को विशेष हानि पहुँचनी सम्भव है जिसके विरुद्ध ये विचार किये गये हों जैसे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के विचार । क्योंकि ऐसे विचारोंकी लहरें उस मनुष्य पर विशेष प्रभाव डालती हैं जो उनके लक्ष्य हों । इससे सिद्ध है कि मन में बुरे विचारों को स्थान देने से विचार करने वालों को हानि होती है जो उनका लक्ष्य हो उसकी भी हानि होती है और समाज के लिये हानि होती है । इसलिये बुरे विचारों को मन में आने ही नहीं देने चाहिये और जो आवें तो उनको तुरन्त ही निकाल देना चाहिये । इसके सम्बन्ध में वेद के नीचे लिखे मंत्र हैं:—

मानस पाप के सम्बन्ध में वेद मन्त्र

परोपैहि मनस्पापं किमशस्तानिशंससि ।

परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः ॥

अथर्व० ६।४५।१५

अर्थ—हे मन के पाप दूर हटजा, क्या बुरी बातें बताता है । हटजा, तुझको मैं नहीं चाहता । वनों वृक्षों में फिरता रह, मेरा मन घर में और गो आदि में पशुओं की पालना में है ।

अपेहि मनस्पतेऽपक्राम परश्चर ।

परो निर्वृत्त्याआचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः । ऋ० १० । १६४ । १

अर्थ—हे मनको पतित करने वाले कुविचार ! हटो, दूर भागो, परे चलो । दूर के विनाश को देखो । जीवित मनुष्य का मन बहुत सामर्थ्य से युक्त है ॥

उनका आशय

हम अपने घर के स्वामी हैं । हमें अधिकार है कि यदि कोई चोर-डाकू या अन्य दुष्ट पुरुष आवे तो उसको घर में आने से रोक देवे, और यदि आज्ञाये तो निकाल दें । इसी प्रकार अपने मन रूपी मन्दिर के हम स्वामी हैं । यदि कोई दुर्विचार उसमें आवे तो उसे रोक दें और आज्ञावे तो निकाल दें ।

उपर लिखे मंत्रों के कैसे प्रबल शब्दों में दुर्विचारों को मन से हटा देने का उपदेश है । और दुबारा, तिबारा ऐसे विचारों के लिये कहा गया है कि दूर हटजा

(५४१)

और परे चलो इत्यादि । कोई मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि ऐसे शब्दों से क्या लाभ ? इन शब्दों में मानस बल (Thought power) और उसके द्वारा आत्म चिकित्सा Hypnotism का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है । जो लोग Hypnotism से शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा करते हैं वे रोगी से कहलाते हैं कि मेरा रोग दूर हो रहा है मैं स्वस्थ हो रहा हूँ इत्यादि इन शब्दों का रोगी पर बहुत प्रभाव पड़ता है और उसका रोग दूर होने लगता है इस क्रिया को Suggestions...देना कहते हैं दूसरे मनुष्य Operator कहलाने की आवश्यकता इसलिये होती है कि रोगी Subject की संकल्पशक्ति (Will power) से कम रहती है यदि किसीमनुष्य की संकल्प शक्ति अच्छी बलवती हो तो वह स्वयं कहेगा कि हे मेरे रोग हटजा, भागजा, दूर हो जा मैं अब तेरे वश में नहीं हूँ । इस क्रिया को Autosuggestion कहते हैं और यदि दृढ़ इच्छा और संकल्प के साथ ऐसे शब्द कहे जावें तो उनका रोग दूर करने में बड़ा प्रभाव होता है । दुर्विचारों के दूर करने में भी (जो आत्मिक रोग है) ऐसे शब्दों का प्रयोग प्रभावशाली होता है । ऊपर लिखे मन्त्रों में उक्त शब्दों के प्रयोग का यही रहस्य है और महत्त्व है ।

महात्मा नारायण स्वामी जी की

उपनिषदों की टीका का संग्रह

उपनिषद् प्रेमियों के लाभार्थ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरेय उपनिषदों का संग्रह एक ही जिल्द में तैयार कर दिया गया है । मूल्य १।=॥

मिलने का पता :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

स्वप्न संसार

[श्री ज्ञानी]

हम सब स्वप्न लेते हैं। परन्तु क्यों? स्वप्न क्या है? क्यों आते हैं? क्या ये सच भी होते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर, संक्षेप में, हम यहां देने का प्रयत्न करेंगे।

आप काम समाप्त करके कुछ देर यों ही खाली बैठिये। यद्यपि शरीर निश्चेष्ट है परन्तु मन अपनी उधेड़-बुन में लगा हुआ है। उसे खाली बैठने की आदत नहीं। जैसे पशु निकम्मे बैठे जुगाली करते रहते हैं, वैसे मन भी एक तरह की जुगाली किया करता है। उसने जिन कामों को देखा, सुना व किया है, उन्हें बारम्बार मानसिक क्षेत्र में दुहराता है। कभी अपने आप ही मुस्कराने लगता है और कभी बैठे उदास हो जाता है।

यहीं दशा रात को सोये हुए होती है। मन के विचारों का तौता बंधा हुआ है। वही दिन भर के काम हम रात को भी दुहरा रहे होते हैं। यद्यपि शरीर सोता है, परन्तु मन यथापूर्व जाग्रत है। उसकी जुगाली दिन-रात समान-रूपेण होती रहती है।

×

×

×

मनोविज्ञान के पण्डितों ने हमारे मन के दो विभाग किये हैं। एक बाह्य (Conscious) और दूसरा अन्तर (Sub-conscious)। बाह्य-मन वह है जो जाग्रत अवस्था में बुद्धि की सहायता से काम करता है। अन्तर मन वह है जो हृदय की छुपी हुई वासनाओं को प्रकाश में लाता है।

इन दो भेदों का कारण यों समझाते हैं। बचपन से ही मनुष्य में अनेक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। कुछ तो सहज ही पूरी हो जाती हैं और कुछ के पूरा होने में रुकावटें पेश आती हैं। ये इच्छाएँ पूरी न हो सकने के कारण हृदय के अन्तर भाग में जा छुपती हैं और समय समय पर अपना सिर उठाती हैं। इन्हें अंग्रेजी में Repressions कहते हैं। हिन्दी में हम इन्हें वासनाएँ कह सकते हैं।

×

×

×

आप एक ज़मीन में हल चलाकर, सुहागा फेर कर, पानी देकर गेहूँ बोइये। थोड़े दिनों बाद आप देखेंगे कि गेहूँ के साथ कुछ और पौदे भी सिर उठा रहे हैं। आप हैरान होंगे कि ये कहां से आए? आप ने तो केवल गेहूँ बोए थे।

(५४३)

जमीन की सतह के अन्दर अप्रत्यक्ष रूप से अनेक बीज विद्यमान होते हैं। वे अनुकूल अवस्थाएं पाकर अंकुरित होते हैं। ठीक यही दशा हृदय के अन्तर भाग में छुपी वासनाओं की है।

हम जिन व्यक्तियों को प्रायः धार्मिक व कर्मनिष्ठ समझते हैं उनकी वास्तविक परीक्षा तो तभी होती है जब विषय-वासना के वायु-मण्डल में रहकर भी वह अपनी कर्तव्य परायणता का परिचय दें।

प्रायः प्रत्येक मनुष्य में “जैकिल और हाइड” का दुरंगापन होता है। वह दिन के वक्त या समाज के सामने, भले आदमी की जो नकाब पहिनाता है, वह एकान्त में, अथवा रात्रि में उतर जाती है। तब वह अपनी वासनाओं के नग्न रूप में होता है। यही कारण है स्वप्नावस्था में हम जिन कमजोरियों का प्रदर्शन करते हैं उन्हें जानकर, दिन के समय हमें स्वयं लज्जा आती है।

इसीलिये मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में हमारी स्वप्नावस्था जाग्रत की अपेक्षा अधिक सत्य है। स्वप्न-संसार में कोई भौतिक प्रतिबन्ध नहीं। कोई समाज का विधि-निषेध नहीं। कोई कृत्रिम भय अथवा प्रलोभन नहीं।

डाक्टर फ्रायड से जब स्वप्न का कारण पूछा गया तो उत्तर में उसने केवल दो शब्द कहे :— Wish fulfilment- अर्थात् इच्छापूर्ति। जिन इच्छाओं को हम किन्हीं कारणों से दिन के वक्त या जाग्रत अवस्था में पूरा नहीं कर सकते, उन्हें हम रात के समय स्वप्न-अवस्था में आसानी से पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

उदाहरणार्थ—एक दरिद्र दिन में तो दाने दाने का मोहताज है, लेकिन रात के समय स्वप्न की हालत में बड़े २ महल देखता है जिन में अनेक दास दासियां उसकी सेवा के लिये तत्पर हैं। और भण्डार नानाविधि भोज्य पदार्थों से भरपूर है।

इसी प्रकार एक विधवा जिसका पति उसे संभार में छोड़कर “उस पार” चला गया है। जिसे दिन भर रोते विलपते बीताता है, वह रात के समय, स्वप्न-जगत में अपने पतिदेव से अत्यन्त प्रेम-पूर्वक मिलती है और हंसी खुशी में शरद् ऋतु की लम्बी रातें भी भ्रमकियों में काट देती है। उसके लिए दिन की अपेक्षा रात अधिक सत्य है।

शायद यही कारण है कि संसार के धर्माचारियों ने स्वर्ग का वर्णन स्वप्नात्मक किया है। जहां दूध और शहद की नदियां बहती हैं और फलों फूलों से असंख्य वृक्ष फूल रहे हैं।

फिर स्वर्ग में प्रवेश अमीरों के लिए उतना ही कठिन है जितना अंग के लिए सुई के नकुए से गुजरना।

(५४४)

वह स्वप्न-संसार या स्वर्ग तो केवल मात्र उन दुखियों और दरिद्रों का है जो यहाँ दिन रात कराहते गुज़ारते हैं। जिनके पेट की आग केवल श्मशान की आग में ही बुझती है।

×

×

×

क्या स्वप्न सच भी होते हैं ? इसका उत्तर “हाँ” और “नहीं”—दोनों में दिया जा सकता है। संसार की प्रायः सब घटनाओं का परस्पर कारण-कार्य सम्बन्ध है। जैसे एक अंकुर से दूसरा अंकुर फूटता है वैसे ही एक घटना से दूसरी घटना का प्रादुर्भाव होता है।

दिन के समय जब हम विचारों में तल्लीन होते हैं तब हम सहज ही अनेक परिणामों पर पहुँचते हैं जिनमें कुछ ठीक और कुछ गलत साबित होते हैं।

यही दशा स्वप्नों की है। उनमें भी कई सच और कई झूठ होते हैं। आखिर स्वप्न दिन के विचारों का प्रतिबिम्ब मात्र ही तो है !

हां ! एक बात है। मनुष्य के अन्तर्हृदय की कुछ गुप्त शक्तियाँ हैं जिन्हें हम अभी तक पूरी तरह से नहीं समझ पाए। उदाहरणार्थः—“टैली पैथी” और “क्लेयर वायेन्स”—दूर होती हुई घटनाओं को देखना व सुनना।

मान लीजिए कि हमारा एक मित्र देहली से चलकर लखनऊ आ रहा है। उसने हमें अपनी खानगी का खत नहीं लिखा। पर क्योंकि वो हमारे बारे में लगातार सोच रहा है और हमसे मिलने का बहुत इच्छुक है, संभव है कि उसकी यह तीव्र इच्छा किसी अप्रत्यक्ष रूप से हम तक पहुँचे और दिन में अथवा रात्रि में हठात् यह विचार उत्पन्न करे कि अमुक व्यक्ति देहली से लखनऊ आ रहा है।

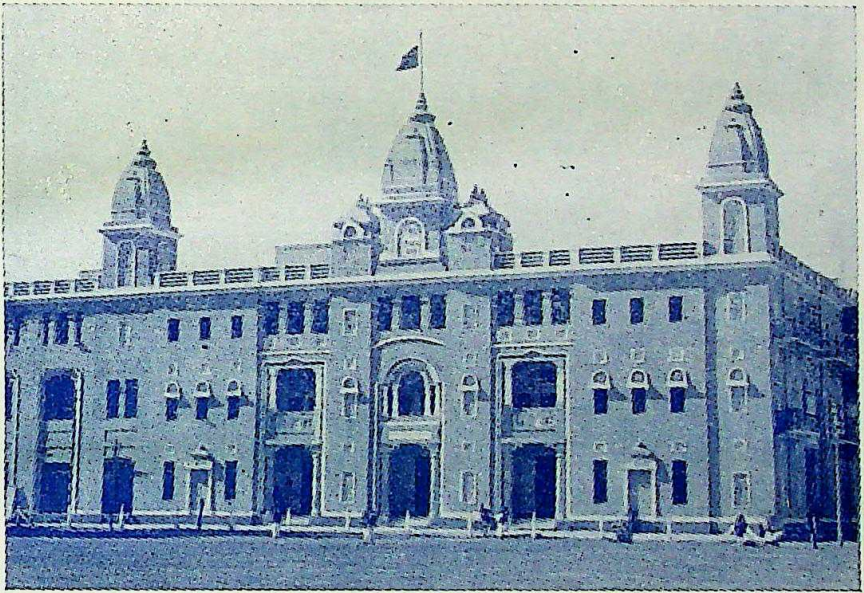
इसी प्रकार किसी निकटतम संबंधी के विषय में भी हम जान सकते हैं। मानो एक हमारी छोटी बहिन है जिसे हम चाहते हैं। हठात् वह बीमार पड़ती है। उसके माता-पिता चिन्तित हैं। डाक्टर भी निराशा की सूचना देता है।

हम हजारों मील दूर बैठे हुए भी अपनी तीव्र इच्छा शक्ति से उस बहिन का पूरा हाल जान सकते हैं। दिन के समय क्योंकि बाहर का कोलाहल हमें विक्षिप्त सा रखता है, इसलिए रात्रि की शान्ति में हम अपनी बहिन की बीमारी का सारा रूप एक स्वप्न के आकार में देखते हैं। और हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं जब अगले दिन हमें खत मिलता है जिसमें दू वही लिखा होता है।

पाठकों ने शायद ऐसे अनेक व्यक्तियों के विषय में पढ़ा होगा जो रात को, नींद में अपनी समस्याओं को सुलभाया करते हैं।

एक गणितज्ञ है। कोई कठिन प्रश्न उसके सामने है। हल नहीं सूझता। दिनभर

देहली का दर्शनीय भवन आर्यसमाज दीवानहॉल



आर्यसमाज दीवानहॉल का ५५वां वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ जनवरी १९४१ में होना निश्चित हुआ है इसके उपलक्ष में २४ जनवरी १९४१ को बड़े समारोह के साथ नगरकीर्तन का जलूस निकलेगा ।

(५४५)

मेहनत की है लेकिन फिजूल । थककर सो जाता है । रात को स्वप्न में वो उसका हल बड़ी आसानी से पा जाता है ।

एक डाक्टर है । किसी मरीज़ के सब चिन्हों को देखकर भी उसकी बीमारी को नहीं समझ सका । बहुत इलाज किए, लेकिन फायदा नहीं हुआ । इसी चिन्ता में सो जाता है । आप उसकी प्रसन्नता का अनुमान कीजिए जब स्वप्न की अवस्था में वह अपने रोगी की शारीरिक दशा को चित्रवत् देखता है और फौरन रोग का निदान समझकर चिकित्सा भी लिख देता है ।

इसी प्रकार एक कवि है । उसने काश्मीर की घाटियों में सन्ध्या समय अकस्मात् एक रमणीय दृश्य देखा है । चाहता है उस दृश्य को सुन्दर शब्दों में चित्रित करे । परन्तु शब्द बराबर जुड़ते ही नहीं । बहुत प्रयत्न किया । सब व्यर्थ । आखिर सो जाता है । कुछ ही देर में रात की ठण्डी हवा और चारों ओर शान्त वायु-मण्डल उसके दिमाग को तरो-ताज़ा बना देते हैं । अब कविता स्वयमेव फूट पड़ती है । और वह स्वप्न में मस्त होकर अपनी कविता गा रहा है ।

X

X

X

क्या हम स्वप्नों पर काबू पा सकते हैं ? अवश्य । जैसे हम अपने दिन के विचारों को रोक सकते हैं, वैसे ही रात्रि के स्वप्नों को भी । ये दोनों ही मन के विकार हैं जो खुद-बखुद (Mechanically) हुआ करते हैं ।

इनको बुद्धि द्वारा रोका जा सकता है । दिन के समय जब आप किसी अनुचित विचार को कर रहे होते हैं तो बुद्धि हठात् आज्ञा देती है “हाल्ट” ! थम जाओ । विचारों की फौज फौरन रुककर “अटैन्शन” (सावधान) हो जाती है ।

इसी प्रकार यदि आप अपनी बुद्धि को प्रेरणा कर दें कि अमुक अमुक विचार सरणी को नहीं आने देना, तो वो स्वयमेव दिन और रात—दोनों समय इसका ध्यान रखेगी ।

अस्तु स्वप्न का विषय बहुत लम्बा है । बालक से लेकर वृद्ध तक सभी इस विषय में थोड़ा बहुत अनुभव रखते हैं । हम चाहते हैं कि हमारे पाठक “स्वप्न-संसार” के विषय में गंभीरता से सोचें और स्वप्नों को स्वयमेव समझने का प्रयत्न करें ।

आर्यजगत् के धुरीणों से आर्यसमाज और उसकी प्रगति

(ले०—श्री० पं० नरदेव, शास्त्री, वेदतीर्थ, ज्वालापुर)

आर्यसमाज की प्रगति का इतिहास एक मनोरञ्जक इतिहास है। उससे बहुत बोध हो सकता है। उसका मनन करनेके पश्चात् अपने अनुभव को सम्मुख रखकर हम अपनी वर्तमान गति-विधि में अभीष्ट परिवर्तन भी कर सकते हैं। अनुभव तो यही बतलाता है कि हमको अपनी गति-विधि में बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा। सब से पहिले हमको अपनी संस्थाओं को सँभालना पड़ेगा। वर्तमान प्रणाली की आर्य समाज द्वारा प्रचलित संस्थाओं को तो उसी गति-विधि में जाना पड़ेगा, उसी प्रणाली पर चलना पड़ेगा जिसपर कि शासक वर्ग का शिक्षा विभाग चलाता रहेगा, इसीलिए उस विषय में हम कुछ नहीं लिखेंगे।

आर्य संस्थायें

हम उन संस्थाओं के विषय में लिखेंगे जो प्राचीन शिक्षा-दीक्षा के प्रचार तथा प्रसार के लिए खोली गई हैं और जिन्होंने गत तीस-चालीस वर्ष में बहुत कुछ कार्य किया है और जिनमें समय की गति को देखते परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इन प्राचीन संस्थाओं में तीन ही प्रमुख संस्थायें हैं—इन तीनों में अभीष्ट परिवर्तन होने से शेष छोटी मोटी संस्थाओं में स्वयं परिवर्तन हो जायगा। इन तीनों संस्थाओं में दो सशुल्क संस्थाएँ हैं। एक महा-विद्यालय निःशुल्क है और समय की गति देखते संचालकों को स्वयं आश्चर्य हो रहा है कि संस्था कैसे चल रही है। कांगड़ी गुरुकुल और महाविद्यालय ज्वालापुर दोनों संस्थाएँ सट गई हैं। दोनों के खेत मिल रहे हैं। ईश्वर जाने इन दो संस्थाओं को इतने समीप लाने में ईश्वर का क्या हेतु है।

गुरुकुलों का अनुभव बतला रहा है कि इन्होंने संसार पर आर्य समाज की बहुत कुछ धाक जमायी है—काम भी बहुत कुछ किया है, शिक्षा प्रसार भी बहुत कुछ हुआ। आर्य जगत् में विद्वानों की संख्या बढ़ाने में भी ये गुरुकुल कारण हुए

(५४७)

हैं पर यह भी मानना पड़ेगा कि जिस उद्देश्य से ये संस्थाएँ चलाई गईं उतना मनोरथ तो पूर्ण न हो सका है। सब अनुभव यह बतला रहा है कि इन संस्थाओं में निम्नलिखित परिवर्तन करने चाहिए—क्योंकि सब गुरुकुल सब बातों को पूर्ण नहीं कर सकते हैं—

(१) एक गुरुकुल केवल वेदगुरुकुल नाम से चले और वहां केवल वैदिक विषय का अध्ययन—अध्यापन—अनुसन्धान होता रहे—यह गुरुकुल आर्यसनाज के गौरव बढ़ाने के लिए पर्याप्त होगा।

(२) एक गुरुकुल केवल षट् शास्त्र के अध्ययन अध्यापन के लिए हो जहां उस दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित तैयार किए जाएँ इसका नाम शास्त्र गुरुकुल रहे—

(३) एक गुरुकुल व्याकरण, साहित्य के लिए रहे। इसमें व्याकरण साहित्य के अच्छे अच्छे पण्डित बन सकेंगे इस गुरुकुल का नाम वेदाङ्गगुरुकुल रख सकते हैं—

(४) एक गुरुकुल केवल चिकित्सा शास्त्र के लिए रहे। इस गुरुकुल का नाम आयुर्वेद गुरुकुल रहे।

(५) एक गुरुकुल औद्योगिक गुरुकुल के नाम से रहे जिसमें थोड़ी-सी धार्मिक शिक्षा के साथ साथ कला-कौशल सिखाया जावे—

इस प्रकार पांच गुरुकुलों के चलने से ब्रह्मचारिगण साधारण शिक्षा के पश्चात् अपने रुचि के अनुसार किसी गुरुकुल में पढ़ सकते हैं—इस प्रकार एक गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ हुआ ब्रह्मचारी दस-बारह वर्ष में कुछ न कुछ बनकर निकलेगा ही। सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम निभालेंगे यह बात अनुभव विरुद्ध है। पहिला काम गुरुकुल कांगड़ी सँभाल सकता है, दूसरा काम शास्त्र-गुरुकुल, महाविद्यालय (ज्वालापुर) चला सकता है। चिकित्सा गुरुकुल को वृन्दावन चलावे—इस प्रकार बटकर काम होने से आर्य जगत् की ज्योति चमकेगी। अब रही सशुल्क-निशुल्क की बात, वह इस तरह निमटाई जा सकती है कि जिस लड़के का पिता और गुरुकुल के अध्यापक यह निर्णय करें कि यह ब्रह्मचारी देश और धर्म के काम के है और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् देश-धर्म के ही काम करेंगे उन्हीं अधिकारी ब्रह्मचारी को निःशुल्क शिक्षा दी जावे। शेष सब स्वयं अपने व्यय से पढ़ें—

महाविद्यालय ज्वालापुर का गत तैंतीस वर्ष का मेरा यह अनुभव है कि

(५४८)

इस संस्था ने गरीबों का बहुत उपकार किया किन्तु अच्छे घर के लड़कों के संरक्षकों ने गरीब बनकर, किसी प्रकार महाविद्यालय, में प्रविष्ट कराकर, अनुचित लाभ भी बहुत उठाया ।

जो गुरुकुल शुल्क लेते हैं उनको चाहिये कि ब्रह्मचारीपर जितना व्यय होता हो (वस्त्र-भोजन-शिक्षा आदि सब का सब) सब ले लेवें पब्लिक पर वृथा भार न डालें न चन्दा मांगें । निःशुल्क संस्थाएँ मांगने की अधिकारी रहें । पर इन निःशुल्क संस्थाओं में बड़े परीक्षण तथा निरीक्षण के पश्चात् ब्रह्मचारी प्रविष्ट हों ।

शिक्षा शास्त्री

आर्य समाज के बुद्धिमान् कहीं एक जगह पर एकत्रित होकर विचार करें तो निःशुल्क सशुल्क का विवाद मिट सकता है । यदि शीघ्र ही इस विषय पर विचार न किया जायेगा तो आर्य जगत् की संस्कृत शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ हैं खतरे में ।

जब गुरुकुलों से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके निकलने वाले ब्रह्मचारी ही सरकारी परीक्षाओं के पीछे दौड़ते हैं और अपनी संस्थाओं द्वारा प्राप्त उपाधियों की उतनी परवाह नहीं कर रहे हैं तब आर्य जगत् में एक बड़े संस्कृत कालेज की बड़ी आवश्यकता है जिसमें केवल सरकारी संस्कृत परीक्षाओं की तैयारी करायी जाय । इसकी पाठ्यप्रणाली ७-८ वर्ष से अधिक की न हो मैं समझता हूँ यदि ऐसा कालेज खुल सका तो छात्रों की संख्या की कमी नहीं रहेगी ।

यह आशा रखना कि गुरुकुलों में भी सब ब्रह्मचारी एक ही गुरुकुल में एक साथ पढ़ते हुए एक जैसे निकलेंगे—दुराशा मात्र है । विद्यार्थियों की बुद्धि, रुचि आदि पर भी बहुत कुछ निर्भर रहेगा ।

कांगड़ी गुरुकुल, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, तथा इनके अनुकरण करने वाली संस्थाओं में एक अच्छी बात है कि ये सरकारी सहायता नहीं लेती ये स्वतन्त्र हैं । फिर हम इन संस्थाओं को अधिक उपयोगी क्यों न बनाने का प्रयत्न करें ।

उन संस्थाओं की सञ्चालक-सभा-समितियाँ अपनी आन को स्थिर रखने अथवा अपने गौरव को बचाये रखने की इच्छा से परस्पर सहयोग नहीं कर रही हैं । इतने वर्षों के अनुभवों के पश्चात् अब भी वे ही पुरानी भावनायें अथवा धारणायें बनी रहीं तो, है व्यर्थ सी बात ।

(५४६)

एक बार संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा महा विद्यालय सभा के अधिकारियों ने बैठ कर कुछ बातें की थीं पर फिर कुछ नहीं हुआ। संयुक्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर शिक्षा सम्मेलन हुआ था, जिसका संयोजक मैं ही था। कतिपय उपयोगी प्रस्ताव पास हुए पर व्यर्थ, कुछ नहीं हुआ। उसके निश्चय संयुक्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की फाईलों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

एक बार समस्त निःशुल्क गुरुकुलों की भी सभा हुई थी और यह यत्न किया गया कि सब एक सूत्र में ओत-प्रोत होकर अपना एक पृथक् संगठन किया जाय पर वहां भी बड़े छोटे का प्रश्न उठकर मामला ठप हो गया। निःशुल्क संस्थाओं के सामने तो कठिन प्रश्न उपस्थित है। ये अपना विस्तार तो कर नहीं सकती। हां, छोटा सा सुन्दर रूप रखकर 'जब तक निभे तब तक' के अनुसार उपयोगी काम कर सकती हैं। ऐसी सुन्दर लोकोपयोगी संस्थायें धनाभाव, साधनाभाव के कारण कष्ट अनुभव कर रही हैं यह सखेद आश्चर्य की बात है। पिछले हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर यहां के ब्रह्मचारियों ने अधिक से अधिक संख्या में सत्याग्रह में भाग लेकर सिद्ध किया है कि ये संस्थायें कितनी उपयोगी हैं। इनका अस्तित्व कितना उपयोगी है। अस्तु इन बातों को लिखने का यह अवसर नहीं है।

प्रश्न है सशुल्क गुरुकुलों को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का और निशुल्क गुरुकुलों को जीवित रखकर गरीब होनहार छात्रों की संरक्षा तथा संदीक्षा द्वारा आर्य समाज के हित सम्पादन का।

दूसरा विषय है प्रचार का

परिवर्तन आवश्यक

आर्य समाज के विद्वानों तथा कर्णधारों का कर्तव्य है कि इस विषय पर भी ध्यान देकर प्रचार कार्य की प्रणाली में भी प्रबल परिवर्तन करके प्रचार कार्य को अधिक फलदायक बनाने की चेष्टा करें। आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल में आर्य-समाज के प्रवर्तक को भाड़ भंका साफ करने की आवश्यकता पड़ी। उसके पश्चात् भी अधिक खंडनात्मक तथा न्यून मण्डनात्मक प्रचार प्रथा चल पड़ी। पश्चात् आर्यसमाज का समस्त ध्यान संस्थाओं के रक्षण, धारण, पोषण में लगा। उन दिनों ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों प्रचार कार्य की आवश्यकता ही नहीं रही। प्रचार कार्य सर्वथा बन्द सा हो गया। जनता ने समझ लिया कि संस्थाओं से ही

(५५०)

सब काम चल जायगा । बहुत जोर लगाया । अनुभव ने बताया कि प्रचार की ओर ध्यान न देना बड़ी भारी भूल थी । फिर प्रचार की ओर ध्यान बढ़ने लगा किन्तु प्रचार प्रणाली में विशेष परिवर्तन न हुआ । आर्य समाज की धाक सर्वत्र बैठ गई । आर्य समाज के तीक्ष्ण तर्क वितर्कों से संसार के नानापंथियों का मुख वन्द हो गया । किन्तु संसार हमारी ओर आकृष्ट न हुआ । हमारे आध्यात्मिक शून्य किन्तु केवल सांसारिक बुद्धि से चलाए हुए आन्दोलनों और प्रचारों से संसार ऊब गया । हमने, हमारे उपदेशकों ने, प्रचारकों ने, नेताओं ने, कार्यकर्ताओं ने आर्य जगत में कोई ऐसा उत्कृष्ट आकर्षक वातावरण उत्पन्न नहीं किया जो संसार अपने आप हमारी ओर खिंच आता । सब हमसे भयभीत हैं, सब हमसे दूर खड़े हैं, हमारी प्रशंसा चहुँ ओर है पर प्रशंसा करने वाले स्वयं बहुत दूर खड़े होकर प्रशंसा करते रहते हैं । सारांश ऐसा ढंग हो, ऐसी कार्य प्रणाली हो जिसमें स्वाभाविक आकर्षण रहे । शायद वह त्याग तपस्या की मात्रा से ही हो सकेगा । बहुत बोलने और काम करने का समय गया । थोड़ा बोलने और अधिक से अधिक कर दिखाने का समय आया । ईश्वर हमें शक्ति देवे ।

स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

श्री महात्मा नारायणस्वामी जी कृत
कतिपय ग्रन्थ

(१) सृष्ट्यु और परलोक

शरीर, अन्तःकरण तथा जीव का स्वरूप और भेद, जीव और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार, सृष्ट्यु का स्वरूप तथा वाद की गति मुक्ति और स्वर्ग, नर्क इत्यादि लोकों का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि आदि विषयों पर अद्भुत पुस्तक । मूल्य १-)

(२) योग रहस्य

इस पुस्तक में योग के अनेक रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उन विधियों को भी बतलाया गया है जिससे कोई आदमी जिसे रुचि हो— योग के अभ्यासों को कर सकता है । मूल्य १-)

(३) विद्यार्थी जीवन रहस्य

विद्यार्थियों के लिए उनके मार्ग का सच्चा पथ प्रदर्शक, उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश । द्वितीय संस्करण ३)

(४) उपनिषद् रहस्य

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक माण्डूक्य, ऐतरेय तैत्तिरीय, उपनिषदों की बहुत सुन्दर खोजपूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्याएँ ।

मूल्य क्रमशः—

१), २)॥, ३), ४)॥, ५)॥, ६), ७), ८)
सजिल्द आठों भाग (एक जिह्दमें) १।=)॥

सम समुचय वाद

विद्यां चाभिद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते । ईश० ११

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इस मन्त्र के अर्थ करते समय अविद्या के अर्थ क्रमोपासना और विद्या के अर्थ ज्ञान किये हैं और श्री शंकराचार्य जी ने अविद्या के अर्थ कर्म करके विद्या के अर्थ उपासना किये हैं । इसी प्रकार मृत्यु के अर्थ महर्षि ने मौत करके अमृत के अर्थ मोक्ष किये हैं और श्री शंकराचार्य जी ने मृत्यु के अर्थ मौत ही किये हैं परन्तु अमृत के अर्थ देव लोक की प्राप्ति किया है ।

मुख्य भेद यह है जहां महर्षि जी विद्या को ज्ञान मानकर सम समुचय के पक्षपाती हैं वहां शंकराचार्य जी मोक्ष का साधन केवल ज्ञान को मानकर इस मन्त्र में आए 'उभयंसह' पद से डर कर विद्या के अर्थ उपासना करके क्रम समुचय की घोषणा करते हैं ज्ञानी के लिये कुछ कर्तव्य नहीं उनका यह सिद्धांत है इसलिये वह कर्म को ज्ञान का साधन मानकर ज्ञान होने पर कर्म त्याग का सिद्धांत मानते हैं और महर्षि जी ज्ञान होने पर भी वैदिक कर्म करने का विधान करते हैं अतः उनको उभयंसह पद का डर नहीं प्रत्युत उनका पक्ष इसके सर्वथानुकूल है अतः वह विद्या शब्द का अर्थ ज्ञान करते हैं ।

दूसरा भेद यह है महर्षि जी अविद्या के अर्थ कर्म, उपासना दोनों मानते हैं क्योंकि कर्म की न्याई उपासना भी मानसिक कर्म है और कर्म के साधन मन, वाक् शरीर होने से उपासना भी कर्म के साथ मिल जाती है शंकराचार्य जी ने अविद्या के अर्थ केवल कर्म ही किये हैं जहां कर्म अर्थ में दोनों आचार्य सहमत हैं वहां ज्ञान में भेद है ।

इसी प्रकार मौत को पार करने में दोनों आचार्य सहमत हैं परन्तु जहां महर्षि जी विद्या के अर्थ ज्ञान करके मोक्ष प्राप्ति 'अमृतमश्नुते' लिखते हैं वहां शंकराचार्य जी देवलोक प्राप्ति तक ही जाते हैं क्योंकि मोक्ष ज्ञान से होती है जब विद्या के अर्थ ज्ञान नहीं है तो अमृत के अर्थ मोक्ष क्यों हो ।

(५५२)

श्रीशंकराचार्य जी जैसा धुरन्धर विद्वान् जहां और स्थानों पर अमृत के अर्थ मोक्ष लिखता है वहां सम समुचय के उर से इस प्रकरण में वह अर्थ छोड़ देते हैं ।

अब अन्य पुस्तकों में इस भाव के पोषक जो वाक्य हैं वह भी सम समुचय की पुष्टि अर्थ लिखना उचित प्रतीत होता है ।

तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

मनु० अध्याय १२, १०४

इस श्लोक में तप से किल्बिष नाश और विद्या से मोक्ष की प्राप्ति लिखी है । भेद केवल अविद्या और तप तथा किल्बिष और मृत्यु का है दोनों का भाव एक ही है जो सम समुचय का द्योतक है ।

हारीतस्मृति में इससे भी स्पष्ट लिखा है यथा

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्चाश्वैर्विना यथा ।

एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः ॥

यथान्नं मधु संयुक्तं मधु चान्नं संयुतम् ।

एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत् ॥

द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः ।

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ७, ६-११

जिस प्रकार अश्व रथ बिना और रथ अश्व बिना काम करने में अशक्य है उसी प्रकार तपस्वियों के लिये तप तथा ज्ञान दोनों ही चाहिये ।

जिस प्रकार अन्न मधु संयुक्त और मधु अन्न सहित लाभदायक हैं इसी प्रकार तप और ज्ञान दोनों ही मिलकर सुखद हैं ।

जैसे दो पक्षों से पक्षी की गति अच्छी होती है इसी प्रकार ज्ञान और कर्म से ब्रह्म को प्राप्त होता है इन श्लोकों में प्रधान जो दो हैं उनमें तप और विद्या शब्द हैं और तीसरे में कर्म और ज्ञान शब्द हैं यह शब्द एकार्थ से वाचक हैं इसलिये यह भी कर्म और ज्ञान का समुचय ही प्रतिपादन करते हैं । व्यवहार में भी ऐसा ही प्रतीत होता है यदि किसी को ज्ञान है और वह उसके पश्चात् कुछ कर्म न करे तो उसे किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है । इसी प्रकार यदि कोई कर्म तत्परता से करता है परन्तु उसका ज्ञान नहीं है केवल अन्ध

(५५३)

परम्परागत श्रद्धा से कर्म करता है वह भी सफल नहीं होता है यदि कोई ज्ञान प्राप्त करके तदनुकूल कर्म करे तो सफल होता है इसी लिये ईशोपनिषद् में

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ ईश० ६

जो केवल कर्म करते हैं वह अंधकारमय योनियों को प्राप्त होते हैं और जो विद्या अर्थात् ज्ञान का ही आश्रय लेते हैं वह उससे अधिक अंधकार को प्राप्त होते हैं ।

इसी प्रकरण में वह मंत्र पढ़ा गया है जो इस लेख के आरम्भ में लिखा है अतः महर्षि का प्रतिपादन किया हुआ मार्ग ज्ञान कर्म का सम समुचय ही ठीक है ।

इस विषय में श्री बालगंगाधर तिलक जी ने भी गीतारहस्य में विचार किया है वह स्वयं वेदांकित विचारों ब्राले थे । तो भी उन्होंने सम समुचयवाद का वहां भली प्रकार मण्डन किया है जो सज्जन देखना चाहें वहां देख सकते हैं ।

—स्वतंत्रानन्द

सार्वदेशिक सभा का सत्ताईस वर्षीय इतिहास

सभा के स्थापना काल १६०८ से लेकर सन् १९३७ तक के सभा और आर्यसमाज के मुख्य २ कार्यों का इस इतिहास में परिचय दिया गया है । मुख्यतया आर्यसमाज की वर्तमान सन्तति के लिये इसमें जानने योग्य बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है । आर्यसमाजों की लाइब्रेरियों में इस संग्रह का रखा जाना आवश्यक है ।—मूल्य सजिल्द २।।), अजिल्द २)

मिलने का पता:—

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा, देहली ।

आर्य विवाह ऐक्ट*

विस्तृत व्याख्या

(१)

गत बीस वर्षों में केन्द्रीय धारा सभा ने समाज सुधार के क्षेत्र में कई उल्लेखनीय कार्य किए हैं। उन में से एक १९३७ का “आर्य विवाह ऐक्ट” है। आर्य समाजियों के पारस्परिक अन्तर्जातीय विवाहों को कानून सम्मत और इस ऐक्ट से जो विवाह पूर्व हुए हैं उन्हें वैध बनाने के उद्देश्य से श्रीयुत घनश्यामसिंह जी गुप्त एम० एल० ए० (मध्य-प्रदेश) ने यह बिल केन्द्रीय सभा में प्रस्तुत किया था। यद्यपि इस कानून का मुख्य सम्बन्ध आर्य समाजियों से है, तथापि इस कानून से हिन्दू समाज का बहुत हित होने की संभावना है। पिछले कुछ समय से विविध जातियों के नवयुवकों के हृदयों में अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न बहुत आन्दोलित होता रहा है। हिन्दू समाज के बड़े बूढ़े लोग और परम्परा इस नवीन विधान के विरुद्ध रहे हैं, परन्तु सब से बड़ी कठिनाई कानूनी थी। इस ऐक्ट से आर्य समाजियों की तो कठिनाई पूर्णतया दूर हो गई है और देव समाजियों तथा राधा स्वामियों को भी जिन में बहुत से अन्तर्जातीय विवाह हो चुके हैं इस प्रकार के कानून की शायद आवश्यकता होगी और वे भी आर्य समाजियों की नाई इस ऐक्ट जैसा कोई कानून बनवाने के लिए उत्साह ग्रहण करेंगे। परन्तु यदि हिन्दुओं की समस्त जातियों के अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बनाने के लिए “हिन्दू विवाह ऐक्ट” बन जाय तो पृथक् जातियों के लिए विशेष कानूनों के बनाए जाने की आवश्यकता मिट जायगी।

ब्रह्म विवाह कानून

अन्तर्जातीय विवाहों की समस्या के हल के लिए सब से पहला कानून १८७२ ई० में “स्पेशल मैरिज ऐक्ट” अर्थात् विवाहों का विशेष कानून के नाम से बनाया गया था। इस ऐक्ट को ब्रह्म-विवाह कानून भी कहते हैं। यह कानून बंगाल के ब्रह्म-समाजियों के आन्दोलन के फलस्वरूप पास हुआ था। यतः अन्तर्जातीय विवाहों के सम्बन्ध में इस के पश्चात् जो कानून बनाए गए हैं, उन पर इस कानून का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। अतः इस कानून तथा इसकी धाराओं का संक्षेप में कुछ परिचय देना आवश्यक है। ब्रह्म-समाजियों का दृष्टिकोण यह था कि मूर्ति पूजा और संस्कारों के मामले में उनका विश्वास सनातनी हिन्दुओं जैसा नहीं

* १९३७ का १९वां कानून

(५५५)

है और वे हिन्दुओं के विवाहों, धार्मिक स्वरूप को स्वीकार नहीं करते हैं। अतः उनकी इच्छाओं की पूर्त्यर्थ उक्त कानून पास हुआ था। इस कानून के अनुसार सिविल विवाह होते हैं और यह उन व्यक्तियों पर लागू होता है जो यह घोषणा करने के लिए उद्यत हों कि उनका सम्बन्ध प्रसिद्ध धर्मों यथा हिन्दू धर्म, मुसलमानी धर्म, ईसाइयत, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पार्सी और यहूदी धर्मों में से किसी से नहीं है। इस विवाह का रूप तथा क्रियाएं निम्न प्रकार हैं :—

- (१) वर और वधू दोनों को रजिस्ट्रार के सामने यह घोषणा करनी चाहिए कि वे उपयुक्त धर्मों में से किसी धर्म को नहीं मानते हैं। (धारा सं० २)
- (२) वर की अवस्था १८ वर्ष और वधू की १४ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। यदि वर और वधू में से कोई २१ वर्ष की आयु से कम हो तो घोषणा पत्र पर सम्बन्धित व्यक्ति के पिता अथवा संरक्षक को हस्ताक्षर करने चाहियें। (धारा सं० २, २, ३)
- (३) वर और वधू के व्यक्तिगत कानून के अनुसार विवाह सम्बन्धी जो बातें निषिद्ध हों, उन से वे दोनों मुक्त होने चाहिएं। (धारा सं० २, ४)
- (४) विवाह का रूप धार्मिक कृत्यों से मुक्त रहेगा और वर और वधू प्रत्येक को रजिस्ट्रार के सामने एक घोषणा करनी होगी। और उस पर तीन गवाहों की साक्षी होगी कि वर और वधू एक दूसरे को अपना वैध पति अथवा अपनी पत्नी मनोनीत करता है (धारा १८)
- (५) वर और वधू को विवाह के समय अविवाहित होना आवश्यक है और जब तक विवाह सम्बन्ध रहेगा तब तक स्त्री और पुरुष में से कोई भी दूसरा विवाह न कर सकेगा। (धारा २ (ई) और धारा १५)
- (६) इन्डियन डाइवोर्स ऐक्ट (Indian Divorce Act) अर्थात् “भारतीय तलाक कानून” में वर्णित कारणों में से किसी कारण के आधार पर विवाह का विच्छेद हो सकता है। धारा सं० १७)

घोषणा मात्र से कोई धर्म विहीन नहीं हो जाता

जब वर और वधू १८७२ के कानून के अनुसार विवाह के समय घोषणा करते हैं कि वे अहिन्दू हैं तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बतौर हिन्दू के समाज में उनकी जो स्थिति है उस पर उस घोषणा का क्या असर होता है। जायदाद के उत्तराधिकार के मामले में उन पर और उनके बच्चों पर उनका व्यक्तिगत कानून लागू होना चाहिए। अथवा (इण्डियन सेक्सेशन ऐक्ट) ‘भारतीय उत्तराधिकार का कानून’ १९२३ में कलकत्ता हाई कोर्ट में इस

(५५६)

विषय पर बहस हुई थी कि कानून के अनुसार होने वाली घोषणा का उत्तराधिकार पर क्या प्रभाव पड़ता है। एक विधवा ने इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार अपने पति की जायदाद के तिहाई भाग के लिए दावा किया था और कारण यह बतलाया था कि उसकी शादी १८७२ के ऐक्ट के अनुसार हुई थी और उस ने अपने पति के साथ घोषणा की थी कि वे हिन्दू नहीं हैं न्यायाधीश ने एक प्रसिद्ध अभियोग के आधार पर यह फैसला दिया था कि कोई हिन्दू ब्रह्म-समाजी बन जाने से हिन्दू समाज से बहिष्कृत नहीं हो जाता और १८७२ के ऐक्ट के अनुसार घोषणा कर देने से हिन्दू समाज से पतित नहीं हो जाता। स्वयं ऐक्ट की धाराओं के अनुसार कई मामलों में वर और वधू पर उनका व्यक्तिगत कानून लागू होता है। इसके समर्थन में निम्न वाक्यांश दिया जाता है।

“मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि घोषणा कर देने मात्र से कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म के सब उद्देश्यों से मुक्त हो जाता है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। घोषणा तो ऐक्ट के उद्देश्यों की पूर्त्यर्थ एक साधारण वक्तव्य है। मुझे ज्ञात है कि इस ऐक्ट का उद्देश्य उन व्यक्तियों को सहायता करने का था जो हिन्दू रीति रिवाजों के अनुसार विवाह कराना पसन्द नहीं करते थे और उन में से कुछ रिवाज उनके लिए हानिकारक भी थे और जो इसी लिए विवाह का ऐसा रूप चाहते थे। जो वेकानून सम्मत हो और वर वधू दोनों पर बाध्य हो। साथ ही रूढ़िवादी हिन्दू धर्म में जो रूप नियत किया हुआ है उस से भिन्न हो।

१८२८ ई० में बम्बई प्रान्त में एक ऐसा ही मुकद्दमा हुआ था। उस में भी एक विधवा ने जिसका विवाह १८७२ के ऐक्ट के आधीन हुआ था इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट के आधीन अपने पति की आधी जायदाद का दावा किया था। उस मुकदमे में भी न्यायाधीशों की यह सम्मति थी कि १८७२ के कानून के आधीन विवाह होने मात्र से वर वधू व्यक्तिगत कानून से मुक्त नहीं समझे जाते हैं।

उपर्युक्त दो मुकदमों से जो परिणाम निकला है उसका एक और मुकदमे से समर्थन होता है। मुकदमा इस प्रकार था कि अपने पति की मृत्यु पर एक हिन्दू विधवा को कुछ जायदाद प्राप्त हुई थी। पुनर्विवाह करने पर हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह ऐक्ट के अनुसार यह जायदाद उस से छिन जानी चाहिए थी। १८७२ के ऐक्ट के आधीन जो घोषणा होती है, उसने वही घोषणा पुनर्विवाह के अवसर पर की थी, वह हिन्दू नहीं है। प्रश्न यह उठा था कि हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह के कानून के अनुसार जायदाद के छिन जाने की धारा इस मामले में लागू हो सकती है या नहीं? विधवा की ओर से वकीलों ने यह कहा था कि यह वह हिन्दू नहीं रही है इस लिए जायदाद की ज़ब्ती की धारा उस पर नहीं लगनी चाहिए

(५५७)

परन्तु अदालतों ने यह फैसला दिया कि १८७२ के अधीन हुई घोषणा के होते हुए भी हिन्दू विधवाओं का कानून लागू होगा ।

इस सम्बन्ध में कलकत्ता हाई कोर्ट के एक प्रसिद्ध मुकदमे का उल्लेख करना आवश्यक है । यह मुकदमा भगवानकौर बनाम बोस के था । कोई हिन्दू ब्रह्म-समाजी बन जाने पर हिन्दू रहता है वा नहीं । इस प्रकार के मुकदमों में इस मुकदमे से बहुत सहायता मिलती है । न्यायाधीशों की सम्मति यह थी कि हिन्दू धर्म विश्वास के मामले में अपने अनुयाइयों को बहुत छूट देता है और कोई हिन्दू यदि रूढ़िवादी हिन्दू धर्म के रीति रिवाजों और अनुष्ठानों को नहीं मानता वा करता है तो केवल इसी बात से वह हिन्दू धर्म से पृथक् नहीं हो जाता है । साथ ही ब्रह्म-समाजी बन जाने मात्र से उस पर से व्यक्तिगत कानून का शासन नहीं उठ जाता है ।

ऊपर के मुकदमोंसे यही परिणाम निकलता है कि जो हिन्दू 'ब्रह्मोविवाह ऐक्ट' के लिए अहिन्दू होनेकी घोषणा करता है वह उत्तराधिकार के मामलोंमें 'हिन्दू कानून' से मुक्त नहीं होता ।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) दयानन्द ग्रन्थमाला	२॥	(१८) Vedic Teachings	१॥
(२) संस्कृत सत्यार्थ प्रकाश	१	(१९) Voice of Arya Varta	=)
(३) प्राणायाम विधि	१॥	(२०) Daily Prayer of an Arya	=)
(४) वैदिक सिद्धान्त अजिह्व सजिह्व	१॥	(२१) Commentary on Ishopanishat	१
(५) विदेशों में आर्य्य समाज	१=)	(२२) इज़हारे इज़्कीरत (उर्दू में)	१॥=)
(६) यमपितृ परिचय	१	(२३) सत्य निर्णय (हिन्दी में)	१॥
(७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	१॥	(२४) धर्म और उसकी आवश्यकता	१=)
(८) आर्य्य सिद्धान्त विमर्श	१॥	(२५) आर्य्य पर्व पद्धति	१=)
(९) भजन भास्कर	१॥	(२६) कथा माला	१=)
(१०) वेद में असित शब्द	१=)	(२७) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म	१=)
(११) वैदिक सूर्य विज्ञान	=)	(२८) आर्य्यवर्त की वाणी	=)
(१२) विरजानन्द विजय	=)	(२९) कर्त्तव्य दर्पण	=)॥
(१३) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद	=)	(३०) समस्त आर्य्य समाजों की सूची	१॥
(१४) Agnihotra		(३१) दश नियम व्याख्या	=)
Well Bound	२॥	(३२) सार्वदेशिक सभा का इतिहास	२)
(१५) Crucifixion by an eye witness	१=)	सजिल्द	२॥
(१६) Truth and Vedas	१=)	(३३) बलिदान	१॥
(१७) Truth bed rocks of Aryn Culture	१॥	(३४) The Scopes Mission of Arya Samaj Bound	१)
		Unbound	१=)

सुमन संचय

(१)

आत्म तत्त्व

एक दिन सायंकाल के समय शंकर की किसी संन्यासी से भेंट हो गई। संन्यासी उनके असाधारण तेज को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और उस ने इन्हें होनहार बालक समझकर इन से पूछा, “तुम कौन हो ?” शंकर ने मन्द हास्य से उत्तर दिया ‘मैं नहीं जानता।’ संन्यासी ने उनके मनोभाव को समझकर फिर पूछा ‘क्या वास्तव में तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो ?’ शङ्कर ने फिर वही उत्तर दिया और विनम्र होकर प्रार्थना करने लगे ‘महात्मन् ! कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिस से मैं जान सकूँ कि मैं कौन हूँ ?’ संन्यासी बोला ‘यही तो जीवन का वास्तविक तत्त्व है, पर संसार में रहकर नहीं जाना जा सकता’ यह सुनकर शङ्कर ने कुछ गम्भीर होकर दृढ़ता पूर्वक कहा ‘महात्मन् ! यह तत्त्व तो आपके अन्तःकरण में ही वर्तमान है। उसकी खोज के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। आत्म चिन्तन और आत्म दर्शन से ही उसकी उपलब्धि हो सकती है’ शङ्कर की यह मर्मयुक्त गूढ़-वाणी सुनकर साधु बड़े विस्मित हुए और आशीर्वाद देकर वहां से विदा हो गए।

(२)

सन्तान-प्राप्ति

एक दिन महात्मा बुद्ध को मगध के एक राजा ने अपने महल में भोजन के लिए आमन्त्रित किया। वह राजा निरसन्तान था। अन्ध विश्वास से प्रेरित होकर राजा की तीनों रानियों ने अपने दुकूल (ओढ़ने के वस्त्र) राज प्रसाद में बिछवा दिए जिस से महात्मा बुद्ध के उन पर चलने से उन्हें पुण्य प्राप्ति हो। जिस समय महात्मा बुद्ध राज-प्रासाद में प्रविष्ट हुए और उन्होंने ने वे वस्त्र देखे तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उन वस्त्रों से दचकर अपने सिंहासन पर जा बैठे। महात्मा

(५५६)

के इस व्यवहार से राजा और उनकी रानियों को दुख और आश्चर्य हुआ। महात्मा बुद्ध उनके मनोभाव को समझ गए और बोले। राजवर्ग ! विस्मित होने की आवश्यकता नहीं है। राज धर्म का यथोचित रीति से पालन करो। इसी रीति से आपको सन्तान का सुख मिल सकता है। अन्य कोई मार्ग नहीं है।

(३)

सत्य-प्रियता

गोपाल कृष्ण गोखले जब चतुर्थ श्रेणी में पढ़ते थे तो एक दिन उन के अध्यापक ने उनकी श्रेणी के सभी विद्यार्थियों को गणित के कुछ प्रश्न दिए और घरसे करके लाने की आज्ञा दी। दूसरे दिन जब प्रश्नों के उत्तर देखे गए तो गोखले को छोड़कर और किसी भी विद्यार्थी के सब प्रश्न शुद्ध न थे। गोखले के सब प्रश्नों को शुद्ध देखकर अध्यापक महोदय बड़े प्रसन्न हुए और गोखले की बड़ी प्रशंसा कर उसे प्रथम नम्बर पर बैठने की अनुमति दी तथा अन्य विद्यार्थियों की भर्त्सना की। अपनी अतथ्य विजय प्रशंसा सुनकर गोखले फूट फूटकर रोने लगे। लड़कों और अध्यापक को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु सत्य रहस्य क्या है ? यह कोई न जान सका। अन्त में अध्यापक के प्रेम पूर्वक बहुत समाझाने बुझाने पर जब गोखले का रोना कुछ शान्त हुआ और उन से आप्रह पूर्वक उसका कारण पूछा गया तो वे बोले 'गुरु जी ! ये सब प्रश्न मैंने स्वयं नहीं किए हैं अपितु दूसरे से पूछकर किए हैं। मैंने झूठ बोलकर झूठी प्रशंसा पाई है। अतः मैं अपराधी हूँ, मुझे दण्ड दीजिए।' गोखले की यह बात सुनकर सब विद्यार्थी आश्चर्य चकित हो उनकी ओर देखने लगे। अध्यापक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर गोखले को हृदय से लगा लिया और विद्यार्थियों को सम्बोधन कर कहने लगे, 'बालको ! देखो, सचाई इसे कहते हैं' इस अपराध के प्रायश्चित्त में गोखले एक सप्ताह पर्यन्त अपनी श्रेणी में अन्तिम स्थान पर बैठते रहे।

(४)

मित्रता

डामन और पिथिमस दो मित्र थे। दोनों में बड़ा प्रेम था। एक बार उस देश के अत्याचारी राजा ने डामन को फांसी का हुक्म दिया। डामन के स्त्री बच्चे बहुत दूर समुद्र से उस पार रहते थे। उसने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की।

(५६०)

राजा ने कहलवाया कि डामन के बदले में यदि कोई दूसरा आदमी जेल में रहने की तय्यार हो और यदि डामन समय पर न पहुंच सके तो उसी को फांसी पर चढ़ा दिया जाय। यह उसे स्वीकार हो तो डामन नियत समय के लिये घर जा सकता है।

पिथिमस ने डामन से बिना पूछे ही यह शर्त स्वीकार करली और प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया। प्रतिज्ञा-पत्र के लिखे जाने पर डामन जेलखाने से निकलकर आया और पिथिमस जेलखाने में डाल दिया गया।

पिथिमस सोच रहा था, 'हे भगवन्! डामन समय पर न लौटे तो बड़ा अच्छा हो' समय व्यतीत होने लगा। हवा अनुकूल न होने से डामन की नाव समय पर न पहुँच सकी। फांसी का समय निकट आ गया। उस समय पिथिमस हर्ष और शोक के बीच भूल रहा था। जब वह सोचता कि डामन नहीं आया और मुझे फांसी हो जायगी, तब वह आनन्द में मग्न हो जाता। दूसरे ही क्षण जब यह विचार आता तो वह शोक मग्न हो जाता कि 'अभी मुझे फांसी हुई तो नहीं इसी बीच में यदि वह आ पहुँचा तो मेरा मनोरथ असफल हो जायगा। वह बड़े व्यग्र चित्त से बार-बार भगवान् से प्रार्थना करता 'हे प्रभो! डामन के आने में देर हो जाय और मैं फांसी पर चढ़ा दिया जाऊँ।' उधर डामन नाव में यह सोच कर अधीर हो रहा था कि 'कहीं मैं न पहुँच सका तो मेरे पिथिमस को फांसी हो जायगी।'

समय हो गया। डामन नहीं पहुँचा। पिथिमस को फांसी के मंचान पर चढ़ाया गया। वह बड़ा प्रसन्न था। लोगों ने चिल्लाकर कहा 'डामन ने बहुत बुरा किया' समय पर नहीं आया। इस बात को पिथिमस सहन न कर सका और कहा 'कई दिन से हवा विपरीत चल रही है' इसी से वह नहीं आ सका। उस पर किसी को रोष नहीं करना चाहिए। इतना कह कर वह जल्लाद से बोला, "भाई! समय हो गया है, अब तुम देर क्यों कर रहे हो।" उसे एक एक क्षण असह्य हो रहा था। जल्लाद तय्यार हुआ।

इसी बीच में दूर से बड़े जोर की आवाज सुनाई दी। 'ठहरो, ठहरो! मैं आ पहुँचा' लोगों के देखते ही देखते डामन पागल सा हुआ घोड़ा भगाता हुआ आया और घोड़े की पीठ से कूद कर फांसी के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। पिथिमस को गले लगाकर बोला, 'ईश्वर को धन्यवाद है जो उन्होंने तुम्हारी प्राण रक्षा की।

(५६१)

डामन के आजाने से पिथियस बड़ा दुखी हुआ। उस ने निराशा भरे शब्दों में कहा 'भगवान ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। तुम २ मिनट बाद क्यों नहीं पहुँचे।'।

इस अद्भुत दृश्य को वह राजा भी मंच पर बैठा हुआ देख रहा था। वह मंच से उठा। लोगों में हाहाकार मच गया। फांसी के तख्ते के समीप आकर गद् गद् वाणी से बोला 'तुम दोनों मचान से उतर जाओ। मैं ऐसे अनुपम जोड़े को तोड़ना नहीं चाहता! मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि दो के साथ तीसरा मैं भी ऐसा ही बन जाऊँ।' यह कहकर उसने दोनों मित्रों को अपने बाहु पाश में बांध लिया। उपस्थित नर-नारियों ने हर्ष में करतल ध्वनि की और तीनों का अभिनन्दन किया।

(५)

सच्चा साधु

एक साधु ने ईश्वर प्राप्ति की साधना के लिए कठोर तप करते हुए—६ वर्ष एक गुफा में व्यतीत किए। वह अपनी तपस्या पर अभिमान करने लग गया। एक बार एक रोगी व्यक्ति अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ उस वन-प्रदेश में गया। उस साधु को देखकर उन लोगों को बड़ी तसल्ली हुई कि आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें सहायता देगा। इसी बीच में उसकी औषधि जो वह नगर से लाया था समाप्त हो गई और उसका छोटा भाई जो आने वाला था न आया। ऐसी अवस्था में उसकी स्त्री स्वयं नगर को जाने के लिए उद्यत हुई। और अपने एक छोटे बच्चे को साधु के पास भेजकर कहलवाया कि वे उसकी अनुपस्थिति में उस रोगी की देख रेख करने का कष्ट करें। बच्चे ने जाकर साधु को अपनी माता की प्रार्थना सुनायी। यह प्रार्थना सुनकर वह आग बबूला हो गया, और उसका हाथ पकड़े हुए उन लोगों के पास पहुँचा और कहा 'तुमने इस बच्चे को मेरी तपस्या में विघ्न डालने के लिए क्यों भेजा।' उसकी माता ने हाथ जोड़ कर कहा 'महाराज! मैं यहां अकेली हूँ। पति देव रोगी हैं। चल फिर नहीं सकते। मैं औषधि लेने नगर जा रही थी। पीछे उनकी देख-रेख रखने का आपको कष्ट देने का साहस किया था। यदि आप यह कष्ट नहीं उठा सकते हैं तो न उठाएँ। इस बच्चे को क्षमा करें।' यह सुनकर साधु अपनी गुफा की ओर चल दिया और कहा 'खाबरदार! मेरी तपस्या में विघ्न डाला। यदि विघ्न डाला तो तुम सब को भस्म कर दूँगा।' उस स्त्री ने हाथ जोड़ कर कहा 'महाराज! क्रोध न करें। ईश्वर की

(५६२)

सिद्धि और तपस्या किसे कहते हैं आप इसे सीखें !” साधु महोदय पुनः जल गए और बोले ? ‘क्या हमसे भी बढ़ कर कोई ईश्वर भक्त हो सकता है ?’ स्त्री ने कहा ‘महाराज ! ऐसा न कहें । यदि आप सचमुच ईश्वर भक्त बनना चाहते हैं तो आप पास के ग्राम के उस भिखारी का अनुकरण करें जो कविता गाता हुआ इधर उधर भटकता और भीख मांगता फिरता है ।”

साधु बिना कुछ कहे अपनी गुफा में चला गया । रात्रि को उसे स्वप्न देख पड़ा जिसमें किसी ने प्रेरणा की यदि तेरी इच्छा ईश्वर प्राप्ति की है तो तू सचमुच उस भिखारी का अनुकरण कर । इस स्वप्न की प्रेरणा से वह उस भिखारी की खोज में चल दिया । और उसे खोजकर उससे पूछा ‘भाई ! तू ने ऐसे कौनसे सत्कर्म किए हैं जिनके कारण ईश्वर तुझ पर इतने अधिक प्रसन्न हैं ?”

उसने तपस्वी साधु को प्रणाम करके कहा ‘पवित्र महात्मन ! मुझ से हँसी न कीजिये । मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न कोई तपस्या की और न कभी प्रार्थना की । मैं तो कविता गा गाकर लोगों का मनोरंजन करता हूँ और ऐसा करते जो रुखा सूखा टुकड़ा मिल जाता है, उसी को खाकर सन्तोष मानता हूँ । तपस्वी साधु ने फिर आग्रह पूर्वक पूछा ‘नहीं नहीं !! तूने कोई सत्कार्य अवश्य किया है । भिखारी ने नम्रता से कहा ‘महाराज ! मैंने कोई सत्कार्य किया हो, ऐसा मेरी जान में तो नहीं है ।”

इस पर साधु ने उससे फिर पूछा ‘अच्छा, बता, तू भिखारी कैसे बना ?’

भिखारी कहने लगा ‘महाराज ! एक दिन की बात है । मैंने देखा एक गरीब स्त्री घबराई हुई सी इधर उधर दौड़ रही है । उसका चेहरा उतरा हुआ है । पता लगाने पर मालूम हुआ कि उसके पति और पुत्र कर्ज के बदले में गुलाम बनाकर बेच दिए गए हैं । बहुत सुन्दर होने के कारण कुछ लोग उस पर अपना कब्जा करना चाहते हैं । यह जानकर मैं उसे ढाड़स देकर अपने घर ले आया और उसकी अत्याचार खे रक्षा की । फिर मैंने अपनी सारी जायदाद साहूकारों को देकर उसके पति और पुत्रों को गुलामी से छुड़ाया और उन्हें उस स्त्री से मिला दिया । इस प्रकार मेरी सारी सम्पत्ति चली जाने से मैं दरिद्र हो गया और आजी-विका का कोई साधन न रहने से मैं अब कविता गा गाकर लोगों को रिझाता हूँ और इसीसे जो टुकड़ा मिल जाता है उसी को लेकर आनन्द मानता हूँ । पर इससे क्या हुआ ? ऐसा काम क्या और लोग नहीं करते ?

भिखारी की कथा सुनते ही तपस्वी साधु की आंखों से मोती जैसे आंसू झड़ने लगे और उस भिखारी को हृदय से लगाकर कहने लगा ‘मैंने अपने जीवन में तेरा जैसा कोई काम नहीं किया । तू सचमुच आदर्श साधु है ।’

— रघुनाथप्रसाद पाठक

महिला-जगत्

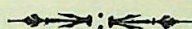
(नवम्बर के अङ्क से आगे)

सन्तान शिक्षण

माता की पदवी प्राप्त करने वाली कन्याओं के जानने योग्य बातें

(ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक)

पाठ ६



केशव के मेले में खो जाने के समाचार से घर में कुहराम मच गया था। सुशीला और दमयन्ती विलख २ कर रो रही थीं। कमला की माँ पागल बनी फिरती थी। कभी द्वार पर जाती और कभी छत पर जाती। उसे चैन न थी। कभी चुपचाप खड़ी होकर माथा पीट कर कहती 'मैं हत्यारी ऐसा जानती तो मुन्ना को मेले में न ले जाती।'

इसी बीच में कमला ने घर में प्रवेश किया। उसे देख कर कमला की माँ रोने लगी। कमला ने रोने का कारण पूछा, परन्तु बुढ़िया ने कुछ न कहा। सुशीला ने आकर कहा, 'जीजी !! अम्मा केशव को मेले में ले गई थीं। वहाँ केशव खो गया है।' पिता जी सुबह से उसे तलाश करते फिरते हैं। अभी तक तो लौटे नहीं हैं।'

केशव के खो जाने की घटना कमला के लिये मानो कोई बड़ी घटना न थी। उसने अपनी सहज मुस्कान के साथ कहा, 'अम्मा ! कोई चिन्ता मत करो। आपका केशव अच्छी तरह घर आ जायगा।' इस सुखद बात को सुनकर सुशीला बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कमला से पूछा, 'क्या जीजी !! आपको केशव का पता लग गया है। मालूम पड़ता है केशव मिल गया है और यह बात आप हम से छिपा रही हैं।'।

दमयन्ती ने सुशीला की बात का समर्थन करते हुए कहा, 'शील ! बात तो कुछ ऐसी ही जान पड़ती है।'

इतने में ही कमला के पिता केशव को गोद में लिए हुए घर आए। सुशीला और दमयन्ती केशव को लेने दौड़ी। कमला की माँ चुपचाप खड़ी रही। उसके मुँह से केवल

(५६४)

मात्र यह निकला, 'परमात्मा ने मेरा मुह उज्ज्वल कर दिया।' कमला को देखकर केशव गोद से उतरा और कमला को चिपट कर रोने लग गया। कमला ने उसे जी भर कर प्यार किया। कमला के पिता ने कमला की पीठ पर हाथ फेर कर और कमला की माँ की ओर इशारा करके कहा, 'हमारी कमला बड़ी चतुर है। इसने केशव के गले में धर का पूरा पता लिख कर कागज़ का एक पर्चा लगा दिया था। यदि यह पर्चा न होता तो न मालूम केशव कहाँ होता।'

यह सुन कर सुशीला और दमयन्ती आश्चर्य में डूब गई और उत्सुकता पूर्वक पिता जी के हाथ में से कागज़ का वह पर्चा लेकर पढ़ने लगी। कमला ने मुस्करा कर कहा—

'पिता जी ! चलो भोजन करलो। आज सब निराहार हैं। मैंने सबको बहुत समझाया और तसल्ली दी पर मेरी किसी ने न सुनी। मुझे विश्वास था आपका केशव सकुशल घर आ जायगा।'

भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर सुशीला और दमयन्ती कमला बहिन के पास बैठ गई। दमयन्ती ने कहा, 'जीजी !! बच्चों की रक्षा और शिक्षादि के सम्बन्ध में हमें और बहुत सी बातें जाननी हैं। आप तो बड़ी चतुर हैं ? कृपा करके हमें विस्तार पूर्वक ये सब बातें समझा दो।'

कमला ने कहा, 'आज का पाठ बन्द रहेगा। कल इन बातों की चर्चा करेंगे।'

सुशीला ने कहा, 'दमयन्ती ! कल ही ठीक रहेगा। आज जीजी का मन ठीक नहीं देख पड़ता है। उधर 'केशव' भी उनका पीछा नहीं छोड़ता है। बेचारा सहमा हुआ है। भारी मेलों में जाने से मुझे तो वैसे ही घृणा थी, परन्तु आज तो मैं इन मेलों के बड़ी खिलाफ हो गई हूँ। परमात्मा ने बड़ी कुशल की कि केशव के शरीर पर कोई भूषण न था नहीं तो उसका जीवन भी खतरे में पड़ जाता।'

दमयन्ती ने कहा, 'जीजी से ऐसी भूल हो जाय, यह असम्भव है। अनियंत्रित मेले में जाने के मैं भी विरुद्ध हूँ।'

दूसरे दिन दोपहर को तीनों बहनें एक स्थान पर बैठ गईं। पाठ प्रारम्भ होने से पूर्व दमयन्ती ने कहा, 'जीजी !! आज मैं एक पण्डित जी के व्याख्यान में गई थी। उसमें उन्होंने एक माता की मूर्खता का बड़ा अच्छा चित्र खींचा था।'

सुशीला ने उत्सुकता से पूछा 'हमें भी सुनाओ' दमयन्ती ने कहा—

'उन पण्डित जी ने बतलाया कि किसी गृहस्थ ने उन्हें आग्रह पूर्वक अपने यहां भोजन के लिये आमन्त्रित किया। जब पण्डित जी भोजन के लिये उनके घर पर पहुँचे तो उनकी माता ने अपने २ बालकों को पण्डित जी को प्रणाम करने के लिये कहा। लड़कों को

(५६५)

यह बात सिखाई नहीं गई थी अतः लड़कों ने प्रणाम न किया । इस पर माता बच्चों पर बड़ी भुँभलाई और उनसे जबरदस्ती करने लग गई । परन्तु लड़कों ने प्रणाम न किया । बच्चों के कपड़े बड़े मैले और गन्दे थे । उनके मुँह पर राल और नाक वह रही थी । पंडित जी को माता के उस दुराग्रह पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा कि बच्चों को इस प्रकार सताने से क्या लाभ ? आप उन्हें प्रणाम करने के लिये कहती हैं परन्तु उन्हें आपने इतना गंदा बना रखा है कि देखने को तवियत नहीं करती । इस पर उन बच्चों का पिंड छूटा ।

कमला ने कहा माता पिता को इन बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । बच्चों की सफाई के सम्बन्ध में हम इससे पूर्व के पाठ में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं । बालक बड़े अनुकरण शील होते हैं । उन्हें स्वच्छता का पाठ पढ़ाने के लिये माता पिता इत्यादि को स्वयं सदा स्वच्छ वस्त्र पहनने तथा स्थान स्वच्छ रखना चाहिए । इसके साथ ही स्वच्छ रहने की माता पिता को ताड़ना भी रखनी चाहिये ।

जब बच्चे कुछ बड़े हो जायँ और बोलने लग जायँ तभी सबसे प्रथम उन्हें पिता का नाम घर तथा ग्राम इत्यादि बता देने चाहिए जिससे यदि वे कहीं खो जायँ तो पूछने पर अपना पता बता दें । मैंने एक बालक को देखा वह मेले में खो गया था । जब उससे पूछा गया कि किसका बेटा है तो उसने कहा 'चाचा' का । जब चाचा का नाम पूछा गया तो चुप हो गया । यदि वह चाचा शब्द के बदले अपने पिता का नाम बता देता तो अवश्य कुछ पता चल जाता, परन्तु उसका कुछ पता न चला ।

बहुधा मातायें अपने रोते हुए बालकों को चुप करने अथवा उन्हें दंगे से रोकने के लिये उनके मन में डर उत्पन्न कर देती हैं कि सोजा नहीं लूलू आ जायगा । बाबा जी पर पकड़वा दूंगी । कंजरी भोली मैं डालकर ले जायगी । इसी प्रकार भूत प्रेत आदि का डर बिठला देती हैं । इस प्रकार का चित्त पर बैठा हुआ भय प्रायः मृत्यु पर्यन्त बच्चों के मन में बना रहता है । उनके हृदयों में इस प्रकार का भय नहीं उत्पन्न करना चाहिये । मेरे पड़ोस में एक पढ़ी लिखी माता थी । उनकी सास उनके बच्चों को प्रायः इसी प्रकार डराया करती थी । माता के मना करने पर भी वे न मानती थी । एक बार उनके एक बच्चे को इतना भय दिखाया गया कि वह इसी भय के कारण मर गया ।

बच्चों को केवल ईश्वर का भय दिलाना चाहिये, उन्हें समझाना चाहिए, कि वह सब स्थानों पर हमारे अच्छे और बुरे कर्मों को देखता तथा पापी को दण्ड देता है । हम अपना कोई कर्म उससे छुपा नहीं सकते । वह हर समय और हर स्थान पर हमारी रक्षा करता है ।

सन्तान के नाम श्रेष्ठ और सार्थक रखने चाहिए । जिससे बड़े होने पर अपने नाम

(५६६)

पर उन्हें लजित न होना पड़े। नाम का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बहुत पड़ता है। बच्चों को अपने नाम को सार्थक करने की प्रेरणा माता पिता तथा गुरुजनों की ओर से मिलनी चाहिए। मेरा विचार सार्थक और श्रेष्ठ नामों की एक पुस्तक तैयार करने का है जिससे माता पिता अपने बच्चों का नाम रखने में उससे सहायता ले सकें।

माता पिता को अपनी सन्तानों का पालन पोषण इस रीति से करना चाहिए कि उनसे व्यवहार में कोई भेद भाव न हो। सबको समान दृष्टि से देखकर लालन पालन होना चाहिये पुत्र और पुत्रियों के पालन में विशेष सावधानता वर्तनी चाहिए। जो माता पिता ये भाव रखते हैं उनके इस व्यवहार से सन्तानों में प्रेम और सौहार्द का अभाव हो जाता है और इसके बड़े भयंकर फल दृष्टिगोचर होते हैं।

बच्चों को दण्ड देने की क्रिया माता पिताओं को सीखनी चाहिए। यों ही अन्धाधुन्ध ढंग से बच्चों को ताड़ना करने या दण्ड देने से लाभ के बदले हानि हो जाती है और बच्चे सुधरने के स्थान में बिगाड़ जाते हैं। अतः दण्ड देने में बड़ी सावधानता वर्तने की आवश्यकता होती है। सबसे पहले माता पिता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि निरपराध बच्चे को दण्ड न दिया जाय और अपराधी बच्चा दण्ड से बच न जाय। जो मातापिता इसके विपरीत आचरण करके निरपराधी बच्चे को दण्डित करते और अपराधी को छोड़ देते हैं वे अपने बच्चों में स्वतः ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करने का कारण बनते हैं।

बच्चे को दण्ड देने के भी कई प्रकार हैं। सबसे पहले माता-पिता को प्रेम और क्षमा से काम लेना चाहिये। यदि बच्चे से पहली बार कोई अपराध हो जाय तो उन्हें प्रेम पूर्वक समझाना चाहिए। यदि दूसरी तीसरी बार अपराध हो जाय तो अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए। बच्चों को उसकी मन चाही वस्तुएँ कुछ समय के लिए बन्द कर देनी चाहिए और उन्हें करना चाहिये कि यदि आगे अपराध नहीं करोगे तो वह वस्तु मिलेगी अन्यथा नहीं। एक प्रकार यह हो सकता है कि अपराधी बच्चे के सामने निरपराधी बच्चों की प्रशंसा और उसकी निंदा करके उसे उसके अपराध का दण्ड देना चाहिए। एक प्रकार यह भी हो सकता है कि जो अपराध बच्चा करे अर्थात् यदि वह कूड़ा कर्कट करे या घर बार बिगाड़े और समझाए से न माने तो उससे कूड़ा कर्कट उठवाए और घर साफ कराए। इस प्रकार उस अपराध का दण्ड उसे अनायास मिल जाता है। यदि कोई बच्चा माता पिता का कहना न माने या तो उसका खाना बन्द कर दिया जाय, या उसे ताड़ना की जाय, परन्तु यदि बालक बार बार यही अपराध करे तो एक बार ही अच्छी ताड़ना दे दी जाय जिससे वह उसे याद रहे। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि बड़े बच्चों को बार बार कठोर ताड़ना देना अच्छा नहीं।

(५६७)

इससे बालक डीठ और निडर होकर निर्लज्ज हो जाता है। बच्चों को सबके सामने फटकारना वा भिन्नकारना न चाहिए। जब बच्चा क्रोध में हो तब उससे क्रोध से नहीं बोलना चाहिए उसके क्रोध को कोई खेल इत्यादि की वस्तु देकर शान्त कर देना चाहिए। क्रोध के समय ताड़ना का भी बच्चे पर कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु चुप रहने से बच्चे को पर्याप्त ताड़ना हो जाती है। जब क्रोध शांत हो जाय तब एकान्त में शिक्षा के लिए उसे ताड़ना दे। प्यार से काम लेकर उसे उत्साहित करना चाहिए। संक्षेप में बच्चे में माता पिता की आँखों का भय उत्पन्न करना चाहिए। मार पीट वा छड़ी वैंत का नहीं। जहाँ तक हो सके बच्चों में ऐसी भावना विकसित करनी चाहिए कि वे माता पिता के सामने अपनी बात बिना डर व भय से कह दें। शारीरिक दण्ड जहाँ तक बन पड़े नहीं देना चाहिए। दण्ड में यह देखना चाहिए कि बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास कुंठित न हो।

दमयन्ती ने कमला की ये सब बातें सुनकर कहा—जीजी ! दण्ड के सम्बन्ध में हमने एक कहानी पढ़ी है। आपकी बातें उस कहानी से बिल्कुल सत्य सिद्ध होती हैं।

कमला ने प्रसन्न होकर कहा 'दमयन्ती ! मुझे भी अपनी कहानी सुनाओ।'

दमयन्ती ने कहा 'जीजी ! एक बार एक राजा के सामने तीन अपराधी प्रस्तुत किए गए। उस राजा ने दो अपराधियों को तो १०, १० वैंत लगवा कर बाहर निकाल दिया परन्तु तीसरे अपराधी को जिसका अपराध उनकी अपेक्षा बड़ा था, मारा-पीटा नहीं वरन् उसे बहुत बुरा भला कहकर बाहर निकलवा दिया।' जब तीनों अपराधी राज महल के बाहर चले गए तो राजा के मन्त्री ने राजा से कहा 'महाराज ! जिन अपराधियों का अपराध साधारण था उन्हें तो आपने वैंतों से पिटाया। परन्तु जिस का अपराध बहुत बड़ा था उसे आपने कुछ भी दण्ड न देकर केवल बुरा भला कहकर बाहर निकाल दिया। आपकी यह दण्ड व्यवस्था मेरी समझ में नहीं आई।' इस पर राजा ने उत्तर दिया 'मन्त्री जी ! मेरी दण्ड व्यवस्था उचित थी वा अनुचित इसका पता आपको थोड़ी देर में ही लग जायगा। मैंने अपराधियों को उचित ही दण्ड दिया है।' राजा के इस कथन से मन्त्री को सन्तोष न हुआ और वह अपनी जगह पर बैठ गया। इसी बीच में एक राजकर्मचारी दौड़ता हुआ राजमहल में आया और राजा के सामने हाथ जोड़कर कहा 'महाराज ! आपने जिन ३ अपराधियों को दण्ड दिया था उनमें से एक जिसे आपने बुरा भला कहा था, आत्म हत्या करके हमारे सामने मर गया है। यदि श्रीमान् चाहें तो अपनी आँखों से देख सकते हैं।' राजा ने प्रसन्न भाव में कहा मन्त्री जी को ले जाओ।' राजा के इस वाक्य को सुनकर मन्त्री हाथ जोड़कर बोला, 'महाराज आपकी दण्ड व्यवस्था ठीक थी,

(५६८)

यह बात अब मेरी समझ में आ गई है। आपने तीनों अपराधियों को उनकी मानसिक अवस्था को दृष्टि में रखकर ही दण्ड दिया था।'

कमला ने कहा 'दमयन्ती ! तुम मेरी बात को भली भाँति समझ गई हो। दण्ड के सम्बन्ध में अब और कुछ कहने की जरूरत नहीं रही है।'

'बच्चों की सबसे मुख्य शिक्षा इसी बात की है कि उनमें आज्ञा पालन की आदत पड़ जाय। जिस बालक ने यह बात सीख ली, मानो उसने संसार की सब बातें सीख लीं। अच्छी माताएँ आज्ञा पालन की आदत अपने बच्चों में डालने की विशेष चिन्ता रखती हैं। एक बार नैपोलियन अपने भाइयों के साथ अपने चचा के कमरे में खेल रहा था। उनके चचा घर में अकेले थे। उनके पास धन भी पर्याप्त था, परन्तु वे बड़े कुपण थे। अपने भतीजों को जो अपनी विधवा माँ के आश्रय में पल रहे थे और निर्धन थे, मांगने पर भी वे एक फूटी कौड़ी न देते थे और सदैव गरीबी का मिस करके बच्चों को टाल दिया करते थे। उस दिन नैपोलियन के भाइयों ने उनकी अलमारी से रुपयों की थैली निकाल ली। इस पर उनके चचा बड़े लजित हुए और बच्चों से थैली छीनने लग गये। बच्चे थैली देते न थे। अकस्मात् वहाँ नैपोलियन की माता देवी लाटेशिया आ गई। उसने देखा कि बच्चों और उनके चचा में थैली के लिये छीना झपटी हो रही है। उसने तत्काल बच्चों को थैली देने के लिए आज्ञा दी। इधर माँ के मुँह से आज्ञा निकली और उधर थैली अलमारी में पहुँच गई। बच्चों के आज्ञापालन के इस भाव से उनके चचा बड़े प्रभावित हुए और बच्चे तथा देवी लाटेशिया की भूरि २ प्रशंसा करने लग गए। रामायण में तुम लोगों ने भरत और श्री रामचन्द्र जी की आज्ञापालन की श्रेष्ठ कथाएँ पढ़ी और सुनी होंगी।

बच्चों की शिक्षा और लालन-पालन में माता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'यथा समय प्यार दुलार और यथा समय दुतकार फटकार' इससे बालक आज्ञाकारी हो जाते हैं। चतुर माताओं को तो अपने बच्चों को ताड़ना करने की आवश्यकता भी नहीं होती। वे बातों ही बातों में बालक को शिक्षा दे देती हैं। जब बालक दंगा करने लगते हैं तो सबको अलग २ करके खेल में लगा कर उनका दंगा मिटा देती है। बीच २ में आप भी उनके खेल को देखती रहती हैं और थोड़ी देर पीछे उनसे खेल समाप्त करा देती हैं। यदि बालकों की इच्छा खेल समाप्त करने की नहीं देखती तो उनकी प्रार्थना पर थोड़ी देर की आज्ञा और दे देती हैं। बालक अपनी इच्छा पूरी होते देख कर प्रसन्न हो जाते और फिर स्वयं ही खेल समाप्त करके माता के पास आ जाते हैं। उस समय माता उनके इस आज्ञा पालन की प्रशंसा करती और अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हैं। जब बालक किसी वस्तु के लिए मचलते

(५६६)

हैं और माता का कहना नहीं मानते तो वह वस्तु उन्हें नहीं देती और इस ढंग से मना करती है कि उसकी आज्ञा का भंग करने की बच्चों को हिम्मत नहीं होती ।

वह बालकों के सामने कोई बुरी बात नहीं कहती और न कोई बुरा शब्द मुँह से निकालती है । न गाली देती है न बकती है न मुँह चढ़ाती है । उसे भय होता है उसकी देखादेख बच्चे भी वैसा न करने लग जायँ ।

‘जब से बालक बोलने लगे तभी से उनके साथ मधुर वचन बोले जायँ । सदैव आदर सूचक शब्दों में उन्हें बुलाना वा शिक्षा देनी चाहिए ।

‘बालकों में यह भी टेव डालनी चाहिए कि वे वस्तुओं को आपस में बाँटकर खायँ । उन्हें हाट बाजार में न खाने दें वरन् घर लाकर ही खाने का स्वभाव डालना चाहिए ।

‘बालकों के सामने किसी से हँसी मजाक नहीं करना चाहिए और न बालकों से करना चाहिए । नहीं तो उनमें भी यह आदत घर कर जायगी । अपनी बुराई भी बालकों के सामने न करनी चाहिए नहीं तो उनमें माता पिता के प्रति आदर का भाव कम हो जायगा । अच्छी बात कहने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए ।

‘बालकों को छोटपेन से ही प्रणाम, नमस्ते इत्यादि की आदत सिखानी चाहिए । प्रातः काल उठते ही वे गुरुजनों को प्रणाम करें । रात्रि को सोते समय भी प्रणाम करके सोयँ । जब कोई बड़ा आदमी घर आए वा जाए तो उसे भी प्रणामादि करें । जब दूसरों के घर जायँ तो दङ्गा न करें । जो बालक अपने घर आयें उनसे न लड़ें वरन् प्यार से बोलें और खेलें । जहाँ दो मनुष्य बातें कर रहे हों वहाँ न जायँ यदि जायँ तो चुपके बैठे रहें ।

बच्चों को इधर उधर निरुद्देश्य आवाज़ नहीं फिरने देना चाहिए । खेलने के समय खिलाना चाहिए परन्तु नियत समय पर तमाम दिन नहीं । बच्चों को सभ्यता पूर्वक बैठकर बातें सुनने वा देखने का अभ्यास भी कराना चाहिए । माता पिता को देखना चाहिए कि आठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् लड़कियों को लड़कों में खेलने न दिया जाय और बड़ी लड़कियों को एक चारपाई पर सोने नहीं देना चाहिए । बच्चों में प्रारम्भ से ही ऐसी आदत डालनी चाहिये कि वे गुरुजनों और बड़े बूढ़ों की मान मर्यादा का ध्यान रखें । अपने से अधिक आयु वाले का कभी निरादर न करें वरन् सदैव उनका मान करें । किसी को कुरूप, लँगड़ा, लूला व अंगहीन देख कर हँसे नहीं वरन् दुखी को देखकर दुखी हों और उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार करें ।

इतना कह कर कमला ने कहा, ‘हमारा आज का प्राठ बहुत लम्बा हो गया है परन्तु

(५७०)

बच्चों की शिक्षा का विषय इतना विस्तृत है कि इस पर जितना कहा जाय कम है। अब मैं तुम लोगों से पूछती हूँ कि इस पाठ से तुमने क्या बात सीखी है ?

सुशीला ने उत्साह से कहा, 'जीजी !! बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में हमने आज बहुत सी बातें सीख ली हैं ? यदि ये बातें क्रिया में आ जायँ तो हमारी सन्तानों के श्रेष्ठ बनने में कोई सन्देह न हो। परन्तु इन बातोंको जानते और समझते हुए भी इनका पालन नहीं होता ? इसका कारण हमारी समझ में नहीं आया ?

कमला ने कहा, 'शील ! तुमने यह बहुत अच्छी बात उठाई है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे मन कुसंस्कारों में फँस गए हैं कि हम अच्छे मार्ग को जानते हुए भी बुरे मार्ग पर चल रहे हैं। हमारा चारों ओर का वातावरण जिसमें हम रहते हैं बहुत दूषित हो गया है और इसके कारण अच्छे संस्कार दब सँ रहे हैं। चतुर माता पिता अपने बच्चों को अच्छे वातावरण में रखने का यत्न करते और उन्हें उसी में घूमने फिरने देते हैं। परन्तु वे बालक धन्य हैं !! वे माता पिता धन्य हैं !! जिनमें स्वाभाविक पवित्रता और उसके कारण अच्छे रास्ते पर रहने की दृढ़ता होती है। वे बच्चे कितने ही बुरे वातावरण में क्यों न रहें उन पर कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु सब ही बच्चे इस प्रकार के नहीं होते, अतः हमें पूरी सवधानता करनी पड़ती है। संसार के महापुरुषों का जीवन प्रायः इसी स्वाभाविक पवित्रता से बनता है, परन्तु इसके लिए माता-पिता को बड़ा त्यागी, संयमी और शुद्धाचारी बनना पड़ता है।

अब तुम जाओ और अपना काम देखो।

भारतवर्ष तथा विदेश के आर्यसमाजों की सूची

समस्त भूमण्डल में जितनी आर्य समाजें हैं उनके पूरे पत्तों के सहित सूची सार्वदेशिक सभा ने अभी हाल में पुस्तक रूप में प्रकाशित की है।

कागज, छपाई आदि उत्तम हैं। मूल्य ॥) प्रति

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

साहित्य समीक्षा

“गीता परिशीलन”

ले०—विद्याभास्कर—श्री रामावतार शास्त्री वेदान्त तीर्थ मीमांसा रत्न प्रकाशक
“तत्त्व ज्ञान मन्दिर” अमलनेर जिला पूर्व खान देश पृष्ठ लगभग ४८२ मूल्य ३॥)

यद्यपि भगवद् गीता पर अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत तथा त्रैतवाद की दृष्टि से अनेकों भाष्य हो चुके हैं तथापि प्रतीत होता है कि अभी विद्वान् विचारक उस विषय पर अपने विचार प्रकट करने से थके नहीं हैं। श्री रामावतार शास्त्री जी ने ‘गीतापरिशीलन’ नाम से एक नवीन विचार सरणी को जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। प्रकाशकों के शब्दों में यह “भगवद् गीता के अद्वैत सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में जनता के समझ रखने वाला, गीता के प्रचलित भाष्यों से प्रायः प्रत्येक श्लोक में महत्त्वपूर्ण नवीनता रखने वाला, ज्ञान मार्ग तथा कर्मयोग मार्ग को अभिन्न बताने वाला, कर्म हीन ज्ञान मार्ग को अस्वीकार करने वाला, भक्ति तथा ज्ञान की एकता को स्वीकार करने वाला, सत्य को गीतानुसार प्रवाहित न करके गीता को सत्यानुकूल प्रवाहित करने वाला, सत्य, ईश्वर, सुख, अद्वैत, पुनर्जन्म, कर्मफल, मुक्ति, योग, ज्ञान, भक्ति, यज्ञ, अनासक्ति, संन्यास, अवतार, विश्व, वर्णव्यवस्था, शास्त्र आदि विषयों पर संसार के समझ नवीन विचार रीति लाने वाला अपने ढंग का सुचिन्तित नवीन भाष्य है।”

कोई भी विचारशील पाठक इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि इस पुस्तक में उपर्युक्त प्रायः सभी विषयों में अत्यन्त नवीन विचारों को (जिन्हें विचित्र का नाम दिया जाए तो भी अनुचित न होगा) प्रकट किया गया है। उदाहरणार्थ पृ० ३५४ पर विद्वान् लेखक कहते हैं “जिस समय मनुष्य इस अपनी फलाशा नाम की भ्रान्ति को पहचानेगा उस समय उसे जो भ्रान्ति शून्य स्थिति दीखेगी वही मनुष्य का आराध्य सच्चा ईश्वर होगा।” पृ० ३३८ पर वे लिखते हैं “अनासक्ति ही गीता के ईश्वर का स्वरूप है। उसके कथनानुसार मनुष्य को सम्पूर्ण जगत् के उत्पादन, रक्षा तथा विनाश करने वाले किसी सर्व व्यापी ईश्वर को बाह्य जगत् में से ढूँढ़ने का वृथा प्रयत्न नहीं करना पड़ता किन्तु अपने मन को शान्त

(५७२)

और सुखी बनाने वाले अनासक्ति रूपी सब्जे ईश्वर का दर्शन अपने ही मन में करना होता है ।” “गीता के वर्णनानुसार मन की इन्द्रियातीत अर्थात् इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त रहनेवाली त्रिगुणातीत अवस्था ही ईश्वर है ।” पृष्ठ ३५६

“श्रीमद्भगवद्गीता के पारिभाषिक शब्दों का कोष” पृष्ठ ४६६ पर “ईश्वर” शब्द के निम्न दो अर्थ दिये हैं ।

(१) मनुष्य को शक्तिमान् रखने वाली अनासक्ति नाम की मानसिक अवस्था ।

(२) विषय सुख बांटने वाली अज्ञानियों की कल्पित सत्ता ।

इन प्रकरणों को पढ़ने पर पाठकों को ऐसा प्रतीत होता है कि योग्य लेखक के विचारानुसार भगवद्गीता जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण भूत सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करती । किन्तु—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ । १३

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।

सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं, दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १३ । १५

अविभक्तं च भूतेषु, विभक्तमिव च स्थितम् ।

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं, प्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १३ । १६

इत्यादि सैकड़ों ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादक श्लोकों के गीता में होते हुए जिनमें ईश्वर को जगत् का कर्ता तथा धारक बताया गया है इस प्रकार की स्थापना कैसे की जा सकती है । यही प्रश्न है ।

पृष्ठ ३७६ पर योग्य लेखक कहते हैं “अपने अधिकार से बाहर निकल कर मृत्यु के अनन्तर जहाँ मनुष्य का लेशमात्र भी अधिकार नहीं है वहाँ किसी अवस्था को पाने की इच्छा करना मनुष्य का अज्ञान है । इस अज्ञान ने ही ‘पुनर्जन्मवाद’ या शरीरांत होने पर मिलने वाली किसी मुक्ति नामक अलौकिक अवस्था की कल्पना कराई है ।”

पृष्ठ ३७३ पर श्री पण्डित रामावतार जी लिखते हैं, “वर्तमान में शरीर के विद्यमान होने से अपने को बड़ा मानना तथा शरीर रहित मुक्ति की कल्पना करना भ्रान्ति है ।”

पृष्ठ ३७७ में श्री पण्डित जी लिखते हैं, “अपने जीवन काल से बाहर के विषय में बातें कहना और ऐसी बातों पर विश्वास करना, मिथ्या प्रलाप करना और मिथ्या जाल में फँस जाना है । मनुष्य का कर्तव्य केवल जीवन काल से सम्बन्ध रखता है । इस सीमा से बाहर के लिए जो कोई जो कुछ सोचता है सब कर्तव्य भ्रष्टता है सब मानव जीवन के लक्ष्य से

(५७३)

पतित होना है। ऐसी बातें मनुष्य को कर्तव्य से हटाने वाली और अकर्तव्य या अज्ञान में पँसाने वाली हैं।”

यदि श्री पण्डित रामावतार जी का तात्पर्य यह है कि मनुष्य क्रियात्मक जीवन को उच्च बनाने की ओर अधिक ध्यान दे तो वह बात ठीक है किन्तु उपर्युक्त रीति से जिस प्रकार के शब्दों में उसे प्रकट किया गया है मेरे विचार में वे भ्रम जनक हैं। उनसे साधारण पाठकों पर ऐसा प्रभाव होता है कि मानो पुनर्जन्मवाद गीतादि सम्मत नहीं। और वह मनुष्य को कर्तव्य मार्ग से पतित करने वाला है। “बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।” (गीता ४।५) प्रयत्नाद् यत्मानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ (६।५) इत्यादि अनेक श्लोकों में गीता पुनर्जन्मवाद का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन करती है। मरणान्तर मुक्ति का भी उसमें स्पष्ट प्रतिपादन है।

गीता परिशीलन परिशिष्ट ८ वें प्रकरण में ‘कर्मानुसार देह प्राप्ति’ का शीर्षक देकर विद्वान् लेखक कहते हैं, भोगासक्ति ही कर्मानुसार जन्म होने की कल्पना का आधार है। यह मन्तव्य गीता को मान्य नहीं है। गीता कहती है कि कर्मफलानुसार नाना प्रकार के जन्म होने की बात उन भोगासक्त अज्ञानी मनुष्यों की घड़ी हुई है जिनके पास व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं है। “.....गीता में कहीं भी इस सिद्धान्त का समर्थन नहीं कि शुभाशुभ जन्म किन्हीं शुभाशुभ कर्मों के फल के रूप में प्राप्त होते हैं।

गीता ने जान बूझकर इन सब प्रचलित कुविश्वासों की उपेक्षा की है और केवल मनुष्य की ज्ञानमयी स्थिति का वर्णन किया है जैसा कि ऊपर संक्षेप में दिखाया गया है गीता में पुनर्जन्म और अनेक जन्म सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन है। गीता के छुटे अध्याय के अन्तिम (४० से ४७ तक) श्लोक इस विषय में स्पष्ट हैं जिनमें योग भ्रष्ट के योगियों के कुल में उत्पन्न होकर उन्नति करने का उल्लेख है। १४ वें अध्याय के

‘यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देहभृत् ।

तदोत्तमविदां लोकान्, अमलान् प्रतिपद्यते ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा, कर्मसङ्गिषु जायते ।

तथा प्रलीनस्तमसि, मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

इत्यादि श्लोक कर्मानुसार उत्तम मध्यम वा अधम योनियों में जन्म का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। श्री पं० रामावतार जी ने गीता के २ य अध्याय के जिन श्लोकों की ओर निर्देश किया है उनमें कर्म फल में आसक्ति की निन्दा की गई है न कि कर्म फल सिद्धान्त से इन्कार किया गया है यह उस प्रकरण को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है।

(५७४)

एक विचित्र और आश्चर्य जनक बात यह है कि 'गीता परिशीलन' के सुयोग्य लेखक महोदय ने जो अनेक स्थापनाएँ की हैं उन में से बहुतों को गीतादि के प्रमाण देकर पुष्ट करने का प्रयत्न बहुत कम किया है इससे सर्वसाधारण ही नहीं विद्वानों के लिए भी उन विषयों पर प्रमाण पूर्वक विचार करना जरा कठिन हो जाता है। अनासक्ति पर योग्य लेखक ने विशेष बल दिया है जो निस्सन्देह गीता का मुख्य सिद्धान्त है। इस प्रकार योग्य लेखक के अनेक विचारों से न सहमत होते हुए भी हम उनके परिश्रम की तथा नवीन विचार सरणी और स्वतन्त्र विचारकता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। अगले संस्करण में यदि योग्य ग्रन्थकार अपनी स्थापनाओं को गीतादि के प्रमाण उद्धृत करके पुष्ट करने का प्रयत्न करेंगे तो विद्वानों को उन पर विचार करने में अधिक सुगमता होगी। आशा है विद्वन्मण्डली इस ग्रन्थ में प्रकाशित नवीन विचारों पर निष्पक्ष रूप से विचार करेगी और 'गीता' पर विस्तृत साहित्य में नवीन वृद्धि का अभिनन्दन करेगी।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

शारदा मन्दिर की अन्य उपयोगी पुस्तकें

१. महापुरुषों के दर्शन—(लेखक श्रीराम स्वरूप कौशल एम. ए.)
 २. स्त्रियों का ओज—(आचार्य चतुरसेन शास्त्री) मूल्य १)
 ३. देश का राष्ट्र गान—(राजनाथ पाण्डेय एम. ए.)
 ४. योगामृत—(लेखक प्रो. गोपाल जी बी. ए.) मूल्य १)
 ५. सहेली—कन्याओं के लिये। मूल्य ॥=)
 ६. उपदेशामृत पांचो भाग—बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिये। मूल्य १।=)
 ७. जीवनामृत
 ८. आनन्दामृत
 ९. पुरुषार्थामृत
 १०. भक्ति कुसुमाञ्जलि
 ११. कालचक्र
 १२. कथामाला—(श्री नारायण स्वामी)
 १३. कैलाश पथ पर ॥)
 १४. नीराजना
 १५. लोरजा
 - साहित्यिक (कविता १) प्रति पुस्तक
- बच्चों के लिये—१. राजपूत बच्चे, २. अम्मा कहानी सुना, दो भाग, ३. बच्चों के नाटक, ४. सखा की सीख, ५. सखी की सीख।

मिलने का पता—

शारदा मन्दिर बुक डिपो, नई सड़क, देहली।

आर्य समाज की चिनगारियां

(१)

स्वर्गीय श्री राजपाल जी शहीद

श्री राजपाल जी का जन्म-स्थान अमृतसर है। आपका बाल्य-काल वहां ही व्यतीत हुआ। आप पढ़ाई समाप्त करके जब कार्य-क्षेत्र में आये तो आप महाशय कृष्ण जी का जो प्रकाश नाम का समाचार पत्र है उसके मैनेजर बने। कार्य काल में दोनों का सम्बन्ध इस प्रकार का हो गया कि आप व्यवहार में भ्राता से बन गए।

प्रकाश का कार्य करते करते आपके चित्त में विचार आया कि आर्यसमाज के साहित्य प्रचार के लिये तथा आर्य वृद्धि के लिये पुस्तकालय खोलना चाहिये। तब आपने सरस्वती पुस्तकालय खोला। पश्चात् मास्टर लक्ष्मण जी रामनगरी ने अपना आर्य नाम का पुस्तकालय गुरुकुल को दे दिया। तब महात्मा मुन्शीराम जी ने वह पुस्तकालय श्री राजपाल जी को सौंप दिया तबसे उसका नाम आर्य पुस्तकालय भी सम्मिलित हो गया।

आपने अनेक पुस्तकें छपवाईं उन पुस्तकों में एक लघु पुस्तक छपवाई जिसका नाम रंगीला रसूल था उस पुस्तक पर लेखक का नाम न था और उस पुस्तक के लेखक को आर्यसमाज में भी बहुत कम व्यक्ति जानते हैं।

सरकार के रिपोर्ट विभाग ने उस पुस्तक को आपत्ति जनक नहीं समझा अतः उस पर कोई रिपोर्ट न की गई। परन्तु महात्मा गांधी जी को वह लघु पुस्तक रुचि कर न हुई उन्होंने ने अपने नव-जीवन पत्र में उसके विरुद्ध लिखा। उनके लेख के पश्चात् सरकार ने उसे जत कर लिया और मुसलमानों में आन्दोलन खड़ा होगया और श्री राजपाल जी पर अभियोग चलाया गया।

अभियोग के समय भी मुसलमान आन्दोलन करते रहे और प्रथम न्यायालय में आपको ६ मास की कैद हो गई और हाईकोर्ट में अपील की गई अपील में आप बरी हो गए।

न्यायालय में भी उनसे लेखक का नाम पूछा गया आपने उत्तर दिया जब पुस्तक प्रकाशन के समय मैंने उसपर नाम नहीं लिखा तो मेरा कर्तव्य है मैं अब भी नाम न बताऊँ। और आप ने नाम नहीं बताया।

उनके अभियोग से छूटने और नाम न बताने पर मुसलमानों के कोप का भाजन आप

(५७६)

ही बने, आप पर प्रथम खुदावचन ने आक्रमण किया दैवयोग से उस समय श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी और लेखक वहाँ थे उस आक्रमण में आप बच गए ।

उसके लगभग १ वर्ष पश्चात् आप पर दूसरा आक्रमण इल्मदीन ने किया, जिस में आप शहीद होगए ।

इस घटना से मैं केवल यह दिखाना चाहता हूँ कि श्री राजपाल जी ने अपनी जान देना अच्छा समझा परंतु उस पुस्तक के लेखक का नाम कहीं न बताया जैसे पंजाबी कविने कहा हैं, 'वारसशाह न भेद सन्दूक खुले भावें जानदा जिन्दये दुरजाय' आपने जान दी पर भेद न खोला ।

इस हत्या में महात्मा गांधीजी भी कारण हैं वह चाहे अज्ञान पन से हों चाहे जान कर हों ।

यही बात एक बार महामना मालवीय जी को बताई गई आपने उस समय कहा था ऐसे व्यक्तियों पर आर्यसमाज जितना अभिमान करे थोड़ा है, जो व्यक्ति भेद न बता कर जान देता है वह महात्मा है ।

जो सज्जन बिना प्रयोजन, बिना पूछे, एक की बात दूसरे को बताते फिरते हैं उनको इस महात्मा के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

(२)

सरदार हरीसिंह जी आर्य

सरदार हरीसिंह जी का जन्म ग्राम भैरणी रोड़ा जिला लुधियाना में हुआ था । बाल्या-वस्था में आपने गुरुमुखी पढ़ी और पखोंवाल के प्राइमरी स्कूल में थोड़ा उर्दू पढ़ा फिर आप अपने कृषि कार्य में लग गए ।

एक पण्डित नारायण दास जी वड्डादी निवासी ने भैरणी रोड़ा में भागवत् की कथा आरंभ की उस कथा के श्रोताओं में सरदार हरीसिंह जी भी थे । आपने उनसे आर्य भाषा (हिन्दी) की वर्णमाला सीखी और एक दिन प्रार्थना की कि महाराज आप गायत्री पाठ की महिमा वर्णन करते हैं यदि मुझे गायत्री मन्त्र सिखा दें तो बड़ी कृपा होगी । मैं इसका पाठ (जप) किया करूंगा ।

पण्डित जी ने उत्तर दिया आप शूद्र हैं (आप जाट थे) आपको गायत्री मन्त्र सिखाना पाप है । आपको दुःख तो हुआ परन्तु उपाय कोई न था । एक दिन आप रायकोट किसी कार्य वश गए वहां बाजार में आर्य समाजी उपदेशक उपदेश कर रहा था आप भी वहाँ खड़े हो गए । लोग उसको नास्तिक कहते थे । इनको यहाँ से चले जाने की प्रेरणा करते थे ।

(५७७)

उपदेश की समाप्ति पर आपने उससे कहा “महाराज ! मैं नट हूँ और गायत्री सीखना चाहता हूँ ।” वह साथ ले गए और इनको संध्या की पुस्तक देकर उसमें से गायत्री बता दी । आपने उसे कण्ठस्थ किया ।

अब कुछ संस्कृत पढ़ने की अभिलाषा हुई, तब गृह कार्य करके प्रति दिन रायकोट जाने लगे जो चार कोस की दूरी पर था और संस्कृत पढ़ी ।

आपने अपने ग्राम और समीप वर्ती ग्रामों में आर्य समाज का प्रचार किया । आर्य समाजी होने से आपका आचार इतना शुद्ध होगया जिस से प्रत्येक पुरुष उनका विश्वास करता था । वह कभी झूठ न बोलते थे, सर्वदा परोपकार में यत्न शील रहते थे । एक बार ग्राम में कुछ विवाद हो गया और उसके निर्णय के लिए थानेदार ग्राम में आया, वह थानेदार भी घूसादि दोषों से रहित था । उसने आकर लोगों से पूछा और वादि प्रतिवादि के साक्षियों सहित बियान लिखे । इतना करने पर भी वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचा । कि ठीक २ क्या बात है । वह चिन्ता में निमग्न था । उसने ग्राम वासियों से पूछा आपके ग्राम में कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे लोग सत्य वक्ता समझते हैं । सब ने कहा कि इस समय ऐसा हरिसिंह आर्य है । उसने इनके पास चौकीदार भेजा परन्तु हरिसिंह जी ने उसे कह दिया मेरा वहाँ कोई काम प्रतीत नहीं होता अतः क्षमा करें ।

तब थानेदार ने फिर आदमी को भेजा और कहा कि मैं आप से मिलना चाहता हूँ तब आप वहाँ आ गए जहाँ थानेदार ठहरा था ।

थानेदार ने कुछ वार्तालाप के पश्चात् कहा इस अभियोग के विषय में आप कुछ बतायें ‘हरिसिंह जी ने कहा, यह मेरा काम नहीं है ।’ बल देने पर आपने कहा “मेरे कहने का आपको क्या लाभ क्योंकि आपकी फायल पर जो है वह करना है ।” थानेदार ने कहा “नहीं आप जो कुछ कहेंगे मुझे विश्वास है वह सत्य होगा और मैं वैसा ही करूँगा ।” तब आपने कहा वादि, प्रति वादि को बुला लो, जब वह आ गए आपने उनसे कहा देखो भाई मैं न तो आपका गवाह हूँ न और कुछ हूँ फिर आप इस विषय में मुझे क्यों डालते हैं । यदि आप चाहते हैं कि मैं कुछ बताऊँ तो बताने से पहले मैं आपसे पूछता हूँ यदि आप मेरे कहने पर अमल करें तब तो मैं कह देता हूँ अन्यथा मुझे जाने दें ।

अन्त में वह दोनों कहने लगे आप ग्राम में रहते हैं सब कुछ जानते हैं अब हम कुछ न करके आपके सामने हैं आप जो कहेंगे हम वही करेंगे । तब उन्होंने जो कुछ कहा उसे दोनों ने स्वीकार किया और थानेदार प्रसन्नता से वही निर्णय लिख कर ले गया ।

उसके पीछे भी जिस व्यक्ति ने सरकारी न्यायालय की शरण न लेनी हो वह उनके पास जाकर निर्णय प्राप्त करते थे ।

अब उनका भतीजा सरदार सम्पूर्ण सिंह है जो आर्य समाज का काम करता है ।

उनके सत्य वक्ता पत्र की समीपवर्ती ग्रामों में जहाँ चर्चा थी वहाँ निरभिमान, निष्पक्षता की भी धाक थी आप अपने ग्राम में अन्य समय में कन्याओं को अपने गृह पर पढ़ाया करते थे क्योंकि ग्राम में स्त्री शिक्षा का प्रचार न था ।

—स्वतन्त्रानन्द

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारक-सम्मेलन, मद्रास के ग्यारहवें अधिवेशन के सभापति पं० रामनारायण मिश्र (काशी) का अभिभाषण

हिन्दी-प्रेमी बहनो और भाइयो,

मुझे आपकी आज्ञा काशी में मिली और मैं आपकी सेवा के लिये यहां मद्रास में उपस्थित हूँ। मैं अब तक यह न जान सका कि मैं इस सम्मान के लिये क्यों चुना गया। मैं न तो सुलेखक हूँ न सुवक्ता, न नेता हूँ, न महारथी। हां, संभव है कि आपने मेरे द्वारा काशी-नागरी प्रचारिणी सभा का इसी प्रकार आदर करना उचित समझा हो, क्योंकि 'सभा' से मेरा घनिष्ठ संबंध है और उसी के नाते मैंने काशी में आपके यात्री-मंडल का संवत् १६६० (सन् १६३४) में स्वागत किया था जो आपका संदेश लेकर उत्तर भारत गया था। हिन्दी भाषा की प्रगति के इतिहास का हम उसे एक भावोत्पादक अध्याय समझते हैं। हमने तो वह दिन भी देखा था जब हमारे ही संयुक्त प्रदेश में, जहां के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी है, लोग अपनी भाषा से इतने उदासीन थे कि विदेशी भाषा को सीखना और उसे शिक्षा का माध्यम बनाना गौरव की बात समझते थे। उन दिनों हम विदेशी भाषा अँगरेजी बोलने का अभ्यास करते थे और विदेशी लिपि फारसी के प्रयोग से ही अपना लाभ समझते थे। ऐसे ही समय संवत् १६५० (सन् १८६३) में, ४७ वर्ष हुए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी का जन्म हुआ। सभा ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को संवत् १६६७ (सन् १६१०) में जन्म दिया। उस समय तक सभा ने केवल १७ वर्ष तक हिन्दी-प्रचार के क्षेत्र में काम किया था। सम्मेलन ने ८ बरस के अन्तर संवत् १६७५ (सन् १६१८) में दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार की योजना तैयार की। यह सम्मेलन के उज्ज्वल कार्यों का एक उदाहरण है। ६ बरस तक सम्मेलन के अंतर्गत रहकर आपने अपने को संवत् १६८४ (सन् १६२७) में स्वावलंबी बना लिया। तब से यहां दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि आपके प्रतिनिधियों की उत्तर-भारत-यात्रा हिन्दी में नवयुग उत्पन्न करने

(५७६)

वाली एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिस पर नागरीप्रचारिणी सभा से अधिक और कौन आह्लादित हो सकता था जिसने हिंदी के वे पुराने दिन देखे थे। मैं नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से आपको बधाई देता हूँ।

मद्रास की यह मेरी दूसरी यात्रा है। संवत् १९८६ (सन् १९२६) में हमारा यात्रीदल यहां से श्री रंगनाथ, श्री मीनाक्षी देवी और सेतुबन्ध रामेश्वर की यात्रा करता हुआ लंका के रास्ते विदेश गया था। उस समय मद्रास नगर के बाजारों में और मन्दिरों के आस पास तो हमें हिंदी बोलने वाले मिले थे, पर शहरों से दूर और साधारण श्रेणी के लोगों में भी टूटी फूटी अँगरेजी बोलने वाले बहुत अधिक मिले थे। आपने मुझे यह अच्छा अवसर दिया है कि मैं इस बेर यह देख सकूँ कि दैनिक व्यवहार में और साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी यहां कितनी आगे बढ़ गई है निस्सन्देह आगे बढ़ी ही होगी। क्योंकि इस शुभ कार्य पर नौ लाख रुपये के लगभग खर्च हुआ है और एक लाख देवियों और सज्जनों ने अब तक परीक्षाएँ दी हैं। ऐसी उन्नति का फल उन्हीं लोगों तक सीमित नहीं रहा करता जो केवल परीक्षा में बैठते हैं, बल्कि इसका प्रभाव अन्य सहस्रों नर-नारियों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। मेरा विश्वास है कि इस समय तक हिन्दी की आवाज़ सारे प्रान्त में आपके द्वारा गूँज गई होगी।

हिन्दी का कार्यक्षेत्र चार हिस्सों में बांटा जा सकता है :—

पहला वह क्षेत्र है जहां की मातृभाषा हिन्दी है, जैसे संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपूताना, मध्यभारत और पूर्वी पंजाब। इस क्षेत्र की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यहां बड़े २ कवि, सन्त और सुलेखक हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी को अलंकृत किया है।

साथ ही यहां हिन्दी-साहित्य का गौरवपूर्ण भण्डार छिपा पड़ा है जिसकी ओर यदि ध्यान न दिया तो वह नष्ट हो जायगा और भारत के अमूल्य साहित्यिक धन को हम खो बैठेंगे। नागरीप्रचारिणी सभा ने वर्षों से हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का विभाग खोल रखा है। जो ग्रन्थ मिले हैं उन में से बहुतों को प्रकाशित भी किया है।

हिन्दी का दूसरा कार्यक्षेत्र वह है जहां की भाषा की शब्दावलि में संस्कृत के शब्द पाए जाते हैं और जहां की लिपि देवनागरी का ही रूपान्तर है, जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल। गुजरात के सम्बन्ध में तो इतना ही कहना पर्याप्त

(५८०)

है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी ने गुजरात में पैदा होने पर भी हिन्दी को व्यापक बनाने की जितनी चेष्टा की है उसके लिए हम लोग उनके सदा अनुगृहीत रहेंगे। महाराष्ट्र के भी हम ऋणी हैं जिस ने हिन्दी को प्रोत्साहन दिया और अपनाया। बंगाल पहले तो हिन्दी की ओर झुका था। राजा राममोहन राय ने हिन्दी में पुस्तकें लिखी थीं। बाबू शारदाचरण मित्र ने एक लिपि विस्तार परिषद् खोली थी और बाबू नवीनचन्द्र राय ने पंजाब में हिन्दी का प्रचार किया था। इधर बंगाली विद्वानों ने हिन्दी की ओर कुछ कम ध्यान दिया है। उनको अपनी मधुर भाषा पर स्वाभाविक अभिमान है, पर हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने से किसी प्रान्त की भाषा दब नहीं जायगी। यह आशंका निराधार है, क्योंकि राष्ट्रभाषा का प्रयोग तो अन्तःप्रान्तीय व्यवहार के लिए किया जायगा और यथार्थ में भी किया ही जाता है। मुझे स्वयं पूर्वी बंगाल, उड़ीसा और आसाम का अनुभव है। वहां हिन्दी से साधारण काम अच्छी तरह चल जाता है। सन्तोष की बात है कि सर मन्मथनाथ मुकर्जी और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इन दिनों हिन्दू सभा के अधिवेशनों में इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा-पद को प्राप्त कर सकती है।

हिन्दी का तीसरा क्षेत्र वह है जहां की भाषा और लिपि हिन्दी से बिल्कुल ही भिन्न है, जैसे मद्रास प्रांत। आपके प्रांत में हिन्दी स्वच्छ राष्ट्रीय भाषा होने का रूप धारण करती है। यहां पहुँचकर उसे आपके ऐसे उत्साही, कार्यकुशल और देश भक्त प्रचारक मिल गये हैं। आपके प्रांत की भाषाएँ बड़ी प्राचीन, सम्पन्न और उन्नत हैं। हिंदी उन्हें अपने उच्च आसन से उतारने नहीं आई है और ऐसा वह कर भी नहीं सकती। वह तो भावों और विचारों के आदान-प्रदान के लिये आई है। वह यहां व्यवहार में सुविधा देना चाहती है। जहाँ वह अपना साहित्य आपके सामने रखती है वहां वह इसके लिये भी उत्सुक है कि आप अपनी तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ी भाषाओं के उत्तम साहित्य का रसास्वादन उसे कराएँ। शेक्सपियर और उमर खैयाम का अनुवाद तो हम हिन्दी में पाते हैं, पर खेत की बात है कि आपके सुकवियों और सन्तों की ललित एवं उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद से हिन्दी वंचित है। इस कमी को पूरा करने का इधर प्रयत्न आरंभ हो गया है। आपके ये कवि और सन्त उसी संस्कृति के पोषक थे जिसके पुजारी हम आपकी ही तरह हैं।

(५५१)

सुनने में आया है, पर इस बात पर विश्वास नहीं होता, कि इस प्रांत के कुछ भाइयों की ऐसी धारणा है कि हिन्दी का उत्तर भारत से आकर राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होना उत्तर का दक्षिण पर नया आक्रमण ही है, जैसा कि कहा जाता है कि प्राचीन आर्यों ने किया था। राष्ट्र के एकीकरण के पवित्र आयोजन के अन्दर जिन्हे आक्रमण की गंध आती है उनके संबन्ध में क्या कहा जाय। ऐसे लोग अंतःप्रांतीयता का स्वप्न भी नहीं देख सकते।

और हिन्दी का चौथा क्षेत्र भारतवर्ष से बाहर है जहां भारतीय लोग अपना देश छोड़कर बस गए हैं; जैसे लंका, ब्रह्मदेश, सिंगापुर, मारिशस, फिजी, ट्रिनीडाड आदि। इस चौथे कार्यक्षेत्र की ओर अभी हमारा ध्यान नहीं गया है। पर इस ओर हमारी असावधानी हमारे लिये घातक हो रही है। नागरी प्रचारिणी सभा के एक उत्साही सभासद ने लंका में कुछ पाठशालाएँ खोली थीं। उनमें प्रवासी हिन्दुस्तानियों के अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं ने भी हिंदी पढ़ना शुरू कर दिया था। पर धनाभाव के कारण काम बंद हो गया। हमारे एक दूसरे सभासद ने फारस की खाड़ी के एक टापू मस्कत और मत्रा में नागरी प्रचारिणी सभा खोली है। हमारे पास अनेक स्थानों से वुलाहट के पत्र चले आ रहे हैं। कई उपनिवेशों में हिंदी के पुस्तकालय खुले हैं। ये सब बातें प्रमाणित कर रही हैं कि वहां के भारतीयों को अपनी देश भाषा से प्रेम है, पर इन उपनिवेशों की ओर हमारे नेताओं का ध्यान अब तक नहीं गया। कई प्रमुख हिन्दी भक्तों और दानवीरों का इस विषय की ओर सभा ने ध्यान दिलाया, पर कुछ फल न निकला। क्या ही अच्छा हो यदि एक बेर महात्मा गांधी इस ओर ध्यान दे दें। उपनिवेशों की अवस्था का ज्ञान उनसे अधिक हमारे देश में किसी को नहीं है उनके ध्यान देते ही जादू का सा असर होगा। बिखरी हुई शक्तियां एकत्र हो जायेंगी और इस काम के लिये धन-जन की कमी न रह जायगी। पर जब तक इस महान कार्य के लिये महात्मा जी का आशीर्वाद नहीं प्राप्त होता, क्या तब तक यह काम रुका रहेगा ?

आप तो समुद्र तट के निवासी हैं। आपके लिये जल और थल दोनों मार्ग खुले हैं। इसलिये क्या यह कठिन है कि इस प्रांत के कुछ उत्साही मित्र, जिन्हें निकट वर्ती लंका आदि द्वीपों में जाने का अवसर मिलता रहता है, हिन्दी का संदेश वहां पहुँचायें और हिन्दी प्रचार को वहां किसी रूप में संगठित कर दें। हिंदी बोलने वाले थोड़े बहुत उन स्थानों में व्यापार आदि के लिए पहले ही से

(५८२)

मौजूद हैं, इसलिये उन लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए ।

आपने अपने एक वार्षिक विवरण में लिखा है कि लिपि के भगड़ों ने आपके मार्ग में कुछ बाधा नहीं डाली । भगड़े दो ही रूप धारण करते हैं । लिपि सम्बन्धी अथवा भाषा सम्बन्धी । देवनागरी लिपि पर तो आक्षेप होना ही नहीं चाहिए । उसके सम्बन्ध में हजरत ख्वाजा हसन निजामी लिखते हैं:—

“हिंदी रसम उल्खत हिंदुस्तान का है जो हमारा मौजूद वतन है और हमारे हिंदू पड़ोसियों और मुल्की भाइयों का रसम उल्खत है । इस वास्ते हमें भी इस रसम उल्खत की तरक्की और हिफाजत में हिस्सा लेना चाहिए ।”

जनाब हारू ख़ां साहब शेरवानी प्रोफेसर, उस्मानियां का लेज हैदराबाद और भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

“इसमें किसी किस्म का शुबहा करने की गुञ्जाइश ही नहीं है कि हिंदी में तो हत्तुलमकदूर हर तहरीर का मकसद यही होता है कि पढ़ने वाला वही पढ़े जो लिखने वाले ने लिखा है ।”

आगे चलकर प्रोफेसर साहब ने यहां तक कह दिया है कि “मौजूदा रसम उल्खत उर्दू में यह खूबी नहीं पाई जाती है ।”

इसलिये, जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, लिपि पर तो भगड़ा होना ही न चाहिए पर हमारे दुर्भाग्य से किसी प्रान्त में रोमन और किसी में फारसी लिपि इसके मुकाबिले में खड़ी कर दी जाती है । आसाम के पहाड़ी हिस्से में कांग्रेसी सरकार ने भी हिन्दुस्तानी की शिक्षा रोमन अक्षरों में देने की आज्ञा दी थी । ईसाई पादरियों की इच्छा पूरी हुई और अब रोमन को हटाना भी एक कठिन समस्या हो गई । कश्मीर में एक कमेटी बैठी थी । उसने सिफारिश की कि प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा और फारसी लिपि में दी जाय । उर्दू भाषा तो रह गई, पर वहां के महाराज ने देवनागरी को भी रहने दिया । समझ में नहीं आता कि इतनी बात पर वहां आन्दोलन क्यों खड़ा किया जा रहा है ।

भगड़े का दूसरा रूप भाषा सम्बन्धी है । हमारे सामने ‘हिन्दुस्तानी’ नाम लाकर खड़ा कर दिया गया है । कुछ दिनों तक लोग इसके चक्कर में आ गये थे, पर अब सर तेजबहादुर सप्रू भी, जो ‘हिन्दुस्तानी एकेडेमी’ (प्रयाग) के कई बरस तक सभापति थे, इस शब्द से दूर भागते हैं और तख्त दिव्वा-
दिव्वा

(५५३)

द्यालय के वाइस चांसलर श्री हवीबुल्ला साहब ने स्पष्ट कह दिया है कि हिन्दुस्तानी का इस देश में अस्तित्व नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि हिन्दुस्तानी के नाम पर विदेशी अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग खुल्लमखुल्ला किया जा रहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आपने भी हिन्दुस्तानी रीडर के दूसरे भाग में साधारण बातचीत में गुरु नानक के मुँह से 'खुदा' शब्द कहलाया है, जब कि हम जानते हैं कि जिन बालकों और बालिकाओं के हाथ में यह पुस्तक पड़ेगी वे अपने घर पर 'खुदा' शब्द का प्रयोग कभी न करते होंगे। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत सभापति श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी हिन्दुस्तानी की इस नीति के विरुद्ध हैं। उनका मत है कि हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों को रहने देना चाहिए, क्योंकि सब प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत शब्द मिलते हैं। अन्तः प्रान्तीयता के भाव को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि जो शब्द भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं में प्रचलित हों उनके स्थान पर अरबी और फारसी शब्दों को नहीं लाना चाहिए। मैं यह भ्रम दूर कर दूँ कि हम लोग फारसी या अरबी या अंग्रेजी के विरोधी नहीं हैं। ऐसे जो शब्द आ गये हैं और जिन्हें जन साधारण समझ लेते हैं उन्हें अवश्य रखना चाहिए। नए आवश्यक शब्दों को भी लेना चाहिए। पर पारिभाषिक शब्दावली में संस्कृत की सहायता के बिना काम नहीं चलेगा। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो पहले से संस्कृत में मौजूद हैं। उन्हें छोड़ कर हम अरबी या अंग्रेजी के शब्द नहीं लेंगे। संतोष की बात है कि इस विषय में महात्मा गांधी श्री सम्पूर्णानन्द से सहमत हैं।

हिन्दी को साम्प्रदायिकता से दूर रखना है। यह हिन्दू और मुसलमान दोनों की बनाई हुई है। यह ठीक है कि हिन्दू धर्म के कई सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी में हैं, पर यह भी ठीक है कि कई मुसलमानों ने हिन्दी में अपने धर्म का गुणगान किया है। हिन्दी में एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक मिर्जापुर में एक मुसलमान सज्जन के पास है। दोहे, चौपाइयों में वह मुहम्मद साहब का जीवन चरित है। उसकी भाषा बड़ी सुन्दर है। उक्त मुसलमान सज्जन नित्य उस पुस्तक का पाठ करते हैं। जायसी, रसखान और रहीम के शुभ नाम से तो लोग परिचित ही हैं। ऐसी अवस्था में साम्प्रदायिकता के नाम से हिन्दी उर्दू का झगड़ा खड़ा करना एक प्रकार का देशद्रोह है। हमें आशा है कि दक्षिण भारत इस कलङ्क से बचा रहेगा।

(५८४)

इस युग में आप हिन्दी के द्वारा उत्तर और दक्षिण भारत का जो सम्बन्ध सूत्र फिर से दृढ़ करने का अनुष्ठान कर रहे हैं वह एकदम नया नहीं है। वस्तुतः ७ वीं ८ वीं शदी से, जब उत्तर भारत में उन्नति और विकास का क्रम समाप्त प्रायः हो चुका था, दक्षिण ने इस क्रम को बनाए रखने का भार अपने ऊपर ले लिया था। ७ वीं ८ वीं शदी में भगवत जैसे अद्वितीय ग्रन्थ की रचना द्रविड़ भारत में हुई। सम्वत् ८४५ (७८८ ई०) में केरल प्रदेश में श्री शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने बौद्ध सम्प्रदाय के दार्शनिक तथ्य को, जो इस समय वज्रयान आदि के दलदल में सड़-गल रहा था, एक नया रूप देकर पुनः प्रचारित किया और गिरे हुए नैतिक जीवन को उठाया। फिर तो वेद के भूले हुए अर्थ का फिर से प्रकाशन (सायण भाष्य के रूप में), स्मृतियों का समयानुकूल उद्धार विवेचन (पाराशर-माधवीय के रूप में) तथा श्री रामानुज, श्री मध्व और श्री बल्लभ के धार्मिक सुधार रत्नाकर के तट पर हुए और वहां से उत्तर भारत में आये। इनमें से श्री रामानुज का व्यक्तित्व तो ऐसा महान् हुआ जिसने रामानन्द के द्वारा कवीर जैसे सन्त को उत्पन्न किया और जो तुलसी जैसे योग्य पुरुष के निर्माण का कारण हुआ। दक्षिण की नटराज प्रतिमा इस जागृति का मूर्त्त रूप है।

मुझे विश्वास है कि उत्तर और दक्षिण का यह पुरातन सम्बन्ध दृढ़तर होता जायगा और इस सम्बन्ध के सबसे उत्तम साधन हिन्दी को भी दक्षिण भारत से बल और वैभव प्राप्त होगा। इसका श्रेय होगा आपके प्रचारक-मंडल को।

अन्त में मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देकर सादर और सप्रेम नमस्कार करता हूँ।

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाई के रेट्स

स्थान	१ मास का	३ मास का	६ मास का	१ वर्ष का
दूसरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा "	३।।)	८)	१५)	२५)
चौथाई "	२)	४)	८)	१५)

उत्तर का धन नियमानुसार पेशगी आना चाहिये।

THE SPIRITUAL APPROACH

(WITH ACKNOWLEDGEMENTS TO THE STATESMAN)

THE communal problem not only stands in the way of our political progress, it prevents our presenting before the world the Indian achievement—the working out of human unity. For it must be admitted that there is an Indian way—the “Hindustani way”—and that it is in this way that India solved her human problems in her long history.

In the same light of India's history, again, is to be answered the question, of Indo-British relationship which should serve as the basis of the larger synthesis of the East and the West. On Britain and India rests the task of forging the cultural bond between Europe and Asia, of widening the affections of the human family. And the spirit that worked through the late Rev. C. F. Andrews is surely still at work, for the great tradition of Britain cannot but produce her great men for the accomplishment of this great cause.

Our internal problem has run deep down into the whole scheme of life of the two great ancient peoples. If only they were true to their heritage, they might not only improve their own affairs but also give a lead to the modern nations at this juncture of the world's history. The Indian techniques of humanism and the arts of peace have a vital use for a world now desperately fighting its way to a solution of race relations. We are thus sadly failing in our duty to ourselves as well as to the world at large. It may sound conceited, but in fact it is something for which we have to be utterly ashamed.

India's Fundamental Unity

The cultural, social and historical unity of the peoples of India was at one time normal. Seldom did people bother

(५८६)

about these relationships. That these are questioned to-day indicates the shaking of the very foundations of Indian unity. It amounts to a negation of the very best of Hinduism and Islam in India. The questioning of our fundamental unity is far from a case of simple scepticism. We have been distracted by illusion. The feeling of a common lot, before it grows well into a conviction, is scared away by the illusion of our antagonism. Illusion is the issue of darkness, and it lies in ambush along the shadowside of our mind. It will clear away as soon as the light is lit.

It is dangerous when false notions appear as facts of life. Arguments fail where obsessions prevail. The political and economic logic of common nationalism can hardly be listened to as long as there is the psychological background of communal distrust. However much possessed we may be of the political technique, we build ill if we forget the human base of our national existence. And that base is to be rendered compact by means of such non-violence as will recoil even from thinking in terms of antagonism.

More than Pacts Wanted

Unfortunately, our past history, as we read it in schools, shows us in a wrong perspective. All care is bestowed on teaching that we were enemies. It is, however not told when and how the enemies came to terms and joined hands in building the composite Hindustani civilization. Our education does not help to open our eyes to the common cultural heritage of Hindu-Moslem India. On the contrary, it hypnotizes us into the belief that throughout these historic centuries we only sought to destroy each other, and thus it will be idiocy to try to unite for the future in the face of such a past. The result is, in our ignorance and prejudice, we are groping in a wilderness of sordid interests for search of a pact. We are unable to visualize that the whole matter is one of heart—of love and understanding such as our ancestors

(५५७)

of all communities achieved with ease. A long line of saints and artists, rulers and administrators, refused to perceive differences and led the country along a path of amity and brotherliness.

A pact is not synonymous with unity. Its character is separative. It brings into focus how much one party can get out of the other. Unity, on the contrary, is born of the desire to contribute to the common objective. But neither the objective is seen nor the accommodation made until there is love and trust, until there is a feeling of relationship to inspire mutual sacrifice and to remove the fear that one's sacrifice will be used exclusively for the other. The way the mind works is the essential thing; the thought of safeguards comes or does not come as this work goes on.

False History

Our mind has been perverted by false history. The true history of mediæval India has to be re-written to reveal how, through centuries and living together, the Hindus and Mussalmans became imbued with the sense of a common destiny, how they began to think, alike, act alike and feel alike, in spite of occasional wranglings, even as brothers, and how their like-mindedness found expression in common creative energy and was consummated by the union of their religious and social, cultural and political life. If their enmity was real, more real was their unity. During the political crises in the life of a people it is the points of unity that are to be stressed, and not the points of difference. Rather let us think of the beautiful Indo-Saracenic dome of the Taj, wherein the tall steeples of Madura and the flat domes of Arabia met and mingled, than of those two original styles exclusively. Similarly, concentrate on the meeting points of our religious and cultural life, on the Kabirs and Nanaks of Indian history.

(५८८)

Politics and Economics Secondary

Communalism is a tangle of many knots. The work of untying them depends on efforts from various directions at the same time. But to most of us only politics and economics loom large in the composition of the whole trouble. And what is being ignored is the psychological issue, the classic issue of a mind diseased.

Yet the fact remains : mind matters most. The attitude of mind borne towards the ideals which another holds dear directs the course of their relation on the outer surface of life. Their conception of values, even the conceits they cherish, are by no means less real than the arithmetic of ratios in political and economic deals. Sentiments make up the very substance of human relations. It is these that decide the character, and colour, the texture of their intercourse in more tangible matters. Mental issues are fundamental. To what is due the demands for safeguards if not a psychological condition ! That demand will diminish as this condition improves, as our fear of each other will be in control.

Our little minds, the minds of most of us who flutter about with the demonstrational cry of "practical politics" and "concrete issues" might do well to ponder over the intangible aspect of reality, to move along the psychological lines of approach to the political problem.

The Mental Factors Primary

Claims and counter-claims lead inevitably to a conflict if we seek to be too practical. And what but a mind initiated to believe in human kinship, a mind guided by human consideration, can recognize the point where different interests must merge in mutual good-will ? What will set the limit to self-interest if there be no final appeal to human interest ? Love of power invents what arguments may suit it, greed of possession has a knack of persuading us to justify encroach-

(५८६)

ment. Politics degenerates into an instrument of intrigue, economics into a design of dispossessing others if they are not subordinated to the moral laws of life. A mind chastened by the highest ideal of national integrity and softened by the milk of human kindness, such a mind alone can help us to get the best out of politics and economics.

None need deny the truth of the market, the vast place allotted to it in life. But the calamity begins when it seeks to absorb the whole of life—leaves not a yard for the altar, the sanctuary of the soul where man loves and lives for others, dreams and fills up the spirit, brings forth a new world of good and beauty, and behaves, even if it be for the few inspired moments, like his great Creator in miniature.



Swami Dayanand on Unity

(*In Delhi Darbar of 1877*)

By K. B. Pathik



Oh Lord ! Let my country awake,
 When this Communal Tension should break,
 Which has brought enmity and hatred in its wake,
 Deep, Deep, in our Unity's Lake,
 Let's strive to crush heads,
 Of all such poisonous snakes,
 Which have put our Country's honour at stake,
 With the Staff of determination of our own make.

सन् १९४१

(लेखक—श्री पं० रामगोपाल जी विद्यालङ्कार सम्पादक वीर “अर्जुन”)

संसार ने संकट का एक और वर्ष समाप्त करके सन् १९४१ में प्रवेश कर लिया। सन् १९३६ के अन्त में सन् १९४० का भविष्य जैसा अन्धकारमय और अनिश्चित दीख रहा था, इस समय (सन् ४० के अन्त) में नये वर्ष (सन् ४१) का भविष्य उस से भी कुछ अधिक ही भयंकर, अन्धकारमय और अनिश्चित दीख रहा है।

सन् ३६ के अन्त में ब्रिटेन और जर्मनी एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा तो कर चुके थे, परन्तु दोनों की आमने सामने टक्कर न होने के कारण जय-पराजय का निश्चय करना अत्यन्त कठिन था। अप्रैल मास के पश्चात् जर्मन वायु तथा स्थल सेनाओं ने परस्पर सहयोग पूर्वक युद्ध करने के जो नये प्रकार, नारवे, हालैंड, बेल्जियम, और फ्रांस के रण-क्षेत्रों में प्रकट किये, उनका सन् ३६ के अन्त तक संसार को परिचय न था। इस के विपरीत, ब्रिटेन और फ्रांस की साधन-सम्पन्नता का संसार को भली भाँति परिचय था और इस कारण सब को आशा यही थी कि जर्मनीको इन दोनों मित्र-राष्ट्रों के सामने बुरी तरह मुंहकी खानी पड़ेगी। परन्तु सन् ४० ने घटनाओं का ऐसा अकल्पित प्रदर्शन किया कि जानकारी रखने का दावा करने वालों को अपनी कल्पनायें मिथ्या सिद्ध होती देखकर आश्चर्यित हो जाना पड़ा।

अब सन् १९४० के अन्त में भी स्थिति बहुत कुछ वैसी ही होने के कारण, सन् १९४१ के विषय में कुछ कल्पना या भविष्य-वाणी करना कुछ जोखिम का काम है। पश्चिमी और मध्य यूरोप के प्रायः सभी देश इस समय जर्मनी के दबाव में आ चुके हैं। यूरोप की सब से बड़ी स्थल-शक्ति फ्रांस भी जर्मनी से पराजय स्वीकार कर चुकी है। परन्तु साथ ही गत कुछ महीनों में यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है कि जर्मनी की स्थल-सेना यूरोप की अन्य स्थल-सेनाओं से प्रबल होते हुए भी, वह ब्रिटिश जल-सेना का रक्षा-जाल भेदकर यूरोप के पश्चिमी तट से आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। उसकी वायु-सेना भी इतनी बलवान नहीं है कि वह ब्रिटिश वायु-सेना को अपेक्षा दृष्टि से देख सके।

ब्रिटिश जल-सेना जर्मन आक्रमण को रोकने में पूर्णतया समर्थ होने के

(५६१)

अतिरिक्त, जर्मनी द्वारा पराजित यूरोप का आर्थिक घेरा डालने में भी प्रायः पूरी र सफल हुई है। इस कारण यद्यपि सम्भावना तो यही है कि ब्रिटिश सेनाओं के यूरोप की भूमि पर उतरे बिना भी जर्मनी को केवल आर्थिक कारणों से ही पराजय मानना पड़ जायगा तथापि यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती क्योंकि जिस प्रकार की नई युद्ध-विधियों के बाद को प्रकट होने के कारण सन् ३६ के अन्त की आशाएँ मिथ्या सिद्ध हो गई थीं, उसी प्रकार की कुछ युद्ध-विधियाँ प्रकट होने की सम्भावना अब भी सर्वथा तष्ट नहीं हुई।

अब कुछ मास से जर्मनी और ब्रिटेन में जो अमानुषिक वायु-युद्ध चल रहा है उस से यह भी भय पूर्णतया बना हुआ है कि इन दोनों देशों में हार-जीत चाहे जिसकी हो, युद्ध की समाप्ति से पहले पहल ये दोनों एक दूसरे को इतना वरबाद और मलियामेट अवश्य कर देंगे, कि विजेता अपनी जीत का सुख अनुभव करने योग्य न रहजायेगा।

संयुक्तराष्ट्र अमरीका के प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने यद्यपि यह बात निश्चय-पूर्वक कह डाली है कि जर्मनी और उसके मित्र युद्ध नहीं जीत सकेंगे तथापि जब दोनों पक्षों के साम्पत्तिक तथा नागरिक विनाश की दशा का चित्र आंखों के सामने आता है तब उक्त आशाहृदय को शान्त तथा आश्वस्त नहीं कर सकती।

युरोपियन युद्ध के विषय में उक्त सम्भावनाओं के अतिरिक्त जब हम उसके कारण बिगड़ी हुई संसार की आर्थिक दशा पर दृष्टिपात करते हैं तब परिस्थिति और भी अधिक अन्धकारमय दीखने लगती है। अमरीका और रूस के सिवा संसार का कोई राष्ट्र ऐसा नहीं, जिसकी आर्थिक दशा युरोपियन युद्ध के कारण बिगड़ती न जा रही हो। सन् १९४१ में युद्ध समाप्त हो जाने का निश्चय न होने के कारण परिस्थिति और भी चिन्तनीय हो गई है।

भारत की आन्तरिक दशा भी सन् ४० में सन् ३६ की अपेक्षा खराब रही और सन् ४१ में उसके अधिक बिगड़ जाने के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। भारत की राष्ट्रीय शक्तियाँ और ब्रिटिश शासक दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए हैं। इस कारण हमें भय है कि सन् १९४१ का वर्ष संघर्ष में ही बीतेगा। इन सब कारणों से सन् १९४१ का वर्ष सन् ४० की अपेक्षा अधिक कठोर तथा कष्टप्रद आता दीख रहा है। हमें वह अच्छा लगे या न लगे वह आ तो गया ही है। हमें उसका धीरता से सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए।



गढ़वाल और डोला पालकी

गढ़वाल (संयुक्त प्रान्त) जिले में आर्यों [शिल्पकारों] तथा दलित भाइयों को विटो अर्थात् राजपूतों (सवर्णों) इत्यादि की जिन ज्यादतियों और अत्याचारों का शिकार बनना पड़ता है उनका समाचार पत्रों द्वारा गढ़वाल जिले के बाहर की जनता को कभी २ किञ्चित् आभास मिल जाता है। गढ़वाल की डोला पालकी की जटिल समस्या से तो भारत की प्रायः समस्त हिन्दू जनता भले प्रकार परिचित हो गई है। गढ़वाल में दो वर्ग हैं। एक विट और दूसरा शिल्पकार। शिल्पकारों में बढ़ई, दरजी और लुहार इत्यादि हैं तथा विटों में राजपूत तथा ब्राह्मण इत्यादि हैं। विट लोग आर्यों (शिल्पकारों) तथा दलित भाइयों के सामाजिक अधिकारों यथा विवाहमें डोला पालकी इत्यादिके निकाले जानेपर आपत्ति करते रहे हैं और उनका दुराग्रह यहां तक बढ़ा है कि एक एक वारात को ६-६ महीने अपने अधिकार रक्षा के लिए डटने के लिये बाधित होना पड़ा है तथा कभी २ वह दुराग्रह मारपीट और अन्य प्रकार के अत्याचारों तक में भी परिणत हुआ है। परन्तु धन्य हैं ! गढ़वाल के आर्य भाई। जो सब प्रकार के कष्टों और अत्याचारों को सहकर भी हतोत्साहित न हुए और अपने सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिये प्राण-पण से प्रयत्न करते रहे। उनके यत्नों तथा दृढ़ता के फलस्वरूप इलाहाबाद के हाई कोर्ट तक ने डोला पालकी निकालनेके उनके अधिकार को स्वीकार किया। प्रान्तकी सरकार ने भी इस अधिकार के उपयोग में उन्हें पूरी २ सहायता दिलाई। इस सुगमता के फलस्वरूप गत कुछ वर्षों में लगभग ८०० बरातें डोला पालकी के साथ निकल चुकी हैं।

परन्तु गत वर्ष से अब तक ४ बरातें भिन्न भिन्न इलाकों में आर्यों की रोकी गई हैं। अन्तिम वारात १-१२-४० को बिजौली (चांदकोट) में रोकी गई।

(५६३)

बारात रोकी ही नहीं गई वरन् बारात वालों को पीटा तथा उनका डोला पालकी भी जला दिया गया है। यह भी विदित हुआ है कि सरकारी कर्मचारियों के अपने कर्त्तव्य का ठीक २ पालन न करने से भी स्थिति इतनी खराब हुई है। जिला उपसभा विजनौर तथा सार्वदेशिक सभा के कार्यकर्त्ता घटना स्थल पर हो आये हैं तथा आर्यों की सहायता करने का यत्न कर रहे हैं। इस २०वीं शताब्दी में इस प्रकार की दुर्घटना और ज्यादतियों का होना खेद जनक है, परन्तु स्वयं सरकारी आज्ञाओं और स्थापनाओं के उल्लंघनपूर्वक इन घटनाओं का होना बहुत आश्चर्यजनक है। इसमें सन्देह नहीं गढ़वाल प्रान्त शिक्षा इत्यादि की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है और वहां की अधिकांश प्रजा अज्ञान अन्धकार में डूबी हुई है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति तक में कानून को हाथ में लेने का उनका साहस बढ़ने दिया जाय। जहां तक हमें विदित हुआ है विटों ने सरकारी कर्मचारियों पर भी आक्रमण किया है। देखना यह है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार इस स्थिति का किस प्रकार हल करती है।

जन गणना

पिछले अंक में हमने जन गणना के सम्बन्ध में आर्य भाइयों के कर्त्तव्य तथा कार्य पद्धति पर प्रकाश डाला था। हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि सार्वदेशिक सभा गत ४-५ मास से आर्य भाइयों को जन-गणना सम्बन्धी जो निर्देश आर्य समाजों और प्रान्तिक सभाओं के द्वारा भिजवा रही है उनके पालन के लिए उनमें काफ़ी उत्साह और जाग्रति उत्पन्न हो गई है। जन-गणना का कार्य बहुत बड़ा और परिश्रम साध्य है। इसके लिए आर्य भाइयों को और भी अधिक उत्साह से काम करना होगा। इस कार्य की सफलता में प्रकाशन कार्य बहुत बड़ा भाग रखता है। सार्व० सभा जन-गणना सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य समाजों में भेज चुकी है और आगे भी भेजती रहेगी परन्तु आर्य समाजों को इतने पर ही सन्तोष करके नहीं बैठ जाना चाहिए। उन्हें स्वयं अपने यहाँ विज्ञप्तियों इत्यादि के वितरण द्वारा प्रकाशन की व्यवस्था करनी चाहिए। कुछ समाजों ने ऐसा करना आरम्भ भी कर दिया है। कान्फ़ेन्सों की योजना करके आवश्यक निर्देश जन-साधारण तक पहुँचाने चाहिए। इस दिशा में भी आर्य जनता कार्यवाही कर रही है। कई स्थानों पर बड़ी २ सफल कान्फ़ेन्सें हुई हैं। प्रचार का यह भी सफल साधन है इससे भी पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए।

(५६४)

श्री स्वामी जी महाराज की दक्षिण-भारत की प्रचार-यात्रा

सार्वदेशिक सभा की प्रार्थना पर श्री० पूज्य नारायण स्वामी जी ने १५ नवम्बर से हैदराबाद राज्य और दक्षिण भारत की प्रचार-यात्रा स्वीकार की थी और उन्होंने १५ नवम्बर को दक्षिण भारत के लिए देहली से प्रस्थान किया था। इस प्रचार-यात्रा में उन्होंने लगभग ३५ स्थानों में भ्रमण किया और २६ तथा २७ दिसम्बर ४० को मदुरा में रहकर 'प्रथम दक्षिण भारतीय आर्य सम्मेलन' का नेतृत्व किया। श्री० पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय, श्री० पं० केशव देव जी ज्ञानी, श्री० पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, श्री० पं० मदनमोहन जी विद्याधर, श्री० साधु शिव प्रसाद जी प्रभृति सभा के कार्यकर्ताओं स्थानीय समाजों तथा आर्य प्रतिनिधि सभा निज़ाम राज्य के अधिकारियों और कार्यकर्ताओं ने स्वामीजी महाराज को इस प्रचार यात्रा में बहु मूल्य योग दिया। दक्षिण भारत की आर्य हिन्दू जनता ने स्वामी जी महाराज का स्थान २ पर उनके भव्यपद के अनुरूप जो भव्य स्वागत किया है और बड़ी से बड़ी संख्या में उपस्थित होकर उनके उपदेश से लाभ उठाया है उन सबसे यह प्रमाणित हुआ है कि आर्य समाज के प्रति उनका अगाध प्रेम है।

मदुरा की आर्य कान्फ़ेंस भी, जो समाचार अब तक हमें प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार बड़ी सफलता से सम्पन्न हुई है।

स्वामी जी के भ्रमण तथा मदुरा कान्फ़ेंस के विस्तृत समाचार हम आगामी अंक में देने का यत्न करेंगे।

परिषद् की परीक्षाएँ

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के परीक्षा मन्त्री श्री० पं० देवव्रत जी धर्मेन्दु ने हमारे पास परिषद् का एक निश्चय भेजा है जिसमें सार्वदेशिक सभा से प्रेरणा की गई है कि वह परिषद् की परीक्षाओं को अपने अधिकार क्षेत्र में अधिकाधिक लोक-प्रिय बनाने के लिए प्रान्तीय सभाओं तथा आर्य समाजों को निर्देश देवे। आर्यकुमार परिषद् की यह माँग उचित ही है। हम पिछले किसी अंक में इन स्तम्भों में इन परीक्षाओं की उपादेयता तथा इनको लोक-प्रिय बनाने की आवश्यकता आर्य जगत् के सम्मुख रख चुके हैं। एक बार पुनः उसी आवश्यकता पर बल देते हुए परिषद् के निश्चय का बल पूर्वक समर्थन करते हैं। हमें आशा है प्रान्तिक सभाएं और आर्य समाजें गम्भीरता पूर्वक इस विषय पर विचार करके परिषद् की माँग को क्रिया में लाने के लिए क्रियात्मक उपाय करेंगी।

(५६५)

आर्य समाज की स्थापना तिथि में परिवर्तन

आर्य समाज स्थापना दिवस आर्य पर्व पद्धति के अनुसार इस समय तक आर्य जगत् में चैत्र शुक्ल ५ को मनाया जाता रहा है। श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने १९३७-१९३८ में इस पत्र में दो लेख लिखे थे जिनमें आर्य समाज बम्बई के शिला लेखों के आधार पर यह सिद्ध करके कि आर्य समाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होनी चाहिए इस पर्व की तिथि के परिवर्तन की मांग की थी। उधर आर्य समाज बम्बई तथा बड़ौदा की आर्य कुमार महासभा ने अपने पुराने रिकार्ड तथा पंचांगों के आधार पर श्री स्वामी जी की मांग का समर्थन किया था। यह विषय सार्वदेशिक सभा की अन्तरङ्ग सभा में दो बार विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। पहली अन्तरङ्ग सभा ने बम्बई आर्य समाज की पुरानी रिपोर्ट तथा जामे जमशेद नामक समाचार पत्र के स्थापना दिवस विषयक लेख के फोटो मंगा कर विचार करना आवश्यक समझा, क्योंकि जामे जमशेद पत्र में स्थापना दिवस की तिथि चैत्र शुक्ल ५ और पुरानी रिपोर्ट में भी यही तिथि अङ्कित हुई बतलाई गई थी। स्व० श्री पण्डित लेखराम जी तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत स्वामी जी महाराज के जीवन चरित्रों में भी इस तिथि का अनुसंधान किया गया।

पुरानी रिपोर्ट का फोटो प्राप्त हो गया था परन्तु जामे जमशेद नामक पत्र का लेख उपलब्ध नहीं हो सका। उपर्युक्त रिपोर्ट तथा मुखोपाध्याय जी के जीवन चरित्र में यह तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा ही अंकित है। अतः सभा ने १५-१२-४० की बैठक में आर्य समाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा स्वीकार करके परिवर्तन करना स्वीकृत कर दिया है। अब आगे यह पर्व चैत्र शुक्ला ५ के स्थान में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को मनाया जाया करेगा।

गुरुकुलों का एकीकरण

हमने सार्वदेशिक के पिछले किसी अंक में इन स्तम्भों में विशेषतः गुरुकुल कांगड़ी तथा वृन्दावन के संकेत से गुरुकुलों के शिक्षण इत्यादि के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया था। इस अंक में अन्यत्र श्री पं० नरदेव जी शास्त्री का एतत् विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें इस आवश्यकता का समर्थन होता है। उन्होंने जो प्रस्ताव एकीकरण के सम्बन्ध में रक्खा है वह इस प्रकार है—

(१) एक गुरुकुल केवल वेदगुरुकुल नाम से चले और वहां केवल वैदिक विषय का अध्ययन—अध्यापन—अनुसन्धान होता रहे—यह गुरुकुल आर्य समाज के गौरव बढ़ाने के लिए पर्याप्त होगा।

(५६६)

(२) एक गुरुकुल केवल षट् शास्त्र के अध्ययन अध्यापन के लिए हो जहाँ उस दर्शन के प्रकारण्ड परिणत तैयार किए जाये इसका नाम शास्त्र गुरुकुल रहे—

(३) एक गुरुकुल व्याकरण, साहित्य के लिए रहे। इसमें व्याकरण साहित्य के अच्छे अच्छे परिणत बन सकेंगे इस गुरुकुल का नाम वेदाङ्ग गुरुकुल रख सकते हैं।

(४) एक गुरुकुल केवल चिकित्सा कार्य के लिए रहे। इस गुरुकुल का नाम आयुर्वेद गुरुकुल रहे।

(५) एक गुरुकुल औद्योगिक गुरुकुल के नाम से रहे जिसमें थोड़ी सी धार्मिक शिक्षा के साथ २ कला-कौशल सिखाया जावे।

इस प्रकार पाँच गुरुकुलों के चलने से ब्रह्मचारी गण साधारण शिक्षा के पश्चात् अपनी रुचि के अनुसार किसी गुरुकुल में पढ़ सकते हैं। इस प्रकार एक गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ ब्रह्मचारी दस बारह वर्ष में कुछ न कुछ बनकर निकलेगा ही। सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम निभा लेंगे यह बात अनुभव विरुद्ध है। पहला काम गुरुकुल काँगड़ी सन्हाल सकता है, दूसरा काम शास्त्र गुरुकुल महाविद्यालय (ज्वालापुर) चला सकता है। चिकित्सा गुरुकुल को वृन्दावन चलावे। इस प्रकार बटकर काम होने से आर्य जगत् की ज्योति चमकेगी। अब रही सशुल्क-निशुल्क की बात, वह इस तरह निमटाई जा सकती है कि जिस लड़के का पिता और गुरुकुल के अध्यापक यह निर्णय करें कि यह ब्रह्मचारी देश और धर्म के काम के हैं और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् देश धर्म के ही काम करेंगे उन्हीं अधिकारी ब्रह्मचारी को निःशुल्क शिक्षा दी जावे। शेष सब स्वयं अपने व्यय से पढ़ें।

हम बलपूर्वक इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं। क्या हम आशा करें कि गुरुकुल के संचालक इस पर विचार करके इसे क्रिया में लाने का यत्न करेंगे।

सार्वजनिक संस्थायें इस प्रकार के बांछनीय परिवर्तनों से जीवन-लाभ ही करतीं तथा अपनी आवश्यकता और उपादेयता को दृढ़ करती हैं। फिर आर्य समाज जैसी प्रचारक समाज के लिये आगा पीछा होना ही नहीं चाहिए। हमारे सामने ईसाई मिशन के कतिपय उदाहरण हैं जब कि उसने अपनी कई संस्थाओं में अपनी प्रचार पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन तथा कई संस्थाओं को बन्द करके अपनी शक्ति, अपने परिश्रम और कार्य को बढ़ाया और संतुलित किया है। हमारा जैसा समाज तो रूढ़ियों के विच्छेद के लिए प्रादुर्भूत हुआ है फिर उसके विच्छेद और नव जीवन प्राप्ति और संसार के लिए उसे हर समय उद्यत रहना चाहिए। हमें इस बात का दुख है कि आर्य समाज जैसी प्रगतिशील संस्था भौगोलिक और

(५६७)

कृत्रिम सीमाओं के भीतर बन्द किया जा रहा है और आर्य समाज के हिताहित और कार्य क्षमता को इन सीमाओं के भीतर केन्द्रित करके सोचा जा रहा है। हमें तो प्रांतीयता और स्थानीयता से ऊपर उठ कर आर्य समाज का हिताहित सोचना चाहिए। प्रबंध की दृष्टि से जो विभाग आर्य जगत के हुए हैं वे कभी भी किसी दशा में भी आर्य समाज के विशाल हित के मार्ग में बाधक नहीं बनने देने चाहिए हमें यह बात विशेषतया संस्थाओं के सम्बन्ध में ही लिखनी पड़ रही है। अनावश्यक संस्थाओं के बन्द करने वा उनमें आवश्यक परिवर्तन में उपर्युक्त बात बड़ी बाधक सिद्ध हुई है। अतः अब समय है कि उससे ऊपर उठकर उनमें आवश्यक परिवर्तन करके आर्यसमाज का विशाल हित संपादित किया जाय।

हिन्दू महासभा की प्रभाव-वृद्धि

‘हिन्दू महासभा की प्रभाव वृद्धि’ शीर्षक लेख में वीर अर्जुन ने महासभा के मदुरा सम्मेलन की कार्यवाही के हवाले से यह ठीक ही परिणाम निकाला है कि हिन्दू महासभा का प्रभाव अब बढ़ रहा है। इसके मुख्य कारण पर प्रकाश डालता हुआ वह लिखता है:—

हिन्दू महासभा का प्रभाव इस प्रकार बढ़ते जाने का सबसे बड़ा कारण कांग्रेस की भ्रांत साम्प्रदायिक नीति है। कांग्रेसी नेताओं ने यह अनुभव करके कि उनकी स्वराज्य-प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण होने में अपने घर की सबसे बड़ी रुकावट मुसलमानों की साम्प्रदायिकता है, उनके विषय में यह नीति स्वीकार करली है कि उनको सन्तुष्ट करने के लिए उनकी उचित अनुचित प्रत्येक मांग को पूरा कर दिया जाय और ऐसा करते हुए हिन्दुओं की उचित तथा मौलिक आवश्यकताओं तथा अधिकारों की भी उपेक्षा करनी पड़े तो कुछ परवाह नहीं। बस, हिन्दू महासभा की प्रभाव-वृद्धि कांग्रेस की इसी भ्रांत नीति की प्रतिक्रिया मात्र है। यदि कांग्रेस मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए अदूरदर्शी नीति पर न चलती तो न हिन्दू महासभा के नेताओं का कांग्रेस का विरोध करने की आवश्यकता पड़ती और न हिन्दू जनता कांग्रेस का साथ छोड़ कर महासभा की तरफ को झुकती। कांग्रेस और हिन्दू महासभा के राजनैतिक लक्ष्य प्रायः एक होने के कारण इन दोनों संस्थाओं का विरोध अथवा संघर्ष साम्प्रदायिक क्षेत्र में ही होता है।

मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश शासकों की नीति के कारण उक्त विरोध और भी बढ़ता जा रहा है। कांग्रेस की भ्रांत साम्प्रदायिक नीति के कारण ही, मुस्लिम लीग की अकड़ दिन प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। विशेषतः तब से जब से कि कांग्रेस ने प्रांतों में मन्त्रि-मंडल बनाना स्वीकार किया था परन्तु कांग्रेसी नेताओं ने अब तक भी मुस्लिम लीग की पाकिस्तान

(५६८)

आदि अनुचित मांगों का विरोध करने का साहस नहीं दिखाया। फलतः हिन्दुओं पर प्रतिक्रिया होकर उनका झुकाव हिन्दू महासभा की ओर बढ़ता जाता है।

उधर ब्रिटिश शासकों ने जानबूझकर हिन्दू जनता पर काँग्रेस का प्रभाव जितना है उतने से भी कम दिखाने के लिये ही, अब हिन्दू महासभा को भी हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार कर लिया है। इसका परिणाम यह होगा कि अब काँग्रेस के विरुद्ध एक संस्था न रह कर, मुस्लिमलीग और हिन्दू महासभा ये दो संस्थायें हो जायेंगी। यदि काँग्रेस ने अपनी साम्प्रदायिक नीति में परिवर्तन न किया तो केवल सरकारी व्यवहार में ही नहीं जनता के व्यवहार में भी काँग्रेस हिन्दू महासभा को अपना प्रबल प्रतिस्पर्धी बना बैठेगी।

केसरी मरहटा की हीरक जयन्ती

पूना के केसरी और मरहटा दो प्रसिद्ध पत्र हैं। इनके जन्म दाता स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे। इन दोनों पत्रों का संचालन 'केसरी मरहटा' नामक संस्था के द्वारा होता है। इस संस्था को स्थापित हुए ६० वर्ष हो गये हैं और ४ जनवरी को इसने 'हीरक जयन्ती' मनाई है। केसरी और मरहटा सचमुच बड़े भाग्यशाली समझे जाने चाहिएँ जिन्हें अपने सफल जीवन के ६० वर्ष व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। हम दोनों पत्रों की अभिवृद्धि की कामना करते हुए संस्था के संचालकों को हृदय से बधाई देते हैं।

* ओ३म् *

नं० ११, (१५-१२-४०) २००.

* विद्या धर्मेण शोभते *

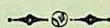
भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद्

की

धार्मिक परीक्षाओं का

तिथि-पत्र

सम्बत् १९६७



तारीख	नाम परीक्षा	नाम प्रश्न पत्र	समय
१२-१-४१	प्रथम खण्ड	प्रथम पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	"	द्वितीय पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक
१६-१-४१	द्वितीय खण्ड	प्रथम पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	"	द्वितीय पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक
२६-१-४१	तृतीय खण्ड	प्रथम पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	सिद्धान्त शास्त्री	प्रथम पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	तृतीय खण्ड	द्वितीय पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक
"	सिद्धान्त शास्त्री	द्वितीय पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक
२-२-४१	तृतीय खण्ड	तृतीय पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	सिद्धान्त शास्त्री	तृतीय पत्र	१० बजे से १ बजे तक
"	तृतीय खण्ड	चतुर्थ पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक
"	सिद्धान्त शास्त्री	चतुर्थ पत्र	१॥ बजे से ४॥ बजे तक

नोट—(१) प्रत्येक प्रश्न-पत्र ठीक समय पर ही प्रारम्भ होगा ।

(२) समय के समाप्त होने ही उत्तर पुस्तकें ले ली जावेंगी ।

निवेदक—

देवव्रत धर्मेन्दु

परीक्षा मन्त्री ।

कार्यालय, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

आर्य पर्वों की सूची

२६-६-१९६७

६-१-१९४१

सार्वदेशिक सभा आर्य समाजों की सूचना के लिये प्रति वर्ष स्वीकृत आर्य पर्वों की सूची प्रकाशित किया करती है। इस वर्ष की सूची निम्न प्रकार है:—

क्रम सं०	नाम पर्व	देशी तिथि	सौर तिथि	अंग्रेजी तिथि
१.	मकर संक्रान्ति	पौष सुदी १५	२६-६-१९६७	१३/१/१९४१
२.	बसन्त पञ्चमी	माघ सुदी ५	१६/१०/६७	१/२/४१
३.	सीताष्टमी	फाल्गुण बदी ८	७/११/६७	१६/२/४१
४.	दयानन्द जन्म दिवस	" " १३	१२/११/६७	२४/२/४१
५.	लेखराम तृतीया	" सुदी ३	१७/११/६७	१/३/४१
६.	बसन्तीनव सस्येष्टि (होली)	" " १५	२६/११/६७	१४/३/४१
७.	नव सम्बत्सरोत्सव	चैत्र सुदी प्रतिपदा	१४/१२/६७	२८/३/४१
८.	आ. स. स्थापना दिवस			
९.	राम नवमी	चैत्र सुदी ६	२३/१२/६७	६/४/४१
१०.	हस्तितृतीया (तीज)	श्रावण सुदी ३	११/४/६६	२७/७/४१
११.	श्रावणी उपाकर्म	श्रावण सुदी १५	२२/४/६८	७/८/४१
१२.	सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस			
१३.	कृष्णाष्टमी	भाद्रपद बदी ८	३०/४/६८	१५/८/४१
१४.	विजय दशमी	अश्विन सुदी १०	१४/६/६८	३०/८/४१
१५.	दयानन्द निर्वाण दिवस (दीपावली)	कार्तिक बदी १५	३/७/६८	२०/१०/४१
१६.	श्रद्धानन्द दिवस		पौष ६ सौर	२४/१२/४१

मुधाकर एम. ए.

मन्त्री

नोट सं० १—देशी तिथि के घट बढ़ जाने से अंग्रेजी तिथि में परिवर्तन हो सकता है।

नोट सं० २—सौर वर्ष वैसाख से आरम्भ होता है। सौर तिथियां ज्ञान मण्डल काशी के पञ्चाङ्ग के अनुसार दी गई हैं।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित

जगत् प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री

घोखे से बचने के लिये आर्यों को

बिना वी० पी० भेजी जाती है ।

पहिले पत्र भेज कर 5- नमूना फ्री मंगालें

नमूना पसन्द होने पर आर्डर दें

अगर नमूना जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेज दें

अन्यथा

कूड़े में फेंक दें

फिर

मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं ।

क्या

इससे भी बढ़ कर कोई सच्चाई की कसौटी हो सकती है ।

भाव ॥) सेर, ८० रुपये भर का सेर

थोक ग्राहक को २५) प्रति सैकड़ा कमीशन ।

मार्ग-व्यय ग्राहक के जिम्मे

स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश ॥) और संस्कार विधि ८) में मिलती है ।

परन्तु पुस्तकों का मूल्य मार्ग व्यय सहित पेशगी भेज दें ।

रामेश्वरदयालु आर्य पो० अमोली, फतेहपुर (यू०पी०)

हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१-ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में संप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसल्मान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाईं इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २।)

२-मेरी अवीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किसकूट नीति से अवीसीनिया की सीमा पर भगड़ा कर अवीसीनिया को हड़प लिया आँख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

३-हमारी जापान यात्रा— इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्वकी अवनति के गढ़ में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १॥)

पुस्तक मिलने का पता:—

बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार
बाँदा (यू० प्री०) जी० आई० पी० रेलवे।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चाबला द्वारा
“चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस”, श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

फरवरी १९४१



Reg. No. L 2121

ऋग्वेद

यजुर्वेद

साविदाशिक



सम्पादक— प्रो० सुधाकर, एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश २), एक प्रति का ≡) विदेश से ५ शि० वार्षिक

अथर्ववेद

सामवेद

लेख-सूची

संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	वेद की शिक्षाएँ		६०१
२.	आत्मिक बल	स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती	६०२
३.	मन मन्दिर	श्री बा० पूर्णचन्द्र जी ऐडवोकेट	६०६
४.	वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण	श्री रामानन्द चटर्जी स० माडर्न रिव्यू	६१२
५.	आर्य विवाह एकट	गतांक से आगे	६१८
६.	सुमन सञ्चय	रघुनाथप्रसाद पाठक	६२१
७.	आर्यसमाज की चिनगारियाँ	श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज	६२८
८.	देशी राज्य और आर्यसमाज	आर्य मार्तण्ड	६११
९.	श्री म० नारायणस्वामी जी का दक्षिण भ्रमण वृत्तान्त	श्री महात्मा नारायण स्वामी जी	६३४
१०.	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी का बंगालादि भ्रमण वृत्तान्त	श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी	६४७
११.	प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेंस मदुरा की रिपोर्ट	श्री शिवचन्द्र जी	६५२
१२.	जनगणना १९४१	मंत्री सार्व० आ० प्र० सभा	६६१
१३.	वैतूल की दुर्घटना	गणेशदत्त आर्य वैतूल	६६५
१४.	सम्पादकीय		६६७

आर्यसमाज के नियोपनियम

१।) प्रति सैकड़ा)। प्रति

प्रवेश-पत्र ॥) सैकड़ा ।

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

बीज

सस्ता, ताजा, बढ़िया सब्जी व फूल-फल का

बीज और गाछ हमसे मंगाइये ।

पता:—मेहता डी० सी० वर्मा, बेगमपुर (पटना)

॥ ओ३म् ॥



* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

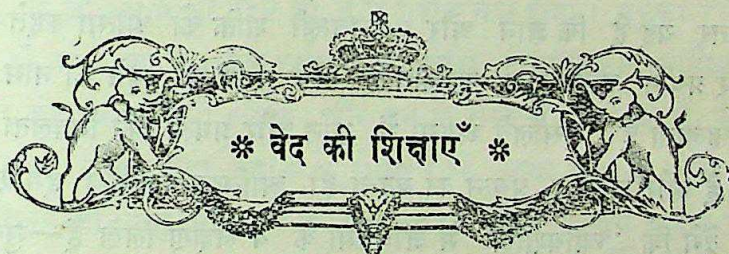
वर्ष १५

माघ १९९७

फरवरी १९४१ ई०]

[दयानन्दाब्द ११६

अंक १२



— अक्षैर्मा दीव्यः ।

ऋगू० १०।३४।१३

जुआ मत खेलो ।

Do not gamble.

*

*

*

जाया तप्यते क्तिवस्य हीना ।

ऋगू० १०।३४।१०

जुएवाज की स्त्री दीन-हीन होकर दुःख पाती रहती है ।

The wife of a gambler in her miserable plight has to face a hard lot.

अध्यात्म-धारा—

आत्मिक बल

[ले०—स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती]

— + —

आजकल हमारे अधिक भाई कार्य का आरम्भ करके मध्य में ही छोड़ देते दिखलाई देते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनको उस काम के करने की शक्ति न थी। आप कहेंगे कि जब वह शिक्षित चिन्ता रहित बलवान् है, तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि उसमें उस कार्य के करने की शक्ति न थी। हमने जहां तक परीक्षा की है, उससे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक कार्य का होना आत्मिक बल के आधीन है। यद्यपि शारीरिक बल और धन का बल भी सांसारिक कार्यों के करने के लिये एक आवश्यकीय पदार्थ है; परन्तु आत्मिक बल के होने पर ये सब वस्तुयें उत्पन्न हो जाती हैं और इनके होने पर आत्मिक बल का होना निश्चित नहीं और न इनसे आत्मिक बल उत्पन्न हो सकता है। अब प्रश्न यह होता है कि आत्मिक बल क्या पदार्थ है? जिसके होने से समस्त कार्य पूर्णरूप से हो सकते हैं और जिसके न होने से बहुधा धनों की विद्यमानता में भी कार्य नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि ज्ञान और प्रयत्नवाली शक्ति को आत्मा कहते हैं और ज्ञान और प्रयत्न उसके गुण कहलाते हैं और गुणों के बढ़ने का नाम बल का बढ़ना कहलाता है। इसलिये आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की निर्वलता आत्मिक निर्वलता है और ज्ञान व प्रयत्न का बढ़ना ही आत्मिक बल है। हमारे बहुत से मित्र कह देंगे कि “न्यायशास्त्र” में जीवात्मा के ये लक्षण लिखे हैं—सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। तुमने पहले चार क्यों छोड़ दिये, और अन्त के दो क्यों रख लिये? इसका उत्तर यह है कि पहिले चार तो शरीरस्थ आत्मा के गुण हैं, उदाहरण—कोई मनुष्य हाथ से लकड़ी कुल्हाड़ी की शक्ति से काटता है, अब लकड़ी काटना कुल्हाड़ी से मिले हुए हाथ का कार्य है केवल हाथ का नहीं; क्योंकि न तो बिना कुल्हाड़ी के हाथ काट सकता है और न बिना हाथ की सहायता के कुल्हाड़ी काट सकती है, जबकि दोनों में से पृथक्-पृथक् कोई भी काटने की शक्ति नहीं रखता और मिलकर बराबर काट सकते हैं, तो वह मिले हुआ का धर्म है एक का नहीं। इसी प्रकार सुख दुःख और इच्छा, द्वेष, सूक्ष्म

(६०३)

शरीर के साथ आत्मा को प्रतीत होते हैं न एकाकी (अकेले) आत्मा को प्रतीत होते हैं और न अकेले शरीर को । यदि अकेले आत्मा के गुण मान लिये जावें तो सुषुप्ति की दशा में भी इनका अनुभव करना चाहिये; परन्तु सुषुप्ति की दशा में किसी को भी सुख, दुःख, इच्छा द्वेष विदित नहीं होते, इससे निश्चय होता है कि यह आत्मा के धर्म नहीं । यदि अकेले शरीर के मान लें तो मृतक में भी होने चाहिए; परन्तु मृतक में यह गुण नहीं, जिससे प्रकट होता है कि ये गुण आत्मा और शरीर के मेल से उत्पन्न होते हैं ।

प्रिय पाठक महाशयो ! हमारे अनेक मित्र कहेंगे कि सुषुप्ति काल में आत्मा को ज्ञान नहीं रहता, इसी कारण उस समय सुख दुःख आदि विदित नहीं होते, नहीं तो आत्मा में यह गुण सदैव रहता है; परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं ; क्योंकि आत्मा किसी काल में ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता और किसी द्रव्य के गुण, ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता और किसी द्रव्य के गुण उसकी विद्यमानता में उसे छोड़ कर जा ही नहीं सकते । फिर किस प्रकार माना जा सकता है कि चैतन्य आत्मा के गुण, ज्ञान और प्रयत्न पृथक् हो जावें, जबकि वह विद्यमान हो और प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है, तो द्रव्य के होने के लिये गुणों का होना आवश्यक है—परन्तु अधिकांश मित्र यह कहेंगे कि क्या कारण है कि जो सुषुप्ति की दशा का ज्ञान प्रतीत नहीं होता । इसका उत्तर यह है कि ज्ञान दो प्रकार का है—एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक, स्वाभाविक ज्ञान तो वह है कि जो बिना किसी इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध के रहता है, जैसे अपने होने का ज्ञान । दूसरा ज्ञान पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, जैसे रूप-ज्ञान के लिये रूपवाली वस्तु और रूप के ग्रहण करने वाली इन्द्रिय अर्थात् चक्षु और रूप के प्रकाश करने की शक्ति, जैसे सूर्य-दीपक इत्यादि का होना आवश्यक है । आत्मा ज्ञानी होने पर भी बिना इन तीन पदार्थों के रूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और शब्द ज्ञान के लिये कान, आकाश और शब्द का होना आवश्यक है । इसी प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान बिना साधनों के हो ही नहीं सकता; परन्तु अपने ज्ञान अथवा आन्तरिक पदार्थों के जानने के लिये किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं ।

प्यारे पाठको ! ऊपर के दृष्टान्तों से आपने समझ लिया होगा कि जिन पदार्थों के लिये साधनों की आवश्यकता है वे बाह्य पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान

(६०४)

बिना साधनों के होता है, वह उसका अपना गुण है। अब सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष का होना बिना मन की वृत्ति संयोग के नहीं हो सकता। जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं, तो इच्छा उत्पन्न होती है।

जब उसको बुरा समझते हैं तो उसमें द्वेष हो जाता है और जिस पदार्थ का संयोग आत्मा के अनुकूल प्रतीत होता है उसे सुख मानते हैं और जब आत्मा के प्रतिकूल होता है, उसे दुःख कहते हैं। इसलिये यह गुण मन के कारण से उत्पन्न होते हैं और सुषुप्ति काल में जबकि इन्द्रिय, मन और बुद्धि अपना-अपना काम छोड़ देते हैं तब सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष सर्वथा नहीं रहते, केवल ज्ञान और प्रयत्न जो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, वे शेष रह जाते हैं। अब यह शङ्का होगी कि सुषुप्ति समय में आत्मा को किस वस्तु का ज्ञान रहता है और वह किसके लिये प्रयत्न करता है ? इसका उत्तर यह है कि सुषुप्ति काल में आत्मा को अपने होने का ज्ञान होता है और वह शरीर की उस न्यूनता को जो जागृत अवस्था के दुःखों से उत्पन्न हो गई है, पूरा करने के लिये प्रयत्न करता है।

अब यह शङ्का हो सकती है कि जब महात्मा गौतम ऋषि ने अपने दर्शन में जीवात्मा के छः गुण माने हैं और महर्षि कणाद ने इससे भी अधिक तो तुम्हारा कहना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। इसका समाधान यह है कि विचारपूर्वक महात्मा गौतम का दूसरा सूत्र तो पढ़ो, जिसमें महात्मा गौतम ने इन गुणों को मिथ्या ज्ञान की सन्तान में बतलाया है, इसलिये ये चार जीवात्मा के गुण नहीं हो सकते। प्रिय पाठको ! महात्मा कणादजी ने अपने वैशेषिक-शास्त्र में आत्म संयोग से ही कर्म माना है और बिना आत्मा के कर्म हो ही नहीं सकता। जैसा कि लिखा है—

आत्म संयोग प्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ॥ वै० ५ । १ । १

जब आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है, तब ही हाथ में कर्म अर्थात् कार्य करने की शक्ति होती है, बिना आत्मा के संयोग के नहीं होती।

तथा हस्त संयोगाच्चमुसले कर्म ॥ वै० ५ । १ । १

और जब आत्मा से युक्त हाथ मूसल से सम्बन्ध उत्पन्न करता है, तो मूसल में कार्य करने की शक्ति आ जाती है। यहां हाथ से सारे शरीर के अङ्ग प्रयोजन हैं और मूसल से सर्व प्रकार के बाहरी शस्त्र अर्थात् साधन, जिनसे मनुष्य कार्य

(६०५)

लेते हैं, इसी प्रकार अन्य भी समझना चाहिए ।

मित्र वर्गों ! जब यह निश्चय हो गया कि आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न दो गुण हैं और इन दोनों का नाम आत्मिक बल है और घटने का नाम आत्मिक बल की हानि है ।

तब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इनके बढ़ने और घटने का कारण क्या है ? इसका उत्तर यह है कि संसार में हमें एक नियम विदित होता है कि जहां जिसके सदृश पदार्थ मिलते हैं वहां उसकी उन्नति होती है । जहां विरुद्ध मिलते हैं, वहां हानि । जैसे वर्षा ऋतु में जब कि चारों ओर पानी बरस रहा हो और ठण्डी पवन के झोंके वेग से चल रहे हों, उस समय यदि आप एक दियासलाई की तिली जलायेंगे, तो कठिनता से जलेगी; परन्तु उसको ग्रीष्म ऋतु में जब कि लू अर्धात् गर्म वायु बह रही हो, जलाना चाहो तो बड़ी आसानी से जल जायगी । दूसरे यदि रोगी को जिसको गर्मी के कारण उबर आता है मगर औषधि देते चले जायें तो गर्मी के बढ़ने से रोग बढ़ता जायगा । यदि ठण्डी औषधियां दी जायें, तो रोग निवृत्त हो जायगा । इससे प्रकट है कि सदृश पदार्थों के संयोग से उन्नति और विरुद्ध के संयोग से हानि होती है ।

अब जानना चाहिए कि कौन - कौन से पदार्थ हैं, जो आत्मा को मिलते हैं, उनमें से कौन - कौन अनुकूल और कौन तिकूल हैं । इसका विचार करने से जहां तक ज्ञात होता है वे दो ही पदार्थ हैं, एक प्रकृति—दूसरा परमेश्वर, जिनसे आत्मा का सम्बन्ध उत्पन्न होता है । जीव चैतन्य और शरीर के सम्बन्ध से गति वाला, प्रकृति परिवर्तनवाली और ज्ञान शून्य है । परमेश्वर ज्ञान स्वरूप और स्वाभाविक क्रियावान् और आनन्द स्वरूप है । प्रिय पाठक ! जबकि प्रकृति ज्ञान शून्य और क्रिया रहित है और जीव ज्ञान सहित और क्रियावान् है, तो जो प्रकृति से अपना सम्बन्ध करेंगे, तो उससे ज्ञान और क्रिया की उन्नति तो होती नहीं, हां प्रकृति के गुण उसमें प्रतीत होने लगेंगे । यद्यपि प्रकृति में जीव के सम्बन्ध से क्रिया उत्पन्न हो जायगी, तथापि कुछ अंश ज्ञान का भी संयोग से प्रतीत होगा, परन्तु जीव के यह दोनों गुण न्यून होते चले जायेंगे, जितनी प्राकृतिक शक्तियां उसके ज्ञान और क्रिया की शक्ति अधिक होती जायगी, जैसे जितने समय तक दीपशलाका धूप में पड़ी रहेगी, उतनी ही तीव्र होती चली जायगी ।

भ्रातृवर्ग ! अब यह तो सिद्ध हो गया कि आत्मा का बल ईश्वरोपासना है ।

(६०६)

अनेक पाठक कहेंगे कि यह केवल कथन मात्र ही है। परन्तु यदि वे विचार पूर्वक लौकिक इतिहासों का अवलोकन करें तो उन पर विदित हो जायगा कि आत्मिक बल ईश्वर भक्तों का ही भाग है।

अर्थात् अनुसन्धान तो कीजिये कि क्या कारण था कि राजा हरिश्चन्द्र इतनी आपत्तियों के उपस्थित होने पर भी अपने सत्य पर दृढ़ रहे ? क्या कारण था कि महात्मा रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा पाते ही राज्य को तुच्छ समझकर त्याग दिया और वन को चले गये ? क्या कारण था कि लक्ष्मण जी ने सब प्रकार के सुखों का परित्याग कर भाई के साथ वन को जाना स्वीकार किया ? क्या कारण था कि सीता जी ऐसी सुकुमारी रानी ने वनों में भ्रमण करना स्वीकार किया और राज्यादि आनन्दों की कुछ भी इच्छा न की ? क्या कारण था कि राजा मोरध्वज अपने पुत्र के शरीर को चीरे जाने पर भी प्रसन्न चित्त रहे। क्या कारण था कि महात्मा भर्तृहरि जी ने अपने सारे राज्य को तुच्छ जान, जंगल जाना स्वीकार किया ? क्या कारण था कि गुरु तेग बहादुर यवनों के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होने से भयभीत न हुए ? क्या कारण था कि गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लड़के दीवार में चुने जाने पर मृत्यु से न डरे, क्या कारण था कि महात्मा पूरण भक्त ने सहस्रों आपत्तियों को सहन किया परन्तु उसकी आत्मा पाप की ओर आकर्षित न हुई, क्या कारण था, महात्मा हकीकतराय ने १६ वर्ष की अवस्था में यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया परन्तु धर्म को न त्यागा ? क्या कारण था कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने सारे भारतवर्ष का शत्रु बनना ईंट पत्थर खाना उत्तम समझा, परन्तु अधर्म का मूलोच्छेद किया और धर्म के विरुद्ध चलना महापाप समझा। आप विचारोगे तो प्रत्यक्ष ज्ञात होगा कि वह आत्मिक बल का ही कारण था कि जिसने इन महात्माओं को संसार के सम्मुख विजयी किया।

प्रिय पाठकवृन्द ! क्या आपने कभी विचार नहीं किया कि वह कौनसे कारण हैं, जिन्होंने रानी पद्मिनी को प्रचण्ड अग्नि में भस्म होकर मरना स्वीकार कराया, परन्तु यवन बादशाह की वेगम बनना अस्वीकार किया ? क्या कारण था कि जिसने राजा दाहिर की रानी को चिता में जलकर मरने पर कटिबद्ध किया, वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने कृष्णकुमारी को जलती हुई चिता पर बिठा दिया ? कहां तक गिनायें इस भारत भूमि में असंख्यात दृष्टान्त हैं—जिनके नाम सूर्य के

(६०७)

समान इस संसार में प्रकाशित हैं। आप इसका उत्तर यही देंगे कि धर्म भाव इनमें था, जिसने इन सुकुमारी सतियों को प्रसन्नतापूर्वक इन आपत्तियों के सहने को सन्नद्ध कर दिया। यह धर्म क्या वस्तु है केवल ईश्वरोपासना। बस आप समझ लेंगे कि संसार में धर्म और अधर्म या पाप और पुण्य जो दो शब्द हैं इनका आशय केवल ईश्वरोपासना और प्रकृति की उपासना है। ईश्वर उपासना धर्म है जिससे आत्मिक बल मिलता है और वह ऐसे उन्नति के कार्य करता है जिससे संसार में सुखों की प्राप्ति होती है। दूसरे ईश्वरोपासना से ईश्वरीय शक्ति अर्थात् वैदिक ज्ञान की प्राप्ति होकर जीव की ज्ञान शक्ति बढ़ जाती है। संसार में जितने योगी हुए हैं, जिन्होंने अपने आत्मा को प्रकृति से अलग करके ज्ञान की ओर लगाया है वे सब संसार में ज्ञानी और विद्वान् कहलाये और अद्य पर्यन्त उनका नाम और कार्य संसार में विख्यात है। परन्तु जितने प्रकृति के उपासक हुए, जिन्होंने आत्मिक हानि को प्राप्त किया वे दास होकर चले गये उनके जीवन में मूर्खता और दुःख ने आक्रमण किया। मरने के पश्चात् भी कष्ट के अतिरिक्त कुछ न मिला और आज उन्हें कोई जानता भी नहीं।

प्रियवरो ! आत्मा एक राजा है, जिसकी राजधानी यह शरीर है, इन्द्रिय, बुद्धि इत्यादि मन इसके कर्मचारी हैं। यदि यह राजा बलवान् होता है तो अपने कर्मचारियों पर शासन करता है और अपनी इच्छानुसार उन से काम लेता है, उस समय उसके कर्मचारी उसके दास होकर उसको प्रत्येक प्रकार का सुख देते हैं। परन्तु जिस समय निर्बल हो जाता है, उस समय कर्मचारी उसको दवा लेते हैं और वह प्रत्येक से विनय करता है, वह उनके लिये भोजन का यत्न करता है, यद्यपि यह कार्य इन कर्मचारियों का था कि अपना भोजन प्राप्त करते अर्थात् अपने विषयों को भोगते हुए भोजन अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते परन्तु आत्मा को निर्बल देखकर ऐसे आलसी और अहंकारी हो जाते हैं कि राजा को स्वयं इनके भोजन का सन्देह लगा रहता है, उसकी सारी स्वतन्त्रता और प्रधानता बिक जाती है, वह अपने आपको राजा के स्थान में दास अनुभव करने लगता है। अब उसका कार्य यह होता है कि साईस की भांति घोड़ों के पालन पोषण में लगा रहे, उसे अपने उस मार्ग का ध्यान तक नहीं रहता कि कहाँ जाना है ? वह जिन कार्यों को प्रबलता की दशा में तुच्छ समझता था, उस निर्बलता की दशा में उसको एक आवश्यकीय कार्य समझ लेता है और पदार्थों का ज्ञान

(६०८)

उसे प्रबलता की दशा में सुगमता से हो सकता था अब वह उसके विचार में अधिक गुरु दृष्टि आते हैं। भ्रातृवर्गों! यह तो आप जानते हैं कि जिस राजा की प्रजा अयोग्य है, वह प्रजा सदैव अकृतकार्य रहती है। राजा का कार्य राजा से होता है, दास से नहीं। इसी प्रकार जिस जाति का मुखिया अयोग्य है, उसकी भी यही दशा होती है। इसी प्रकार प्रबल आत्मा के कार्य निर्वल आत्मा से नहीं हो सकते और संसार में भी देखा जाता है कि जिस मनुष्य की इन्द्रिय उसके वश में नहीं, उसका कुटुम्ब उसके वश में नहीं रहता और जो अपने कुटुम्ब पर शासन न कर सके, वह अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता और जो अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता, वह अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता और जो ग्राम पर शासन नहीं कर सका, वह प्रान्त पर शासन नहीं प्राप्त कर सकता और जो प्रान्त के योग्य नहीं, वह देश पर क्योंकि शासन कर सकता है, और जो एक देश पर भी शासन नहीं कर सकता है, वह संसार पर किस प्रकार हुक्मत कर सकता है ? यहां से पता मिलता है कि संसार में सब से बड़ी उत्तीर्णता की सोपान आत्मा इन्द्रिय और मन पर शासन के लिये आत्मा को अत्यन्त भारी शक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि ये इन्द्रियां संसार के सहस्रों पदार्थों को मन के द्वारा सन्मुख करके आत्मा को धोका देना चाहती हैं। परन्तु प्रबल आत्मा जिसकी ज्ञान गुण परमात्मा की प्रबल शक्ति से सहायता पाकर उन्नति कर चुका है जिसको प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है, वह इन इन्द्रियों और मन के वशीभूत नहीं हो सकता। जो इन्द्रियों और मन को वश करने योग्य बल आत्मा में रखता है, वह कृतमार्ग्य हो सकता है।

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाई के रेट्स

स्थान	१ मास का	३ मास का	६ मास का	१ वर्ष का
दूसरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा "	३।।)	८)	१५)	२५)
चौथाई "	२)	४)	८)	१५)

उत्तरत का धन नियमानुसार पेशगी आना चाहिये।

मन-मन्दिर

[ले०—श्री बा० पूर्णचन्द जी ऐडवोकेट]

(६)

मनसा परिक्रमा

अघमर्षण मन्त्र पर विचार करते हुए हमने लिखा था कि सृष्टि-उत्पत्ति की अवस्था पर विचार करने से हमारे अन्दर यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि ईश्वर सर्वव्यापक और सृष्टि का रचयिता है और कर्मफल प्रदाता है। धारणा के बाद ध्यान की विधि है। हमारा मन अति चंचल है और प्रकृति के प्रलोभन में पड़ कर ईश्वर विमुख हो जाता है। ध्यान की विधि से अभिप्राय यह है कि हमारा मन ईश्वर चिन्तन का ऐसा अभ्यासी हो जावे कि छत्रों दिशा और तीनों काल, हर दशा, हर अवस्था और हर वस्तु में ईश्वर की सत्ता और उसकी विभूति को अनुभव करें और ईश्वर की न्याय-व्यवस्था को हर परिवर्तन में अनुभव करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनसा परिक्रमा के छः मन्त्र सन्ध्या की विधि में रखे गये हैं।

परिक्रमा

स्थूल-पूजा की विधि में परिक्रमा या “परकम्मा” एक प्रचलित अङ्ग है। मथुरा वृन्दावन में सारी वृज-भूमि की परकम्मा होती है। हिन्दुओं के मन्दिरों में बहुधा परकम्मा के लिये स्थान बना रहता है, परन्तु स्थूल-पूजा में जो पैरों से चल कर परिक्रमा होती है वह मानसिक परिक्रमा से बिल्कुल भिन्न है। यह कहना चाहिये कि उल्टी ही है। मन-मन्दिर में प्रवेश करके जब जीवात्मा एकाग्रचित्त होकर ईश्वर की पूजा के लिये जब बैठता है तो उस समय मनसा परिक्रमा से अभिप्राय यह है कि आसन पर बैठकर बलवती धारणा के साथ इस बात का अभ्यास करे कि मन को सब स्थानों में घुमा दे और ईश्वर-चिन्तन से पृथक् न होने दे। जिससे लाभ यह होगा कि मन के सामने कोई भी चीज़ आ जावे तो उसको देखकर वह विचलित न होगा और ईश्वर को सदैव ध्यान में रखेगा।

परकार से उपमा

हमें एक गोल चक्र या ‘सरकिल’ बनाने के लिए परकार की आवश्यकता होती है। परकार से हम यदि सुन्दर और सुडौल चक्र बनाना चाहें तो आवश्यक-

(६१०)

कता इस अभ्यास की है कि परकार का एक पैर दृढ़ता से कागज पर जमा रहे और हिलने न पाये और दूसरा पैर घूमकर चारों तरफ हो आवे और फिर पहले पैर की केन्द्र में आकर केन्द्रित हो जावे। यदि जमा हुआ पैर जरा भी हिल गया तो चक्र या गोलाकार शुद्ध, सुन्दर न बनेगा।

ध्यान से अभिप्राय

हमें सब दिशाओं में मन को घुमा कर इस बात का अभ्यास कराना है कि ईश्वर सदैव और हर स्थान में व्यापक है सर्वज्ञाता भी—और ईश्वर के प्रभाव से इस ब्रह्माण्ड का कोई भी परमाणु या कोई भी प्राणी बाहर नहीं है।

ईश्वर का स्वरूप

हम ईश्वर को जड़ जगत् और चैतन्य जगत् में दो रूपों में समझ सकते हैं। जड़ जगत् में सारी रचना का वह विभिन्न कारण है और जो कुछ जड़ जगत् में रूप परिवर्तन होता है वह सब ईश्वरीय नियमों के आधार पर और किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए। इन ही जड़ जगत् के पदार्थों के द्वारा चैतन्य जगत् में जितने प्राणी हैं उनका पालन पोषण होता है। इन्हीं के द्वारा जीवन की रक्षा होती है। इन ही से दण्ड विधान की व्यवस्था होती है। इन्हीं से ईश्वर की दया प्रकट होती है और इन्हीं से ईश्वर का रोष। इस जड़ जगत् में बहुत से पदार्थों के बड़े सुन्दर और आकर्षक रूप हैं। बहुतों के भयानक और भय उत्पन्न करने वाले रूप हैं। जो आकर्षक हैं उनके प्रलोभन से बचने की आवश्यकता है। जो भयानक हैं उनके भय से निर्भय होने की आवश्यकता है। यदि हम प्रलोभन में फँस गये तो हमारा नाश होगा और यदि भयभीत हो गये और कर्त्तव्य से विमुख हो गये तो महान् हानि होगी। सुख और दुःख दोनों में एक महान् रक्षक की आवश्यकता है सुख में अभिमान से बचाने के लिए। अभिमान से ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होता है उनसे बचाने के लिए और असन्तोष तथा तदुत्पन्न द्वेष भावों के निवारणार्थ एक महान् रक्षक और अटल व्यवस्थापक की आवश्यकता है। इसी प्रकार चैतन्य जगत् में एक ऐसे न्यायकारी की आवश्यकता है जिसका न्याय अटल हो और जिसकी न्याय व्यवस्था में न हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता हो और न गुञ्जाइश। चैतन्य जगत् में बहुत कुछ परस्पर का द्वेष बदला लेने के भावों के आधार पर है हम अपने सुख में कमी का कारण दूसरे प्राणियों को समझते हैं या दुःख की वृद्धि में दूसरों को कारण मानते हैं। यद्यपि विचार

(६११)

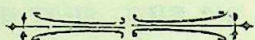
में रखा जावे सुख और दुख हमारे ही कर्मों का फल है और हम ही उसके कारण हैं। अन्य प्राणी जिनके द्वारा हमें अच्छे या बुरे कर्मों के फल प्राप्त होते हैं वह सब कर्म फल प्राप्त कराने के निमित्त हैं। चाहे इस निमित्त बनने का परिणाम उनको भी भोगना पड़े। यदि हमारे अन्दर यह भाव सदैव बना रहे कि परमात्मा अपनी न्याय व्यवस्था से सदा हमें और औरों को कर्मों का फल प्राप्त कराता रहता है तो हम बदला लेने के भावों से बचे रहेंगे और क़ानून को अपने हाथ में लेने के अपराध से बचे रहेंगे। यदि हम जड़ जगत् में प्रलोभन और भय से सुरक्षित रहे और अन्य प्राणियों से व्यवहार में बदले की भावना से सुरक्षित रहें तो हम अपने जीवन को सफल और धार्मिक बना सकेंगे। और हमारा ध्यान सफल और पूर्ण रहेगा। किसी भी दशा में ईश्वर को न भूलेंगे और यही ध्यान की क्रिया का लाभ है। इन मनसा परिक्रमा के छत्रों मन्त्रों में इन्हीं दोनों प्रकार के भावों की पूर्ति की शिक्षा है।

मन्त्रों के दो भाग

इन मन्त्रों में दो भाग हैं। पहले भाग में किसी एक विशेष दिशा को लक्ष में रखकर जड़ जगत् के किसी एक महान् आकर्षक पदार्थ को लक्ष में रखकर परमात्मा को लक्ष में रखकर महान् रक्षक कहा गया है ईश्वर को अधिपति रक्षक बताकर यह भी बताया गया कि काहे में रक्षा करता है और किससे रक्षा करता है और उनके रक्षक होने पर हम उनको बार बार नमस्कार करते हैं। दूसरे भाग में अर्थात् “योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विषमस्तं वो जम्भेदध्मः” इन शब्दों से परमात्मा के न्यायकारी होने की शिक्षा मिलती है। इन शब्दों का अभिप्राय यह है कि जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं हम इस द्वेष के न्याय को परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं। इस आकाश और पृथ्वी के बीच में जितने लोक हैं उन सब में जीवात्माओं के न्याय की व्यवस्था ही हो रही है। यदि इस सारे ब्रह्माण्ड को हम परमात्मा का एक विराट शरीर मान लें तो यह आकाश और पृथ्वी उसके दोनों जबड़े के समान हैं जिस प्रकार इस हमारे छोटे शरीर में हमारे जबड़े के ये दांत इसलिये हैं कि हम जो कुछ खायें और ग्रहण करें उसको पीसकर सारे शरीर में यथा योग्य पहुंचा दें और विभाजित कर दें। इसी प्रकार विराट ब्रह्माण्ड रूप शरीर में जन्म मरण सुख दुख के चक्करों में इस न्याय की प्रक्रिया और व्यवस्था यदि हमसे बुराई करने वाले को स्वयं कुछ बुराई का फल ईश्वरीय व्यवस्था के आधार पर मिलने वाला है तो हम अपनी भावनाओं को क्यों दूषित करें और अपने को अधिक अपराधी बनावें अब हम इन छत्रों मन्त्रों के पहले भाग को पृथक् पृथक् दर्शाने का यत्न करेंगे।

—वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण

(लेखक—श्री रामानन्द चटर्जी सम्पादक माडर्न रिव्यू)



पं० चन्द्र गुप्त वेदालङ्कार ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध में समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है जिसका प्रतिवाद हमने अभी तक नहीं पढ़ा है। उस वक्तव्य का कुछ भाग इस प्रकार है :—

“हिन्दू राष्ट्र के लिए यह बड़ी चिन्ता का विषय है कि केन्द्रीय सरकार ने ‘वैज्ञानिक शब्दावली’ के निर्माण के लिए सर अकबर हैदरी के प्रधानत्व में जो परामर्श दातृ समिति बनाई है उसमें ६ मुसल्मान, ४ हिन्दू और २ यूरोपियन हैं। इस समिति की बैठकें ‘उस्मानिया विश्व विद्यालय’ के प्रांगण में हैदराबाद (दक्षिण) में हुई थी जहां शिक्षा का माध्यम फ़ारसी मिश्रित उर्दू है। समिति के ४ सदस्य उस्मानिया विश्व विद्यालय के हैं तथा एक सदस्य अलीगढ़ विश्व विद्यालय का है। हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस तथा गुरुकुल कांगड़ी की नितान्त उपेक्षा की गई है और इनका कोई भी व्यक्ति समितिमें लिए जाने योग्य नहीं समझा गया है। समिति ने ‘आल इण्डिया अंजुमन तरक़्क़ि उर्दू’ के मन्त्री श्रीयुत डा० अब्दुलहक को अपना सदस्य मनोनीत करना आवश्यक समझा है, जब कि हिन्दी की पूर्ण उपेक्षा की गई है क्योंकि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अथवा नागरी प्रचारिणी सभा का कोई भी व्यक्ति न मनोनीत किया गया है और न विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया है। जहां तक हिन्दी का सम्बन्ध है उपर्युक्त अंजुमन तथा साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा के उद्देश्य एक जैसे ही हैं।

मद्रास, महाराष्ट्र, बंगाल और गुजरात से कोई व्यक्ति समिति में न लिए जाने का सरकार के पास क्या उत्तर है। जहां संस्कृत पर आश्रित वैज्ञानिक शब्दावली पहले से ही निर्मित है। हिन्दुओं और हिन्दी के प्रति सरकार की उपेक्षापूर्ण गति विधि के ये उज्ज्वल प्रमाण हैं।

भारतवर्ष की एक वा समस्त भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण साम्प्रदायिक विषय नहीं है। न यह राजनैतिक विषय ही है। भारत सरकार के शिक्षा विभाग के इस प्रकार के कार्य को हाथ में लेने से कोई आपत्ति नहीं हो सकती यदि यह कार्य राजनैतिक रूप ग्रहण न करे।

(६१३)

यतः पंडित चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार के वक्तव्य का प्रतिवाद नहीं किया गया है अतः ठीक है ऐसा माना जा सकता है ।

परामर्श दातृ समिति में मुस्लिम सदस्यों और मुस्लिम संस्थाओं के प्रतिनिधित्व की प्रचुरता का किसी भी आधारपर समर्थन नहीं हो सकता । वर्तमान काल में भारतीयों द्वारा जो वैज्ञानिक सफलतायें प्राप्त हुई हैं सही अर्थों में उनका श्रेय हिन्दुओं को प्राप्त है । भारतवर्ष की भाषाओं में जो मौलिक वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध होता है वह सब प्रायः हिन्दुओं के ही परिश्रम का फल है । हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में वैज्ञानिक शिक्षण का अधिक प्रचार नहीं है । यदि मुसलमान लोग इस बात के लिए कि उनमें वैज्ञानिक शिक्षा का हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक प्रचार है प्रसिद्ध होते और विज्ञान के क्षेत्र में उनकी सफलताएँ अधिक महत्वपूर्ण होतीं तो परामर्श दातृ समिति में उनकी प्रधानता पर न्यायतः कोई आक्षेप न होता । परन्तु सचाई इसके सर्वथा विरुद्ध है ।

यह सत्य है कि 'उस्मानिया विश्व विद्यालय' गत कई वर्षों से यूरोप के वैज्ञानिक तथा अन्य ग्रन्थों के अनुवाद एवं उनके अनुसार अपने ग्रन्थों को बनाने के कार्य में लगा हुआ है । परन्तु इसी प्रकार का कार्य एक शताब्दी से अधिक समय से विज्ञान के विषय पर लेखों और पुस्तकों के रूप में बंगाल तथा भारत के अन्य कतिपय भागों में हो रहा है भले ही किसी संस्था के द्वारा संगठित रूप में न हो रहा हो । इसके अतिरिक्त गुजराती हिन्दी, बंगाली, मराठी तथा कदाचित अन्य कतिपय वर्तमान भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली संकलित हुई हैं । इन तथ्यों की उपेक्षा करना बुद्धि संगत नहीं है । जिन संस्थाओं ने यह कार्य किया है वे 'उस्मानिया यूनिवर्सिटी' की अपेक्षा अधिक पुरानी हैं और उनको अधिक सफलताओं का श्रेय भी प्राप्त है । उदाहरण के लिए कलकत्ता विश्व विद्यालय को ले लीजिए । संयुक्त प्रान्त की 'नागरी प्रचारिणी सभा' और बंगाल की 'बंग साहित्य परिषद्' उस्मानिया यूनिवर्सिटी अथवा उर्दू साहित्य की उन्नति के लिए स्थापित अन्य किसी संस्था से कदाचित पूर्व स्थापित हुई थीं ।

समिति में मुसलमानों की प्रधानता से भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली में अरबी शब्दों की भरमार हो जाने की आशंका हो सकती है । अरबी भाषा का भाषा के रूप में कोई विरोध नहीं हो सकता । समय के प्रवाह के कारण भारतीय भाषाओं में अरबी के जो शब्द प्रविष्ट होकर स्वाभाविक

(६१४)

बन गए हैं उन पर भी आपत्ति नहीं हो सकती । भारतीय भाषाओं में से अरबी के शब्दों के बहिष्कार वा निष्करण का टर्की जैसा यहां कोई आन्दोलन भी नहीं है । परन्तु अरबी के शब्दों के नवीन प्रवेश पर उचित रीति से आपत्ति हो सकती है और ऐसा करना आवश्यक भी है । भारत की एक भी भाषा यहां तक कि उर्दू और पश्तो भी जो सीमा प्रान्त के कुछ भागों में बोली जाती है सेमेटिक नहीं है ।

भारतीय भाषाएँ जिनका अपना साहित्य है आर्य्य अथवा द्रविड़ भाषाएँ हैं । जितनी आर्य्य भाषाएँ हैं उन्हें जिन नए शब्दों की आवश्यकता होती है, वे सब संस्कृत से लेती हैं अथवा संस्कृत शब्दों और धातुओं से उन्हें बनाती हैं । द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता है । ये भाषाएँ अपनी आवश्यकता के अनुसार नए शब्द संस्कृत से, अपनी पुरानी शब्दावली से अथवा धातुओं से ले सकती अथवा बना सकती हैं । अरबी से नए शब्दों के लेने की न आवश्यकता होती है और न उनके लिए स्थान ही होता है निस्सन्देह उन मुसल्मानों के लिए जिनकी मातृ भाषा उर्दू है हम कोई कानून नहीं बना रहे हैं । वे अपने आप स्वयं सन्तुष्ट कर सकते हैं अथवा करेंगे ।

यह सत्य है कि कतिपय मुसल्मानों अथवा मुसल्मान वंशों ने भारतवर्ष के विविध भागों पर शासन किया है और उनके शासन-काल में विदेशी शब्द भारतीय भाषाओं में प्रविष्ट हुए हैं । अब भी उन भाषाओं में वे शब्द विद्यमान हैं । परन्तु इन शब्दों का साधारणतया सेना, देश के आन्तरिक शासन, भूमि की व्यवस्था, कर, दस्तकारी और भवन निर्माण विद्या से सम्बन्ध रहा है । साथ ही चित्र कला, संगीत, वस्तुओं के क्रय-विक्रय और इस प्रकार की अन्य वस्तुओं से भी ये शब्द सम्बन्धित रहे हैं । उन दिनों में वैज्ञानिक शिक्षण और अनुसन्धान के लिए कोई यत्न नहीं हुआ था और यही कारण था कि अरबी के वैज्ञानिक शब्दों को आश्रय प्राप्त हुआ था ।

हमारी प्राचीन संस्कृत साहित्य में बहुत से वैज्ञानिक शब्द हैं । उनका सम्बन्ध साधारणतया गणित, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद और शिल्प इत्यादि विद्याओं से है । इस विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिये श्रीयुत पी. सी. राय कृत 'हिन्दू रसायन विद्या' का इतिहास और सर बी. एन. सील कृत 'हिन्दुओं की व्यावहारिक विद्याएँ' नामक पुस्तक पढ़नी चाहिए ।

(६१५)

चीन और जापान में वैज्ञानिक शब्दावली

भारतवर्ष जैसे विशाल देश की भाषाओं के लिये वैज्ञानिक शब्दावली बनाना सरल कार्य नहीं है। यह कार्य फुर्सत के समय का कार्य नहीं है और भारतवर्ष में प्रचलित नौकरशाही रीति से भी पूर्ण होने वाला कार्य नहीं है।

हमने अपने पत्र के गताङ्क में यूरोपीय शब्दावली के सर्वाङ्गीण प्रवेश का विरोध किया था। हमारा पक्ष प्रोटन, न्यूट्रन, इलैक्ट्रन, (Proton, neutron, electron) आदि शब्दों को उनमें बिना कोई हेर फेर किये ले लेने का है। और 'आक्सीजन' तथा इस जैसे शब्दों को भी स्थान दे देने का है।

चीनियों और जापानियों ने इस कार्य को किस रीति से सम्पादित किया है यह जान लेना भी उपयोगी होगा। विश्व भारती में एक चीनी विभाग है। हमने आचार्य क्षितिश मोहन सेन शास्त्री एम. ए. से पूछा था कि वे कृपा करके मालूम करके हमें सूचित करें कि चीन के पण्डितों ने यह कार्य किस प्रकार किया है। उनका उत्तर 'प्रवासी' के पिछले अङ्क में प्रकाशित हुआ है। अभी हाल में श्रीयुत टी. एफ. नामक एक बड़े चीनी पण्डित शान्तिनिकेतन में आये हुए हैं। उनका कथन है कि चीन और जापान की वैज्ञानिक शब्दावलियों का चीनी और जापानी भाषाओं में संकलन तथा निर्माण हुआ है। यूरोप की भाषाओं के वे शब्द जो पहले से इन दोनों भाषाओं में प्रचलित थे, रहने दिये गये हैं। थोड़े यूरोपियन भाषाओं के शब्द भी रक्खे गये हैं। चीन में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के लिये एक समिति बनी हुई है जिसके अध्यक्ष श्रीयुत डा० के. सी. चेन हैं। ये रसायन शास्त्र के धुरन्धर पण्डित हैं। पहले इसके अध्यक्ष डा० एस. सी. सिन थे जो भूगर्भ शास्त्र में निष्णात थे। यह समिति वैज्ञानिक शब्दावली तय्यार कराती है और विविध वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकों का निर्माण भी कराती है और पुस्तकों के लिखे जाने के पश्चात् उनकी जांच करती है। जापान में इसी प्रकार कार्य होता है। यतः जापान में वर्तमान कालीन वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार चीन की अपेक्षा पहले हुआ था अतः चीन की वैज्ञानिक शब्दावली की अपेक्षा जापान की शब्दावली में यूरोपीय शब्दों का अनुपात कुछ अधिक है।

चीन और जापान के लिये यह सबसे अच्छी बात है कि उनमें एक ही मुख्य भाषा है। अतः इन दोनों देशों में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का कार्य अपेक्षाकृत सरल है। परन्तु भारतवर्ष में बहुत प्राचीन भाषाओं के कारण

(६१६)

जिनके अपने साहित्य भी हैं यह कार्य अधिक कठिन और जटिल है ।

रूस में भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक मुख्य भाषाएँ थीं । पिछले दिनों रूस की एक खबर प्रकाशित हुई थी कि वहाँ बोल्शविक क्रांति का इतिहास ५७ भाषाओं में प्रकाशित हुआ था । इसमें सन्देह नहीं कि इन भाषाओं के साहित्य को रूस की सरकार प्रोत्साहित करती है । इन भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण कार्य का परिचय प्राप्त करना मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होगा । केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग को चीन, जापान और रूस के कार्य से सहायता लेनी चाहिए । इस विभाग को उन देशों के सम्बन्धित अधिकारियों से विचार परिवर्तन करना चाहिए ।

वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण की रीति

भारतवर्ष में बहुत सी मुख्य भाषायें हैं । अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह सम्भव है कि समूचे भारत की एक ही वैज्ञानिक शब्दावली हो और साथ ही एक ही भाषा हो सकती है ? समूचे भारतवर्ष की एक ऐसी भाषा के निर्माण और विकास में जो पढ़ने लिखने और साहित्य की एक मात्र भाषा हो, पर्याप्त समय लगेगा । हो सकता है अनिश्चित भविष्य में हमारी ऐसी एक भाषा हो, परन्तु इङ्गलिश को वह स्थान प्राप्त न होगा । इस बीच में, वर्तमान परिस्थितियों में, वर्तमान भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, जिनमें हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो अधिक से अधिक सम्मिलित वैज्ञानिक शब्द लिखने चाहिए । वर्तमान शब्दों का समान अनुपात होना सम्भव नहीं है ।

संस्कृत से निकली हुई समस्त भाषाओं में एक से शब्द हो सकते हैं । द्रविण भाषाओं में भी ऐसा हो सकता है । उर्दू भाषा में भी भावना के अतिरिक्त इन शब्दों के प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं हो सकती । यदि भावना विजयी हो तो उर्दू में अरबी और फ़ारसी के शब्द लिये जा सकते हैं ।

इस विषय से सम्बन्धित समस्त समस्याओं पर कार्यवाहि करने के लिये एक केन्द्रीय समिति होनी चाहिए । और इस समिति के कार्य में सहायता देने के लिये प्रान्तों में छोटी २ उपसमितियाँ होनी चाहिए । कार्य के संतुलन के लिये प्रत्येक समिति में एकाध सरकारी व्यक्ति होना चाहिए । केवल मात्र सरकारी

(६१७)

ओहदे के विचार से इन समितियों में और कोई अधिकारी नहीं होना चाहिए। सदस्यों की वैज्ञानिक और साहित्यिक योग्यता ही मुख्य होनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो भाषा सम्बन्धी क्षेत्रों के प्रसिद्ध २ व्यक्तियों और विज्ञान वेत्ताओं को समिति में लेना चाहिए। श्रीयुत पी. सी. राय इस समय हमारे प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता हैं और अपनी मातृ भाषा में वैज्ञानिक विषयों के अच्छे लेखक हैं। जहां तक और जितनी बार सम्भव हो उन जैसे व्यक्तियों के परामर्शों से लाभ उठाना चाहिए। जब तक सम्भव हो रवीन्द्र नाथ ठाकुर से भी विचार परिवर्तन करना चाहिए।

(माडर्न रिव्यू)

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) दयानन्द ग्रन्थमाला	२॥	(२०) आर्यवर्त्त की वाणी	=)
(२) संस्कृत सत्यार्थ प्रकाश	॥	(२१) कर्त्तव्य दर्पण	=)॥
(३) प्राणायाम विधि	॥	(२२) समस्त आर्य समाजों की सूची ॥	
(४) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द	॥	(२३) दश नियम व्याख्या	=)
सजिल्द	१)	(२४) सार्वदेशिक सभा का इतिहास	२)
(५) विदेशों में आर्य समाज	॥=)	सजिल्द	२॥
(६) यमपितृ परिचय	१)	(२५) बलिदान	॥
(७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	१॥	(२६) Agnihotra	
(८) आर्य सिद्धान्त विमर्श	१॥	Well Bound	२॥
(९) भजन भास्कर	॥	(२७) Crucifixion by an eye	
(१०) वेद में असित शब्द	७)	witness	१=)
(११) वैदिक सूर्य विज्ञान	=)	(२८) Truth and Vedas	॥=)
(१२) विरजानन्द विजय	=)	(२९) Truth bed rocks of Aryn	
(१३) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद	=)	Culture ॥	
(१४) इजहारे इक्कीकृत (उर्दू में)	॥=)	(३०) Vedic Teachings	१॥
(१५) सत्य निर्णय (हिन्दी में)	१॥	(३१) Voice of Arya Varta	=)
(१६) धर्म और उसकी आवश्यकता	१=)	(३२) Daily Prayer of	
(१७) आर्य पर्व पद्धति	॥=)	an Arya	=)
(१८) कथा माला	॥=)	(३३) Commentary on	
(१९) आर्य जीवन और गृहस्थ धर्म	॥=)	Ishopanishat	१)
		(३४) The Scopes Mission of	
		Arya Samaj Bound	१)
		Unbound	॥=)

आर्य विवाह ऐक्ट

विस्तृत व्याख्या

[२]

(गताङ्क से आगे)

१९२३ का विशेष विवाह संशोधन ऐक्ट

(Special Marriage Amendment Act of 1923)

जब सर हरिसिंह गौड़ ने अपना १९२३ का विशेष विवाह संशोधक बिल प्रस्तुत किया था तब उनका उद्देश्य यह था कि १८७२ के कानून की घोषणा किए बिना हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों आदि के पारस्परिक विवाहों को सुगम बनाया जाय। उनका एक और उद्देश्य यह था कि १८७२ की हिन्दू धर्म के परित्याग की घोषणा किए बिना हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया तथा सुगम बनाया जाय। १९२३ से पूर्व जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है १८७२ का कानून बहुत थोड़े मनुष्यों पर लागू होता था अर्थात् ब्रह्मसमाजियों पर तथा उन थोड़े से व्यक्तियों पर लागू होता था जो अपने को अहिन्दू अथवा गैर मुस्लिम होने की घोषणा कर देते थे। परन्तु बहुसंख्यक हिन्दू अपने धर्म के परित्याग तथा अन्तर्जातीय विवाहों को कानून सम्मत निर्धारित कराने के उद्देश्य से आवश्यक घोषणा करने के लिए उद्यत नहीं होते थे। वे हिन्दू बना रहना और साथ ही अन्तर्जातीय विवाह भी करना चाहते थे। ऐसे व्यक्तियों को अन्तर्जातीय विवाहों के लिए समर्थ बनाने के लिए १९२३ के ऐक्ट के द्वारा यह विधान किया गया था कि अपने धर्म के परित्याग की घोषणा किये बिना हिन्दू, जैनी और सिक्ख इत्यादि अन्तर्जातीय विवाह कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में अन्तर्जातीय विवाह वैध नियत कर दिए गये थे परन्तु इस रियायत के साथ कुछ कठिनाइयां भी कर दी गई थीं जिनके कारण उन बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिये यह कानून अनुपयोगी बन गया था। जिनकी हिन्दू समाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के लिये मरजी नहीं थी।

जब सर हरिसिंह गौड़ ने अपना बिल प्रस्तुत किया था तो उन्हें धारा सभा के मुसलमान तथा रूढ़िवादी हिन्दू सदस्यों के विरोध का सामना करना पड़ा था।

(६१६)

मुस्लिम सदस्यों को तो उन्होंने इस प्रकार संतुष्ट किया था कि उक्त ऐक्ट मुसलमानों पर लागू न होगा। रूढ़िवादियों की कतिपय शर्तों को मानने के लिये बाध्य होकर उन्होंने रूढ़िवादियों को शान्त किया था। परन्तु उन शर्तों से इस बिल की समाज सुधार की उपयोगिता पूर्णतया नष्ट हो गई थी।

इस ऐक्ट के अधीन विवाह करने वाले हिन्दुओं पर जो कठिनाइयां लगाई गई हैं वे इस ऐक्ट की २२ वीं से २५ वीं धारा तक में हैं, और वे इस प्रकार हैं:-
धारा २२—सम्मिलित परिवार के सदस्य को यह विवाह परिवार से पृथक् कर देगा।

धारा २३—इस कानून के अधीन विवाह करने वाले व्यक्ति का यह अधिकार न होगा कि वह धार्मिक और लोकोपकारक संस्थाओं का प्रबन्ध करे।

धारा २४—इस कानून के अधीन विवाह करने वाले व्यक्ति और उसकी सन्तानों पर उत्तराधिकार के मामलों में १६२५ का 'इण्डियन सक्सेशन' ऐक्ट लागू होगा।

धारा २५—इस कानून के अधीन विवाह करने वाले व्यक्ति को गोद लेने का अधिकार न होगा।

१६२३ के कानून की १८७२ के कानून के साथ तुलना

१६२३ के ऐक्ट के पास होने के बाद से अब तक इस कानून के अधीन बंगाल में प्रतिवर्ष ५० के औसत से विवाह हुए हैं और सन् १६३१ से यह संख्या प्रतिवर्ष १०० तक पहुंच गई है। ये व्यक्ति इन विवाहों के परिणामों को भली भांति समझते हैं वा नहीं, यह जानना बड़ा मनोरञ्जक होगा। यह सम्भव है जब बाद में उनके और उनकी सन्तानों के जायदाद पर उत्तराधिकार का प्रश्न उठेगा तब वे अपनी पसन्द पर दुख और पश्चाताप अनुभव करेंगे। यद्यपि घोषणा करने से इन्कार कर देने से वे हिन्दू धर्म के दायरे में बने रहने के लिये उत्सुक थे परन्तु कदाचित ऐसा करने से हिन्दू समाज, सामाजिक प्रणाली और प्रथाओं से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु से उन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

इसलिये १८७२ और १६२३ के कानूनों के अनुसार होने वाले विवाहों के कानूनी स्वरूप की तुलना करना उपयोगी होगा। यह ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि १८७२ के कानून के अधीन अहिन्दू होने की घोषणा कर देने से वर और बधू हिन्दू धर्म से परित्यक्त नहीं हो जाते और उन पर तथा उनकी सन्तानों पर

(६२०)

उत्तराधिकार के मामलों में उनका व्यक्तिगत धर्म लागू होता है। १८७२ के अधीन विवाह करने में यह बहुत बड़ा लाभ है। अन्तर्जातीय विवाह को कानून सम्मत बनाने के लिये स्त्री और पुरुष अहिन्दू होने की घोषणा मन को मार कर केवल ऐक्ट की शर्त को पूरा करने के लिये करते थे। इसका परिणाम यह था कि अन्तर्जातीय विवाह करने वालों को दो बुराइयों में से एक बुराई का चुनाव करना पड़ता था। एक ओर तो १८७२ के कानून के अधीन उन्हें यह घोषणा करनी पड़ती थी कि वे हिन्दू नहीं हैं, यद्यपि उत्तराधिकार के मामलों में उन पर उनका व्यक्तिगत धर्म लागू होता था। दूसरी ओर १८२३ के कानून के अधीन अहिन्दू होने की घोषणा करने से इन्कार कर देने से वे आत्म-सुख अनुभव कर सकते थे परन्तु धारा सभा ने उन पर एक बड़ी निर्मम शर्त आरोपित कर दी थी और वह यह थी कि विवाह करने वाले स्त्री और पुरुष तथा उनकी सन्तानों पर उत्तराधिकार की एक विदेशी प्रणाली लागू होगी जिन व्यक्तियों ने १८२३ के कानून के अधीन अन्तर्जातीय विवाह किये हैं। यदि उनको यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय कि वे अपने कानून के द्वारा शासित होना पसन्द करेंगे अथवा 'इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट' के द्वारा, तो यह नितान्त असम्भव है कि वे अपने निजी कानून के मुकाबले में उत्तराधिकार की वैदेशिक प्रणाली को पसन्द करें। यद्यपि वैदेशिक प्रणाली स्त्रियों के अधिकार के मामले में बड़ी उदार है। सौभाग्य से आर्य समाजियों के सम्बन्ध में यह कठिनाई अब दूर हो गई है, परन्तु गैर आर्य समाजी हिन्दुओं के मामलों में अब भी यह बड़ी गम्भीर समस्या है कि वे १८७२ और १८२३ के कानूनों में से किस के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह करें।

जिन लोगों के हृदयों में हिन्दू कानून और समाज व्यवस्था के प्रति कोई प्रेम है उनके लिये १८२३ का कानून बड़ा घातक उपाय है। १८७२ के कानून के अधीन अहिन्दू होने की घोषणा करना भले ही मन को मारकर क्यों न की जाय, उत्तम है इसकी अपेक्षा कि १८२३ के कानून की कड़ी शर्तों को अपने तथा अपनी सन्तानों के ऊपर लादा जाय।

सुमन-संचय

(१)

कर्त्तव्य की वेदि पर

अनन्त और वसन्त दो अभिन्न हृदय मित्र थे । अनन्त सेनापति और वसन्त देश का सर्वाधिकारी था ।

एक बार उस देश पर शत्रु ने एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया । अनन्त स्वयं सामना करने के लिए रणक्षेत्र में गया । ३-४ दिन पर्यन्त तुमुल संग्राम हुआ और अन्त में अनन्त की सेना विजयी रही । यह सेना अनेक सैनिकों के साथ शत्रु के सेनापति को बन्दी करके अपने शिविर में ले गई और इन पर कड़ा पहरा बिठाया गया । बिना सेनापति की आज्ञा के उनसे मिलने जुलने और बात-चीत करने का निषेध कर दिया गया ।

एक दिन रात के बारह बजे एक नवयुवती उस शिविर के द्वार पर उपस्थित हुई और उसने प्रहरि को अपने आने का उद्देश्य समझाकर बन्दी हुए सेनापति से मिलने की आज्ञा चाही । पहरेदारों ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया । इस पर उसने एक चिट लिखकर अनन्त (सेनापति) से मिलने की इच्छा प्रगट की ।

सन्तरी चिट लेकर अनन्त के शिविर में गया । चिट पढ़कर वह तत्काल द्वार पर आया ।

नवयुवती ने अभिवादन करके कहा:—

“सेनापते ! मैं आपसे एक भिक्षा मांगने आई हूँ । मेरा एकमात्र भाई मृत्यु-शय्या पर पड़ा है और पिता के दर्शनों के लिए छटपटा रहा है । यदि उसे देखने भर के लिए आप पिता जी को मुक्त कर देंगे तो हम पर बड़ा उपकार करेंगे । मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि आपके साथ किसी प्रकार का विश्वासघात न होगा ।”

नवयुवती की यह बात सुनकर, अनन्त ने कहा, “बहिन ! मुझे तुम्हारे साथ सहानुभूति है परन्तु सेना का नियन्त्रण मुझे यह आज्ञा नहीं देता कि मैं तुम्हारे पिता को वर जाने की आज्ञा दूँ । मैं विवश हूँ ।”

(६२२)

यह उत्तर सुनकर नवयुवती रोने लगी । उसने रोते हुए कहा, “सेनापते ! मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या सेना का नियन्त्रण मनुष्यत्व से ऊपर है ?” यह बात अनन्त के मर्म पर जाकर लगी । उसने ठंडी श्वास ली और बिना कुछ कहे सेनापति को घर जाने की आज्ञा दे दी ।

दूसरे दिन दोपहर को शिविर में सैनिक-न्याय-सभा लगी थी । अनन्त कई सैनिकों के घेरे में नीचा मुँह किए दण्ड आज्ञा की पतीक्षा में खड़ा था । बसन्त एक ऊँचे आसन पर बैठा दंडाज्ञा लिख रहा था । कुछ देर के उपरान्त सैनिक नियन्त्रण का उलंघन करने के अपराध में अनन्त को मृत्यु दंड की आज्ञा सुनाई गई । शिविर में सन्नाटा छा गया । अनन्त बन्दीगृह में डाल दिया गया ।

तीसरे दिन अनन्त चरखी के निकट ले जाया गया । हजारों स्त्री पुरुषों की भीड़ लग गई । बसन्त चर्खी के निकट बैठा । उन दिनों यह चरखी भी फांसी और सूली की नाई बध करने का एक यन्त्र था । अनन्त को चरखी के भीतर बन्द कर दिया गया । उपस्थित नरनारी चिल्ला उठे । बसन्त ने एक दो की आवाज लगाई । तीसरी आवाज के सुनते ही अनन्त की आंखें बसन्त की आंखों से जा मिलीं । इधर चरखी का पहिया घूमा और उधर बसन्त ने अनन्त के देखते ही देखते जेब से पिस्तौल निकालकर अपने हृदय पर फायर किया और तत्क्षण मर गया ।

दोनों मित्रों के इस दुःखद अन्त पर उपस्थित नरनारी बिलख २ कर रोने लगे और देश भर में कुहराम मच गया ।

(२)

उपकार का बदला

इन्द्रदेव नामक एक लड़का एक अत्याचारी स्वामी का दास था । जिन दिनों की यह कहानी है उन दिनों मालिकों का अपने दासों पर एकाधिपत्य होता था । वे उन्हें जिस प्रकार चाहें चलाते थे । उनको क्रय-विक्रय करने तथा जान से मारने तक का उनको अधिकार प्राप्त था । देश का कानून दासों पर होने वाले अत्याचारों और अनाचारों को रोक न सकता था । उन दिनों दासों की स्थिति पालतू पशुओं से भी अधिक खराब रहती थी ।

इन्द्रदेव का स्वामी उसे बहुत मारता, पीटता और तज्ञ करता था । इन्द्रदेव उसके अत्याचारों से बहुत दुखी था और उस निर्दयी स्वामी के अत्याचारों से बचने के लिये मृत्यु को अच्छा समझता था ।

(६२३)

एक दिन उसके स्वामी ने बिना किसी अपराध के उसे कोड़ों से पीटा और मारते २ उसे अधमरा कर दिया। होश आने पर इन्द्रदेव उसके घर से भाग गया और एक ऐसे सघन वन में पहुंचा, जो सिंह, चीते इत्यादि हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण था। वड़े २ शिकारियों और साहसी व्यक्तियों को भी उस वन में जाते भय लगता था। इन्द्रदेव अपने जीवन से तंग आ गया था, अतः उस वन में जाते हुए उसे भय न लगा। वह चाहता था कि कोई हिंसक जन्तु उसे मार दे और वह निर्दयी स्वामी के अत्याचारों से मुक्त हो जाय।

उस वन में रहते हुए उसे ३-४ दिन हो गये थे। एक दिन प्रातःकाल जब वह सोकर उठा तो उसने देखा कि एक बड़ा सिंह उसके पास बैठा हुआ है। सिंह को देख कर उसके होश उड़ गये। उसने आंखें बन्द कर लीं और परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने अनायास ही मृत्यु को मेरे पास भेज दिया है। उसने सिंह की ओर अपनी दृष्टि फेरी। उसने देखा कि सिंह अपना एक पंजा ऊपर को उठाये हुए है और दर्द से कराह रहा है। उसने साहस को हाथ में लेकर सिंह के पंजे को अपने हाथ में लिया और ध्यान पूर्वक देखने पर विदित हुआ कि उस पंजे में एक बारीक कांटा चुभा हुआ है। उसी की पीड़ा से सिंह व्याकुल है। उसने यत्न से उस कांटे को निकाल लिया और सिंह की व्याकुलता तत्क्षण दूर हो गई।

पीड़ा दूर होने पर सिंह बड़ा प्रसन्न हुआ और उस दिन से उन दोनों में बड़ा प्रेम हो गया। इन्द्रदेव उस सिंह की गुफा में रहने लगा और सिंह उसका पालन करने लगा।

इन्द्रदेव के मालिक ने देश के राजा से उसके भाग जाने की रिपोर्ट करके उसको तलाश करने की प्रार्थना की। राजा ने उसके तलाश करने की आज्ञा दे दी और राज कर्मचारी इन्द्रदेव को ढूँढ़ कर लाने के लिये भेजे गये। १५-२० दिन की तलाश के पश्चात् उस वन में इन्द्रदेव मिल गया और वे उसे नगर में ले गये। स्वामी की प्रेरणा पर राजा ने भाग जाने के अपराध में इन्द्रदेव को मृत्यु दण्ड की आज्ञा सुनाई। इन्द्रदेव की प्रार्थना और निर्दोषता पर कोई ध्यान न दिया गया।

उन दिनों हाथी, शेर इत्यादि जन्तुओं के द्वारा भी मृत्यु दण्ड दिये जाने की प्रथा थी। उस राजा के चिड़िया घर में बहुत से हिंसक जन्तु पले रहते थे।

(६२४)

राजा ने एक सिंह को ८-१० दिन पर्यन्त भूखे रखने की आज्ञा दी और निश्चय किया कि उसी के द्वारा इन्द्रदेव का वध कराया जाय ।

नियत दिन और नियत समय पर इन्द्रदेव सिंह द्वारा मरवाये जाने के लिये राजमहल के विशाल आंगन में लाया गया । दर्शकों से वह आंगन भर गया । उसमें तिल रखने भर को भी स्थान न था । राजा एक ऊँचे आसन पर बैठा । उस भूखे सिंह का कटहड़ा लाया गया । उस भयंकर सिंह को देख कर दर्शक मारे भय के कांपने लगे । भूख के मारे सिंह व्याकुल था और पिंजड़े में जोरों से दहाड़ लगा रहा था । उसकी दहाड़ से पृथ्वी कांप रही थी । इन्द्रदेव उसके पिंजड़े के पास ले जाया गया । उसने घुटने टेक कर राजा से प्रार्थना की 'महाराज ! मैं निर्दोष हूँ । स्वामी के अत्याचारों से तंग आकर ही मैं उसके घर से भागा था । मैं प्राण दान की भित्ति मांगता हूँ ।' सहृदय नर-नारी उसकी दशा को देख कर रोने और राजा से उसकी मुक्ति के लिये प्रार्थना करने लगे । परन्तु राजा बड़ा कठोर था । उसने उन प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान न दिया ।

सिंह का पिंजड़ा खोला गया । राजप्रसाद लोगों के चीत्कारों से गूँज गया । सिंह गर्जन करके इन्द्रदेव पर झपटा और उसे मारने के बजाय वह उसके पैरों में लेट गया और आधी आंखें बन्द किये हुए उसे प्यार करने लगा । इस दृश्य को देख कर सब लोग आश्चर्य में डूब गये । सिंह का यह व्यवहार किसी की समझ में न आया । मञ्च से उठ कर राजा इन्द्रदेव के पास गया और इस आश्चर्य जनक व्यवहार का कारण पूछा । इन्द्रदेव ने कहा 'महाराज ! यह सिंह वह एक मात्र प्राणी है जिसे संसार में मैं अपना कह सकता हूँ । आज अपने बिछुड़े हुए स्नेही से मिल कर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ ।' यह कह कर उसने सिंह और अपनी मित्रता का सब वृत्तान्त सुनाया । वह वृत्तान्त सुन कर सब अवाक् रह गये । राजा ने तत्काल आज्ञा दी "इन्द्रदेव ! मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ और साथ ही तुम्हारा मित्र भी मुक्त किया जाता है ।"

(३)

संगठन की भावना

पांडव तेहरवें वर्ष का अपना अज्ञातवास व्यतीत कर रहे थे । दुर्योधन को जब उस स्थान का पता लगा जहां वह ठहरे हुए थे तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनको अपने राजसी ठाठ का दिग्दर्शन कराने के लिये बन प्रदेश को चल

(६२५)

दिया। मार्ग में गन्धर्वों ने उस पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके बन्दी बना लिया।

जब भीम और अर्जुन को दुर्योधन की इस दुर्दशा का पता लगा तो उनके हर्ष का पारावार न रहा और वह इस समाचार को सुनाने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये। दुर्योधन के बन्दी किये जाने के समाचार को सुन कर युधिष्ठिर चुप हो गये और गहरे श्वास लेने लगे। उनकी अवस्था को देख कर भीम और अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने पूछा, 'महाराज ! आप मौन क्यों हैं ? क्या इस समाचार से आपको दुःख हुआ है ?'

यह सुन कर युधिष्ठिर के नेत्रों में आंसू आ गये। उन्होंने गम्भीर भाव में कहा—

“अर्जुन ! मुझे इस समाचार से सचमुच दुःख हुआ है। दुर्योधन के बन्दी हो जाने से मुझे जितना दुःख हुआ है उससे कहीं अधिक दुःख मुझे हम लोगों के पतन से हो रहा है। क्या इस समाचार में प्रसन्न होने की कोई बात है ?” यह कहते २ वे रुक गये। पुनः तीव्र स्वर में बोले—

‘पार्थ ! दुर्योधन और हम में शत्रुता है। इसके नाते हम ५ और वे १०० हैं परन्तु किसी तीसरे शत्रु के मुकाबले में हम १०५ हैं। धिक्कार है हमारे जीवन को यदि हम तीसरे शत्रु के द्वारा अपने भाइयों के पराभव को न केवल देखें और चुप ही रहें वरन् उस पर हर्ष मनाएँ।’

यह सुनकर भीम और अर्जुन ने चुपचाप महाराज युधिष्ठिर के चरणों को स्पर्श किया और अपने शिविर को चले गए।

(४)

— प्रताप के जीवन का अन्त

वीरवर प्रताप के जीवन का सायंकाल था। शत्रु द्वारा जीते हुए अपने ३२ किलों पर उन्होंने पुनः अधिकार जमा लिया था। मानसिंह के हृदय की विद्वेष की अग्नि लगभग शान्त हो चुकी थी और मुगल सम्राट् अकबर प्रताप की वीरता, कष्ट सहिष्णुता और दृढ़ व्रत पर मुग्ध हो चुके थे। मुगलों की सेना मेवाड़ से वापस बुला ली गई थी। यह सब होते हुए भी चित्तौड़ का उद्धार न कर सकने के कारण महाराणा अपने त्याग और कष्ट सहिष्णुता के व्रत पर दृढ़ थे। उन्होंने उदयपुर के निकट पिशौला सरोवर के तट पर अपनी कुदियाएँ बनाई हुई थीं और

(६२६)

वे उन्हीं में निवास करते थे। इन्हीं कुटियों से राज्य का सूत्र संचालन होता था। उन्हीं कुटियों में उनका दरबार लगता था वहीं राजकीय विषयों पर मन्त्रणा होती थी और अनेकानेक विषयों पर तर्क वितर्क और विचार होते थे। कुटियां परम पवित्र थीं। इनमें विलास की सामग्री न थी, निरर्थक शोभा का आडम्बर न था। जो था वह परम पूजनीय, परम पावन और परम अनुकरणीय था। इन कुटियों में जिस उच्च हृदय तथा उदात्त विचारों का निवास था दिल्ली और आगरे के स्वर्ण जटित महलों में उसका शतांश भी दृष्टिगोचर न होता था।

एक बार पिशौला सरोवर के तट पर बनी हुई इन भोंपड़ियों में से एक में महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह जा रहे थे। भोंपड़ी नीची थी। अमर सिंह की असावधानी के कारण उनकी पगड़ी एक बांस से अड़ी और भूमि पर गिर पड़ी। अमर सिंह तिल मिला उठे और वे उसी समय उदयपुर के राजमहल को लौट गए। प्रताप सिंह यह दृश्य देख रहे थे। अपने पुत्र के इस व्यवहार से उन्हें बड़ा दुख हुआ और उनकी आंखों में आंसू आ गए। उनके हृदय में यह आशंका हुई कि अमर सिंह अपने गौरव की रक्षा न कर सकेगा। बस इस घटना ने प्रताप के हृदय पर बड़ा गहरा धक्का लगाया। एक तो चिन्ताओं और कष्टों से उनका शरीर क्षीण पहले से ही था इस चिन्ता ने उनके शरीर की रही सही चेतनता को दूर कर दिया।

प्रताप मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। उनका कष्ट बढ़ रहा था। उनके विश्वस्त सरदार इस समय चारों ओर से उन्हें घेर कर बैठे हुए थे। वे क्षण २ में उनकी बदलती हुई अवस्था की आलोचना कर रहे थे उनका शरीर बराबर हिल रहा था। इस अवस्था में भी एक बार महाराणा के मुँह से बड़े जोर से 'हाय' निकली। उनकी अवस्था देखकर सरदार गए और भी कांप उठे। एक सरदार ने पूछा 'महाराणा ! क्या कारण है कि इस अन्तिम समय में आप जैसे पुण्यात्मा को इतना कष्ट हो रहा है। महाराणा की चिर निद्रा में भी अब कौन सा विषय बाधा पहुँचा रहा है।'।

महाराणा ने कष्ट से कहा 'हा ! इतने दिनों का उद्योग, इतने दिनों का परिश्रम, इतने दिनों का कष्ट सब वृथा हो गया। मुझे आशा नहीं है कि अमरसिंह अपने गौरव की रक्षा कर सकेगा। आप लोग भी अमर सिंह का साथ देंगे। वह अपनी मातृ भूमि की शत्रुओं के हाथ से रक्षा न कर सकेगा और आप लोग भी

(६२७)

उसी का साथ देंगे। इसी चिन्ता के कारण प्राण नहीं निकलते। इतना कहते २ प्रताप की आंखों में आंसू आ गए। वे व्याकुल होकर आकाश की ओर देखने लगे और धीरे २ अमर सिंह की उपर्युक्त घटना सुनाई।

इसके बाद दुर्बलतावश वे चुप रह गए फिर बोले 'मैं अपने अंतिम समय में भविष्य अच्छी तरह अपनी आंखों से देख रहा हूं। सरदार गए! अब ये भोपड़ियां न रहेंगी। इनके बदले बड़ी २ सुन्दर अट्टालिकाएँ बनेंगी और उनमें भोग की सामग्री उपस्थित होगी। अमर अपने देश की वास्तविक अवस्था को भूलकर अपनी कुलमर्यादा को त्यागकर उन अट्टालिकाओं में आनन्द करेगा। हा! जिस व्रत के लिए मैं २५ वर्षों तक जंगलों में भटकता रहा जिसके लिए अपने सब प्रकार के सुखों को तिलाञ्जलि दे दी, जिसके लिए मैंने अपने देश को मरुभूमि में परिणत किया, अमरसिंह द्वारा उसकी रक्षा न होगी। अमर सुखों में कर्तव्य को भूल जायगा और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप लोग भी उसका ही साथ देंगे। बस मुझे यही दुख इस अन्तिम समय में शान्ति प्राप्त नहीं करने देता।'

इतना सुनते ही सब सरदार एक स्वर से बोल उठे 'हम लोग प्रतिज्ञा करते हैं कि महाराणा जिस व्रत का उच्चापन किए बिना ही त्यागकर चले जाते हैं उसको हम लोग अक्षरशः पालन करेंगे और अमरसिंह को कदापि पथभ्रष्ट न होने देंगे।

इतना सुनते ही आकाश का एक प्रबल नक्षत्र टूट पड़ा और प्रताप अनन्त की गोद में विलीन हो गए।

—खुनाथ प्रसाद पाठक

ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए

आर्य सेवक

ॐ के ॐ

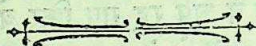
ग्राहक बन कर

तन, मन, धन वैदिक धर्म सेवा निमित्त प्रदानकर पुण्य के भागी बनिये। प्रत्येक संस्था को जीवित रखने के लिये अपना मुखपत्र चलाना आवश्यक है।

वार्षिक मूल्य २)

मैनेजर—आर्य-सेवक, कार्यालय, सदर बाजार, नागपुर।

आर्य समाज की चिनगारियाँ



सत्य

लाला गंगाराम जी गुड्स क्लर्क आजकल अमृतसर में रहते हैं। आपका जन्म जिला गुजरां वाला में हुआ था। आपने रेलवे की नौकरी की थी। नौकरी के समय में आप पर अनेक संकट आये आपने उनको हंस कर भेला। आप रेलवे में नौकर होते हुए भी किसी अधीन सेवक से जो स्टेशन पर नौकर होते हैं कोई काम न लेते थे। किसीसे जल न मंगवाते थे किसी से सामान न उठवाते थे जो बिना टिकट आया आप उसको छोड़ते भी न थे।

एक बार आप कोटा की ओर थे। मैनेजर की धर्मपत्नी सखियों सहित गाड़ी से उतरीं। आपने टिकट मांगा उसने कहा फिर दिखा दूँगी आपने विश्वास कर लिया और वह सायंकालको बिना टिकट दिखाए लौट गई, कुछ मास पश्चात् वह उसी प्रकार सैर करने को फिर आ गई आपने फिर टिकट माँगा आपने फिर टाल दिया। आपने रिपोर्ट करदी कि यह देवी अपनी सहेलियों सहित फर्स्ट क्लास के डिब्बे में पहले आई और अब आई इसने न पास दिखाया न टिकट दिया। क्या इसको इस प्रकार आने की आज्ञा है। रिपोर्ट का होना था कि वहां खलबली मच गई आपको धमकाया गया आपने धैर्य से कहा आप आज्ञा दे दें मैं न पूछूँगा अन्त में मैनेजर महोदय ने किराया दिया और आपकी बदली चमन के पास करदी गई।

एक बार आपसे लायन क्लीयर देने में बड़ी भूल हो गई आपको उस भूल का ज्ञान भी न हुआ। अन्त में पता लग गया और आपसे उत्तर माँगा गया स्टेशन मास्टर ने आपसे उत्तर लिखने को कहा आपने दूसरे दिन उत्तर लिखा और उसमें साफ लिख दिया कि मुझ से भूल हो गई है इस भूल का परिणाम भयानक हो सकता था ईश्वर की दया है कि कोई दुर्घटना नहीं हुई। मुझे दुःख है कि मुझ से भूल हो गई। मुझे इस भूल के बदले में जो दण्ड दिया जायगा मैं उसे प्रसन्नता से स्वीकार करूँगा। मुझे उसमें कोई दुःख न होगा, जब स्टेशन मास्टर ने उसे पढ़ा तो कहा क्या नौकरी से पृथक् होने की इच्छा है। उत्तर दिया नहीं, तब उन्होंने कहा इस उत्तर से तो आप डिसमिस होंगे। तब उन्होंने कहा, सत्य

(६२६)

तो यही है और क्या लिखूँ। उन्होंने कहा और कुछ लिखो, आप कागज को ले गये और दूसरे दिन वही उनको देकर कहा मेरी आत्मा और लिखना नहीं मानती जो सत्य है वह लिख दिया है। जो कुछ होगा वह भुगतना होगा, स्टेशन मास्टर ने वह भेज दिया। जिस समय आफीसर ने वह पढ़ा तो उसे फायल कर दिया और इनको कोई भी दण्ड न दिया। किसी ने आफीसर से कहा, आपने बड़ा अपराध होने पर इसे क्यों छोड़ दिया। उसने कहा, मैं वर्षों से काम करता हूँ आज तक किसी व्यक्ति ने भी इस प्रकार साफ़ २ स्वीकार नहीं किया, जैसे इन्होंने किया है इसी कारण इनको कोई दण्ड नहीं दिया गया। उसके पश्चात् उनके सत्य-भाषी होने की चर्चा रेलवे में आम हो गई।

अन्त में उनको अमृतसर के स्टेशन पर लगाया गया और उनके सत्यभाषी, सत्यमानी, सत्यकर्ता होने के कारण उनको अमृतसर स्टेशन पर माल चढ़ाने और उतारने का ठेका भी दिया गया। वह लेना न चाहते थे और कहते थे इसमें घाटा होगा। आफीसर ने कुछ अधिक देकर उनको ठेका दिया। जब साल समाप्त हो गया तो आपने आफीसर से कहा अधिक की आवश्यकता नहीं जैसा और ठेकेदार लेते थे वैसा ही दिया जाय उसी से निर्वाह हो जायगा। मैं प्रथम ठेकेदारों की बातों के आधार पर कहता था कि घाटा होगा और अब काम करने से पता लगा कि उनका कथन ठीक न था।

इस प्रकार आपका सत्य पर अटल विश्वास था और सत्य ने उनकी संकट में भी रक्षा की।

सत्य

स्वर्गीय डा चिरंजीव भारद्वाज जी आर्य समाज के मुख्य कार्य कर्ताओं में से एक थे। वह आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री पद पर रहे उस समय उन्होंने आर्य भाषा में सभा के कार्यालय का सब कार्य लिखना और लिखवाना आरम्भ किया। आप एक समय आर्य समाज बच्छोवाली (लाहौर) के प्रधान थे उस समय जब आर्य समाज का उत्सव हुआ तो अपील के पश्चात् कोषाध्यक्ष ने आपको रिपोर्ट की कि धन इतना जमा हुआ है आपने उसकी घोषणा की कि उत्सव पर इतना धन जमा हुआ है। सायंकाल को जब आप हिसाब देखने लगे तो पता लगा कि उस जोड़ में कुछ ऐसा धन भी सम्मिलित है जो वास्तव में उत्सव का इस साल का चन्दा नहीं है जैसे कोई पिछले साल में वचन दिया गया वह इस साल में

(६३०)

आकर अब प्राप्त हुआ और कुछ धन जो शतांश का था इसमें जमा हो गया है। आपने रात को उत्सव में फिर घोषणा की कि सायंकाल को जो मैंने धन की घोषणा की थी वह ठीक न थी वास्तव में धन उससे न्यून है और ठीक-ठीक राशि बता दी।

तब आर्य समाजियों ने आप से कहा प्रधान जी आपने ठीक नहीं किया जब घोषणा हो चुकी थी अब चुप रहना ही ठीक था आपने धन घटा कर समाज के काम को लाभ नहीं पहुंचाया। आपने उत्तर दिया अब तो जनता यही कह सकती है आर्य समाज के उत्सव पर धन न्यून हुआ है यदि मैं ठीक २ न बताता तो जनता यह कहती आर्य समाज का प्रधान झूठ बोलता है मैं आर्य समाज के प्रधान को झूठा कहने की अपेक्षा धन न्यून होना अच्छा मानता हूँ।

इसका उत्तर आर्यों के पास भी कुछ न था।

आप जैसे सत्य प्रेमी थे उसका दूसरा परिचय न्यायालय में मिला जब उनके वकील ने कहा आप ऐसा कहें आपने कहा जो सत्य है मैं वही कहूँगा उसके उल्टा न कहूँगा। न्यायाधीश ने अपने कैसले में उनके सत्य भाषण की भूरि २ प्रशंसा की थी।

आपने अपनी सन्तान के नाम, सत्य व्रत, सत्य काम, सत्यवती, सत्य निष्ठा रखा जिसमें से सत्यवती का बाल्यावस्था में देहान्त हो गया था शेष तीन संतानें आज कल देहली में हैं।

—स्वतन्त्रानन्द

महात्मा नारायण स्वामी जी की

उपनिषदों की टीका का संग्रह

उपनिषद् प्रेमियों के लाभार्थ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरेय उपनिषदों का संग्रह एक ही जिल्द में तैयार कर दिया गया है। मूल्य १।=॥

मिलने का पता :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

देशीराज्य और आर्यसमाज

[देशी राज्यों में आर्य समाज की कठिनाइयों, आर्य भाइयों के कष्टों तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उत्तरदायित्व को जिसके कार्यक्षेत्र में अधिकांश देशी राज्य हैं हम भली भाँति अनुभव करते हैं। उसे हम केवल यह विश्वास दिला सकते हैं कि आर्यसमाज के कार्य को सुगम और प्रशस्त बनाने के लिए उसके यत्नों में जो उसने व्यवस्थितरूप में आरम्भ किये हुए हैं समूचे आर्य जगत की सहानुभूति और आवश्यक सहायता उसे प्राप्त रहेगी।

—सम्पादक सार्वदेशिक]

आर्य प्रतिनिधि सभा के वृहदधिवेशन में इस वर्ष देशी राज्यों के विषय में काफी चर्चा रही। स्थान स्थान के देशी राज्य निवासियों ने अपनी २ कष्ट कथाएँ सुनाई। सबसे बुरी हालत मुसलमानी रियासतों में रहने वाले हिन्दुओं की है। सीहोर (भूपाल) में जो वहाँ के आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं पर कसाइयों ने घातक आक्रमण किया उसकी तहमें यह बात थी कि वहाँ के आर्यों ने एक हिन्दू बालक की, जिसको मुसलमानों ने बहकाकर मुसलमान बना लिया था, शुद्ध करके पुनः हिन्दू बना लिया था। इसी से चिढ़कर मुसलमानों ने हमला बोल दिया। मुसलमानी रियासतों में नवाब लोग आर्य समाज को फूटी आंख भी नहीं देखना चाहते हैं, अतः वहाँ पर आर्य समाज का प्रचार होना अत्यन्त कठिन है। इधर कई हिन्दू राजाओं की यह हालत है कि वे अपनी शेखी और शान इसी में समझते हैं कि लोग उनको निष्पक्ष कहें और इस निष्पक्षता को बताने के लिये वे हिन्दुओं की उचित मांगों को भी ठुकरा देते हैं और मुसलमानों को हिन्दुओं के अधिकार छीनकर दे देते हैं। कई राजा हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के बनिस्वत अपने देशी नरेशों की विरादरी को अधिक निकट समझते हैं। हैदराबाद आन्दोलन के समय में कई हिन्दू देशी रजवाड़ों ने अपने यहां से सत्याग्रही जत्थे वगैरह जाने में रोक थाम की। इसका मुख्य कारण यही था कि वे कहते थे कि हैदराबाद रियासत एक देशी रजवाड़ा होने के कारण हमारे निकट हिन्दुओं से भी अधिक है। अतः हम उनकी सहायता करेंगे, हिन्दुओं की नहीं। इन हिन्दू रजवाड़ों को हिन्दुओं ने ही हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिये बनाया था परन्तु बात अब उल्टी हो गई है। इन रजवाड़ों ने हिन्दुओं और हिन्दू संस्कृति के प्रति उपेक्षा-

(६३२)

वृत्ति धारण करली है। मुसलमान रजवाड़े तो अपनी मुस्लिम प्रजा को संरक्षक मान उनको प्रोत्साहन देते रहते हैं। परन्तु हिन्दू रजवाड़ों ने हिन्दू प्रजा को अपना संरक्षक मानना छोड़ दिया है। इन रजवाड़ों ने पोलिटिकल डिपार्टमेंट को ही अपना संरक्षक मान लिया है और वह जैसे इनको नचाता है वैसा ही नाच नाचने लगते हैं। यह अपने निज की हानि लाभ पर कोई विचार नहीं करते। अगर पोलिटिकल रेजीडेण्ट का इशारा हो गया है कि आर्यसमाज खतरनाक वस्तु है, इसको नहीं बढ़ने देना चाहिए तो बस यह अपनी सारी ताकत आर्यसमाज के बल की हानि में लगा देंगे। हाल में ही राजस्थान की कुछ रियासतों में एक नया कानून जारी हुआ है जिसका नाम "पब्लिक सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट" है, इस एक्ट के अनुकूल जिस संस्था की रजिस्ट्री न कराई उस संस्था को गैरकानूनी घोषित करके यह देशी रजवाड़े बन्द कर देंगे, लेकिन इस कानून में धार्मिक मन्दिर, मस्जिद और गिरजे नहीं आते। आर्यसमाज ने यही कहा था कि जिस प्रकार मन्दिर, मस्जिद और गिरजों की रजिस्ट्री नहीं हो सकती उसी प्रकार आर्यसमाज मन्दिरों की भी रजिस्ट्री नहीं होनी चाहिये। इसका उत्तर देशी राज्य के दीवानों ने यह दिया कि तुम्हारे यहां मन्त्री प्रधान और अन्तरंग सभा आदि होती है इसलिये यह सभा है मन्दिर नहीं। अतः तुम्हें रजिस्ट्री कराना पड़ेगा। इसका उत्तर आर्यसमाज की ओर से यह दिया गया कि यह तो कोरा प्रबन्ध के नाम में भेद है। मन्दिर वाले कहते हैं कि मन्दिर का प्रबन्ध अमुक महन्त या उसका चेला या उसका नियत किया हुआ पुजारी करेगा। मुसलमान यह कहते हैं कि हमारी मस्जिद का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ मुल्ला करेगा। ईसाई यह कहते हैं कि हमारे गिरजे का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ पादरी करेगा। इसी प्रकार आर्यसमाजी यह कहते हैं कि हमारे मन्दिर का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ मन्त्री करेगा। हम पूछना चाहते हैं कि आर्यसमाज ने ही कौनसा जुल्म किया है जो मन्दिर, मस्जिद, गिरजों की तो रजिस्ट्री नहीं कराई जाती और आर्यसमाज की रजिस्ट्री पर जोर दिया जाता है ? आर्यसमाज का इतिहास त्याग, तप और बलिदान का इतिहास है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने देशी राजाओं को अपना शिष्य बनाया क्योंकि वह जानते थे कि इनके द्वारा हिंदू जाति की रक्षा हो सकती है। यह आर्य समाज का ही प्रताप है कि आर्यसमाज ने अपने भजनों और व्याख्यानों द्वारा देशी राजाओं के पूर्वज—जैसे राम, कृष्ण,

(६३३)

शिवाजी, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौर, भांसी की महारानी, छत्रसाल आदि महाराजाओं के गुणगान कर देशी रजवाड़ों की प्रतिष्ठा बढ़ाई। अतः इन देशी राजाओं को आर्यसमाज का कृतज्ञ होना चाहिये और आर्यसमाज को अपनी संस्था समझकर इसके हर एक कार्य में सहयोग देना चाहिए। परन्तु यहां तो बात ही उल्टी चल रही है। और बजाय इसके कि आर्यसमाज के कार्यों में सहयोग दिया जावे हर प्रकार से मार्ग में रोड़े अटकाये जाते हैं।

सिरोही राज्य का वृत्तान्त

सिरोही राज्य का वृत्तान्त ले लीजिए। यहां पर केवल आबूरोड में एक आर्यसमाज थी, सिरोही दरबार को पत्र, चिट्ठी और डेपूटेशनों द्वारा लिखते २ थक गये कि जब ईसाई मुसलमानों के लिये परमात्मा की उपासना का स्थान आप बनने देते ? और रुपये देने पर भी आर्य मन्दिर के लिये जमीन क्यों नहीं लेते देते ? परन्तु ये कोई उत्तर नहीं देते। आर्य भाइयों ने गत १५ वर्षों से रेलवे के पास जो पी० डबल्यू० डी० का किराया के लिये एक छोटा सा क्वार्टर था उसे किराया पर ले रक्खा था। और वहीं पर बैठ कर अपनी प्रार्थना और उपासना कर लेते थे। परन्तु सरकार को यह भी न रुचा और उसे भी खाली करा लिया। अब बिचारे आर्य भाई कहां मिलकर सत्संग करें ? क्या यह घोर अन्याय और धार्मिक पक्षपात नहीं ? आर्य भाई शान्ति प्रिय हैं। वे झगड़ा टंटा नहीं करना चाहते। इस वास्ते वारी वारी एक दूसरे के घर पर जाकर पारिवारिक उपासना कर लेते हैं। परन्तु आर्य पुरुषों को यह सोचना है कि इस तरह से काम कब तक चलेगा ? आर्य भाइयों ने रेलवे वालों से भी लिखा पढ़ी की थी कि आप रेलवे की जमीन से ही थोड़ा सा टुकड़ा दे दें जहां पर हम आर्य मन्दिर बना लें। परन्तु वहां के इञ्जीनियर साहब ने और एजेण्ट साहब ने यही उत्तर दिया कि जब तक सिरोही दरबार का हुक्म नहीं आयेगा हम जमीन नहीं देंगे और सिरोही दरबार किसी हालत में आर्यसमाज मन्दिर बनाने के हक में नहीं हैं। ऐसी दशा में हम इन देशी नरेशों को कैसे समझावें।

रचनात्मक कार्यक्रम

उपरोक्त बातों से आर्य पुरुषों को घबराना नहीं चाहिये। क्यों कि धर्म का इतिहास बलिदानों और विपत्तियों का इतिहास है। आर्य प्रतिनिधि सभा हर प्रकार के वैध उपायों द्वारा आन्दोलन कर रही है। देशी रियासतों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये एक पृथक् उपसमिति बना दी गई है। और “पब्लिक सोसायटीज एक्ट के मामले को सुलझाने के लिये दूसरी उपसमिति बना दी गई है। यह उपसमितियां बड़ी लगन से अपना कार्य कर रही हैं।

(आर्य मार्तण्ड)

श्री महात्मा नारायणस्वामी जी का

दक्षिण भ्रमण-वृत्तान्त

यह वृत्तान्त दो भागों में विभक्त होगा। पहले भाग में हैदराबाद दक्षिण का वृत्तान्त और दूसरे में मद्रास प्रान्त तथा दक्षणीय देशी रजवाड़ों का हाल होगा।

पहला भाग—

दक्षिण हैदराबाद राज्य (१७ नवम्बर से ३ दिसम्बर तक)

पहली बात जिसके लिये मुझे इस राज्य का कृतज्ञ होना चाहिये यह है कि बिना किसी के प्रार्थना किये राजकर्मचारियों ने मेरे राज्य में प्रविष्ट न होने की आज्ञा को लौटा लिया। दूसरी बात मेरे स्वागत से सम्बन्धित है। जहाँ जहाँ मैं गया वहाँ की आर्य तथा हिन्दू प्रजा ने जी खोलकर मेरा स्वागत किया और यदि मैं कहूँ कि कहीं कहीं वह सीमा का उलंघन करने वाला था तो कदाचित् अनुचित न होगा। उदाहरण के लिये तुलजापुर को लीजिए— वहाँ के आर्य भाइयों ने जुलूस के साथ मेरे बैठने के लिये चौदह बैलों की एक खुली हुई बैलगाड़ी का प्रबन्ध किया था जिसमें मेरे बैठने का स्थान सड़क से ३ गज से कम ऊँचा न होगा। सात गाड़ीवान बैलों को चलाने के लिये साथ थे। हुजूम जी साथ था उसका ठिकाना न था। लगभग ४ घण्टे तक प्रत्येक प्रकार का ट्रैफिक बन्द रहा परन्तु स्टेट की पुलिस ने जुलूस में सहायता देने के सिवा, और कोई दूसरे प्रकार की बात विचारी ही नहीं, अस्तु इस कृतज्ञता के प्रकाश करने के बाद अब मैं भ्रमण वृत्तान्त को अङ्कित करता हूँ।

हैदराबाद सिटी

मैं १५-११-४१ को देहली से चलकर १७ नवम्बर को प्रातःकाल हैदराबाद पहुँचा। स्टेशन पर श्री विनायकराव जी बैरिस्टर नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों और सहस्रों नागरिकों के साथ मिले उनके साथ मैं प्रस्तावित निवास स्थान गोपाल बाग में पहुँचा।

हैदराबाद में प्रचार

शहर में ६ जगहों पर नियम पूर्वक व्याख्यान और उपदेश दिये गये।

- (१) देवीदीन बाग अ० स० सुलतानपुर बाज़ार।
- (२) आर्य समाज शालीग्रहडा।
- (३) आर्य समाज चन्द्रिकापुर (हुसैनी आलम)।
- (४) ” ” धूलपेठ।

(६३५)

(५) आर्य समाज गोशा महल ।

(६) ,, ,, सिकन्दराबाद (एक विशाल मैदान में) ।

निम्न संस्थाओं का निरीक्षण किया गया—

(१) कैशव मेमोरियल स्कूल ।

(२) प्राथमिक हिन्दी पाठशाला धूलपेठ ।

(३) अनाथालय आर्य समाज किशन गंज ।

(४) लड़कों का गुरुकुल—एक मन्दिर के समीप ।

(५) केशव स्कूल के लिये प्रस्तावित स्थान ।

अन्य कार्य

(१) आर्य समाज सुलतान बाजार में दो व्यक्तियों ने वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया ।

(२) आर्य समाज चन्द्रिकापुर के मन्दिर का उद्घाटन किया गया ।

(३) धूलपेठ के अभियुक्तों के परिवारों की सहायता कई मास से रुकी हुई थी । प्रसन्नता की बात है कि लिखने पर सार्वदेशिक सभा के मन्त्री जी ने सहायता पुनः जारी कर दी ।

(४) आर्य समाज धूलपेठ के मन्दिर के लिये २०००) की जरूरत है । सार्वदेशिक सभा को लिखने पर ज्ञात हुआ कि समाज ने अपेक्षित फार्म की खाना पूरी करके नहीं भेजी है । पं० नरेन्द्र जी को फार्म शीघ्र भिजवा देने के लिये सूचना दे दी है । विश्वास है अंग फार्म भरकर सभा के कार्यालय में आ गया होगा और सभा से अपेक्षित धन भेज दिया गया होगा ।

(५) आर्य समाज शालीबगडा ने मन्दिर के लिये एक मकान क्रय कर लिया है । मकान के पाटने के लिये ५००) धन प्रेरणा करने पर सभा ने देना स्वीकार कर लिया है । विश्वास है इससे पटाई का काम पूरा हो जावेगा और यदि कुछ कमी पड़ी तो समाज के सभासद् और सहायक उसकी पूर्ति कर लेंगे ।

हैदराबाद को छोड़ते हुए जो प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा है वह यह है कि शहर के आर्य और हिन्दुओं में दिन प्रति दिन जाग्रति बढ़ती जा रही है और सत्याग्रह के परिणाम से प्रायः सभी समझने लगे हैं कि उनका सिर ऊँचा हो गया है और आम तौर से हिन्दू जनता में आर्य समाज के लिए प्रेम और श्रद्धा का भाव पैदा हो गया है ।

आर्य समाज सूर्यापेठ

हैदराबाद से मोटर के रास्ते से ८० मील के फासिले पर सूर्यापेठ तिलंगाने में है । वहाँ पहुँच कर उपदेश दिया गया । यहाँ के आर्य सजन सम्पन्न और उत्साही हैं । उन्होंने

(६३६)

एक विशाल आर्य मन्दिर क्रय कर रक्खा है और उत्साह से सब कार्य करते हैं ।

सूर्यापेठ से लौटते हुए राइन गोड ग्राम के निकट एक प्राचीन शिव मन्दिर है । जिसमें पत्थर की खुदाई का अत्यन्त बारीक काम हुआ है और दर्शनीय है ।

आर्य समाज निज़ामाबाद

हैदराबाद से निज़ामाबाद रेल के रास्ते पर है । २२-११-४० को प्रातः साढ़े छः बजे चल कर १२ बजे दिन के निज़ामाबाद गाड़ी पहुँचती है । इसी गाड़ी से मैं निज़ामाबाद पहुँचा ।

यहाँ एक गोशाला है जिसका अच्छा प्रबन्ध है और व्यवसायिक ढंग से चलाई जाती है । शाला के प्रबन्ध कर्ताओं की इच्छानुसार उसे देखा गया । गोशाला के साथ फलों की एक बाटिका भी थी । सभी प्रबन्ध गोशाला का अच्छा प्रतीत हुआ ।

रात्रि में समाज की ओर से संगठित एक विशाल सभा में व्याख्यान दिया गया । दूसरे दिन २३-११-४० को प्रातःकाल रेडी बोर्डिङ्ग हाउस में जाकर विद्यार्थियों को उपदेश दिया गया । उसके बाद समाज के मैदान में आकर दयानन्द अनाथालय का उद्घाटन किया गया और भण्डा फहराने के बाद व्याख्यान दिया गया । तीसरे पहर ३ बजे के बाद चल कर रात को ८ बजे हैदराबाद पहुँच कर विश्राम किया ।

आर्य समाज उदगीर

हैदराबाद से प्रातःकाल चलकर ५॥ बजे सायंकाल उदगीर पहुँचा शरीर शिथिल सा हो गया और कई घण्टे तक थकान रहा । रात्रि में आर्यसमाज की वृहद् सभा में व्याख्यान दिया गया । यहाँ के नवयुवक बड़े उत्साही हैं । आर्य समाज का नगर पर अच्छा प्रभाव है । दूसरे दिन प्रातःकाल दूसरा व्याख्यान देकर अहमदपुर के लिये मोटर से यात्रा की गई ।

आर्य समाज अहमदपुर

उदगीर से १ बजे दिन के चलकर सायंकाल ५ बजे अहमदपुर पहुँचे, टाउन हाल में ठहरने का प्रबन्ध था । वहाँ ठहरकर कुछ आराम किया । रात्रि में नगर की विशाल सभा में व्याख्यान दिया । अहमदपुर से दूसरे दिन चलकर रास्ते में आर्यसमाज चाकूर और एक और ग्राम में ठहरे और वहाँ की सभाओं में संक्षिप्त से व्याख्यान देकर लातूर के लिए यात्रा की गई ।

आर्य समाज लातूर

अहमदपुर से चलकर सायंकाल लातूर पहुँचे । नगर से बाहर अनेक आर्य भाई अच्छी खासी भीड़ के साथ उपस्थित थे उनके साथ नगर कीर्तन करते हुए निवास स्थान

(६३७)

पर पहुँचे । रात्रि में नियत स्थान पर व्याख्यान दिया गया । सभा का स्थान बड़ा और जन समूह से भरा हुआ था ।

दूसरे दिन प्रातःकाल फिर उसी स्थान पर दूसरा व्याख्यान देकर कलम के लिए यात्रा की गई ।

आर्य समाज उस्मानाबाद

कलम के रास्ते में उस्मानाबाद पड़ता है । वहाँ पहुँचते ही उस्मानाबाद के आर्य भाइयों ने सड़क पर रोक लिए प्रसन्नता और अप्रसन्नता के साथ दो घण्टे वहाँ ठहरना पड़ा वहाँ के लोगों ने उचित रीति से शिकायत की कि उनका स्थान प्रोग्राम में क्यों नहीं रखा गया । उनसे आगे के लिए ध्यान रखने का वादा किया गया बहुत से नगर के प्रतिष्ठित वकील तथा अन्य सज्जन भी आ गए थे उनसे उपयोगी बात चीत करने के बाद कलम के लिए यात्रा फिर जारी की गई ।

आर्य समाज कलम

२८ नवम्बर की सायंकाल कलम पहुँचे । रास्ते के अन्त में वर्षा होने लगी थी इस-लिए भीगते भागते नगर में पहुँचे । वहाँ प्रत्येक प्रकार के आराम का प्रबन्ध था इसलिए कुछ दिक्कत नहीं उठानी पड़ी ।

कलम आर्य समाज का बड़ा केन्द्र है । यहाँ एक अच्छी कन्या पाठशाला है जिसमें १०० से अधिक कन्यायें शिक्षा पाती हैं । एक उत्तम कोटि की व्यायाम शाला है जिसमें लकड़ी, लेजम, तलवार के अलावा अन्य प्रचलित व्यायाम और कुश्तीके खेल सिखलाये जाते हैं । यह सभी कृत्य मुझे दिखलाए गए और मुझे इस उन्नत व्यायाम शाला को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । इस केन्द्र के आधीन ५० रात्रि पाठशालायें ग्राम निवासियों में शिक्षा प्रसार के लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर खुली हुई है । कई उपदेशक इस केन्द्र की ओर से निरन्तर आस पास प्रचार करते रहते हैं यहाँ के कार्य विस्तार के कारण मुझे यहाँ ३ दिन ठहरना पड़ा । यहाँ दो बड़ी सभायें दो बड़े बड़े स्थानों पर की गईं एक कलम नगर निवासियों के लिए दूसरी दूर २ से आए हुए कृषकों तथा अन्य ग्राम निवासियों के लिए । दोनों में श्रोतृवर्ग के अनुरूप उपदेश दिया गया । यह नगर आर्य समाज के कार्य विस्तार के कारण आर्य नगर सा प्रतीत होता है । इस सब कार्य का श्रेय श्रीयुत कथले जी को है जो एक व्यापारी थे और जिन्होंने अपना समस्त कार्य छोड़कर केवल आर्य समाज के काम के लिए अपने को अर्पण कर रखा है । उनके इन सभी कार्यों में आर्थिक सहायता देने को दो व्यापारी सज्जन हैं उनमें से एक मारवाड़ी सज्जन के यहाँ ठहरा था । मुझे यह देखकर

(६३८)

बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके छोटे छोटे बच्चे नित्य प्रति मिलकर संध्या और हवन करते हैं।

एक आवश्यक बात

कथले जी ने जो गरीबी का जीवन अपनाया है उसका फल यह हुआ कि उनका लड़का शिक्षा से प्रायः वंचित सा हो रहा था। वह गुरुकुल वृन्दावन में पढ़ता था और मासिक भोजनादि व्यय न दे सकने के कारण घर वापिस चला गया था। मैंने बालक को बुलाकर उससे बात चीत की और एक चिट्ठी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जी के नाम लिखकर कथले जी को दे आया था कि वे इस चिट्ठी के द्वारा बालक को फिर गुरुकुल भेज दें।

(३) कथले जी को १२) मासिक देने पड़ते थे। मैंने उस समय इस धन का प्रबंध यह किया था कि जब तक उसका कुछ प्रबन्ध न हो जावे उस समय तक ६) मासिक मैं किन्हीं से भिजवा दिया करूँगा और बाकी ६) आर्य्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य दे दिया करे। मेरे पास अभी तक कोई सूचना नहीं आई कि वह बालक गुरुकुल पहुँचाया गया या नहीं इसलिए मैंने ६) भिजवाने का कुछ प्रबन्ध नहीं किया।

इस सम्बन्ध में मेरी सम्मति यह है कि यदि सम्भव हो तो सार्वदेशिक सभा दक्षिण प्रचार निधि से उस बालक की शिक्षा का प्रबन्ध कर देवे। यदि वह बालक गुरुकुल न जाना चाहे तो उसी ओर किसी स्कूल में उसके पढ़ने का प्रबन्ध कर देना चाहिये।

आर्यसमाज तुलजापुर

कलम से १-१२-४० को ११ बजे दिन के, तुलजापुर के लिये प्रस्थान किया गया। तुलजापुर इस ओर प्रसिद्ध तीर्थ है और उसकी प्रसिद्धि एक प्राचीन देवी के मन्दिर से है। जिसके लिए कहा जाता है कि शिवा जी प्रत्येक बड़ा कार्य इस देवी के दर्शन के बाद किया करते थे। अस्तु इस समय यहाँ आर्य्य समाज का बोलवाला है। हम लगभग १२ बजे दिन के तुलजापुर के निकट पहुँच गये थे। बाहर ही बहुत से आर्य्य भाई मिले और उन्होंने एक वाटिका में बाहर ही कुछ देर वहाँ ठहरने का प्रबन्ध कर दिया था। वहाँ भोजनोपरान्त कुछ विश्राम किया ४ बजे दिन से वही १४ बैलगाड़ी वाला जलूस प्रारम्भ हुआ और सायंकाल, रास्ते में उस प्रसिद्ध देवल को देखते तथा उसके भीतर जाकर उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक देवी की मूर्ति को देखते हुए, निवास स्थान पर पहुँचे। रात्रि में एक बड़ी विशाल सभा में जिसमें लाउड स्पीकर का प्रबन्ध था व्याख्यान दिया गया।

२ दिसम्बर को ३ बजे दिन के तुलजापुर से चल कर ४॥ बजे सायंकाल शोलापुर पहुँचे। वहाँ पं० वंशीलाल जी ने मेरे ठहरने का प्रबन्ध डाक्टर जी० एल० दत्ता प्रिन्सिपल डी० ए० वी० कालिज शोलापुर के बंगले पर किया था।

(६३६)

आर्यसमाज शोलापुर

शोलापुर २ और ३ दिसम्बर को हम ठहरे थे। एक व्याख्यान कालिज के विद्यार्थियों के लिए कालिज के लेक्चर हॉल में दिया गया और दूसरा २ दिसम्बर की रात्रि को तिलक चौक में दिया गया।

शोलापुर के निवास काल में पं० वंशीलाल जी आदि सजनों के साथ आर्यसमाज मन्दिर के लिए दो स्थान देखे गये जिन्हें पहले से तजवीज किया हुआ था।

(१) यह स्थान था जिसमें कुछ छोटी २ खपरेलें पड़ी हुई थीं जैसे और किराये पर उठी हुई थीं जिसका ३०) मासिक किराया आता था। यहां मन्दिर बनाने के लिए इन सब को तोड़कर नये सिरे से मन्दिर बनाना पड़ता। इस भूमि का मूल्य ११०००) बतलाया गया।

(२) दूसरे स्थान में अच्छे अच्छे कुछेक मकान बने हुए थे जिनका मासिक किराया ७०) मिल रहा है। इसमें इनके सिवा कुछ मकान टूटे पड़े हुए हैं। यदि उन्हीं में आर्य मन्दिर बनाया जावे जो तीन मंजिल का अच्छा खासा मकान ६ या ७०००) की लागत से बन सकता है। ये सब १३०००) को मिलेगा।

ये दोनों जगह शहर के बीच में हिन्दुओं के मुहल्लों में हैं। मेरी सम्मति दूसरे स्थान के लिये है कि वह ले लिया जावे। बीस हजार रुपये खर्च करने से मन्दिर भी बन जायगा और ७०) मासिक की आय भी बनी रहेगी। यह मानो २० हजार का एक प्रकार का investment ही होगा। इसलिए इसे शीघ्रता से ले लेने की आवश्यकता है।

×

×

×

यहाँ हैदराबाद राज्य का मेरा भ्रमण समाप्त होता है। पं० दत्तात्रेय प्रसाद जी वकील इस भ्रमण में बराबर मेरे साथ रहे और उन्होंने प्रत्येक सम्भव आराम मुझे देने का बराबर यत्न किया जिसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

स्टेट के इस भ्रमण से यह बात स्पष्ट हो गई कि स्टेट के लोग अब आर्यसमाज से भगड़ा नहीं करना चाहते और आर्यसमाज के प्रचार में बाधा भी नहीं डालना चाहते। परिणाम स्वरूप आर्यसमाज स्टेट में बराबर वेग के साथ बढ़ रहा है।

३ दिसम्बर की रात मैं मद्रास एक्सप्रेस से मैं मद्रास चला गया। पं० दत्तात्रेय प्रसाद जी अपनी इच्छानुसार मद्रास तक गए थे वहाँ से हैदराबाद लौट आए।

(६४०)

मद्रास प्रान्त—**मद्रास शहर**

४ दिसम्बर को सायंकाल ५॥ बजे मैं मद्रास सेंट्रल स्टेशन पर पहुँचा। स्टेशन पर पं० केशवदेव जी ज्ञानी तथा शर्मा जी, आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुष मिले। उनके साथ निवास स्थान पर पहुँच कर विश्राम किया गया। ६ दिसम्बर से प्रचार का कार्यक्रम था। इसलिए ५-१२-४० का खाली दिन मद्रास की सैर करने में खर्च किया गया और निम्न-स्थान देखे गए—

(१) **दक्खन हिन्दी प्रचार कार्य**—मद्रास में हिन्दी प्रचार की छोटो सी एक बस्ती बन गई है जिसमें अनेक निवास स्थान, छापाखाना, प्रकाशन गृह, पुस्तकालय, वाचनालय तथा कार्यालय आदि सम्मिलित हैं। यह सभा हिन्दी प्रचार का बड़ा उपयोगी काम कर रही है। अनेक जगह इसके उपदेशक काम करते हैं। अनेक शाखायें हैं अनेक परीक्षायें तथा उसके केन्द्र हैं।

(२) **थियोसोफिकल सोसाइटी अड्यार**—यह कौलीनी संसार का समस्त सोसाइटियों का केन्द्र है। इसका प्रकाशन गृह प्रसिद्ध है। पुस्तकालय भी अच्छा है। इमारतें अच्छी बनी हुई हैं। यहाँ एक बड़ का प्रसिद्ध पेड़ है जिसकी ऊपर से आई हुई शाखायें भूमि के भीतर चली गई हैं और Pillars के ढंग की मालूम होने लगी है। बड़ी बड़ी सभायें इस वृक्ष के नीचे होती हैं। आयु की दृष्टि से यह पेड़ दुनिया में दूसरे दर्जे का समझा जाता है।

(३) **Eliot Beach**—मद्रास के समुद्र के किनारे इसलिए प्रसिद्ध हैं कि वे किनारे ही से इतने गहरे हैं कि बड़े बड़े जहाज उन किनारों तक आ जाया करते हैं।

(४) **मछली भवन (Aquarium)**—यहाँ सैकड़ों प्रकार की मछलियाँ हैं। एक मछली है जिसका घोड़े का सा मुँह है और जिसे sea horse कहते हैं।

बाबू जगन्नाथप्रसाद कन्या पाठशाला

६ दिसम्बर को मद्रास से १०-१२ मील के फासले पर बाबू जगन्नाथप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य समाज मद्रास ने अपनी कोठी बनाई है और उसी के पास यह पाठशाला है। पाठशाला अच्छी हालत में है।

गुजरात संघ लोअर फोर्ट (lower fort) में गुजरात निवासियों ने अपना एक संघ बना रखा है। उसी संघ की ओर से रात्रि में व्याख्यान दिया गया।

७ दिसम्बर को निम्न स्थानों पर व्याख्यान दिए गए—

(६४१)

(१) हिन्दुस्तानी हितैषी मंडल की ओर से Vallabha Agraharam, Triplicane में ।

(२) आर्य समाज पालियन थोप की ओर से Kulti Thambran St. Parambur में ।

८ दिसम्बर को आ० स० चाइना बाजार में प्रातः १० बजे दिन के व्याख्यान दिया गया ।

सायंकाल को Triplicane में एक आर्य कान्फ्रेंस का उदघाटन करते हुए व्याख्यान दिया गया ।

सायंकाल पं० धर्मदेव जी आगए रात्रि में उनके साथ बंगलौर के लिए यात्रा की गई ।

बंगलौर

प्रातः ६॥ बजे बंगलौर पहुँचा । स्टेशन पर बंगलौर के अनेक आर्य भाई मिले । बंगलौर छावनी समाज के प्रधान श्री शंकर राव जी वकील की कोठी में ठहरे ।

(१) दिन में स्त्री समाज में शंका समाधान का समय था । अनेक देवियों ने प्रश्न किए, उन्हें उत्तर दिए गए । इन देवियों को बड़ी चिन्ता जो इनके प्रश्नों से प्रकट हुई यह थी कि आर्या बनने से पहले जो वे राम नामादि का जप करती रही थीं कहीं वह सब अकारण तो न जायगा ।

(२) रात्रि में अ० स० बंगलौर छावनी की ओर से टौन हाल में व्याख्यान दिया गया ।

(३) १० दिसम्बर को प्रातःकाल सिटी आर्य समाज बंगलौर के मन्दिर में व्याख्यान दिया गया ।

(४) रात्रि में वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस के बड़े हाल में व्याख्यान दिया गया ।

(५) श्रीयुत हरनामदास कपूर की माता जी ने १००) सार्व० सभा के बेद प्रचार निधि के लिए दान दिए ।

(६) ११ दिसम्बर को प्रातःकाल गुरुकुल केनरी में जाकर ब्रह्मचारियों तथा ग्राम निवासियों को उपदेश दिया गया ।

(७) रात्रि में National High School के हाल में Vedic ideal of life विषय पर व्याख्यान दिया गया ।

म० शंकरलाल तथा हरनामदास जी कपूर को कुछेक आवश्यक वार्ते उपासना के प्रकरण से सम्बन्धित समझाई गई ।

(६४२)

आर्यसमाज मैसूर

१२-१२-४० को प्रातः काल बंगलौर से चलकर ११॥ बजे दिन के मैसूर पहुँचे ।

आर्य समाज मन्दिर में, जो किराए का मकान था, उपनिषद् की कथा की गई । मन्दिर समाज का अपना नहीं था इसलिए उपस्थित सदस्यों का ध्यान, इस कमी की पूर्ति के लिए दिलाया । प्रसन्नता की बात है कि एक देवी ने ५००) देने का वचन देकर अन्यो को उत्साहित कर दिया और १०००) से कुछ अधिक धन के वादे उसी समय हो गए । अधि-कारियों ने विश्वास दिलाया कि अब यथा सम्भव शीघ्र मन्दिर बन जावेगा । १३-१२-४० की रात्रि में ठौन हाल में व्याख्यान दिया गया ।

खाली समय में मैसूर की सैर की गई कुछेक बातें यहां अंकित की जाती हैं :—

(१) मैसूर की संस्कृत लायब्रेरी में अच्छे-अच्छे हस्तलिखित ग्रंथ उपस्थित हैं । उनके सम्बन्ध में अनेक विद्वान् देख भाल करते रहते हैं ।

(२) एक पहाड़ी पर राजमहल जो नया बनाया गया है दर्शनीय है ।

(३) उसी पहाड़ी पर एक देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसने महिषासुर का वध किया था । मन्दिर से बाहर लगभग २५ फीट ऊँची एक मूर्ति उसी असुर की बनाई हुई है । मूर्ति अच्छी बनाई गई है । इसी असुर के नाम से इस राज्य का नाम महिषूर=मैसूर पड़ा है ।

गुरुकुल अनाथालय चंचन काटी

१४ दिसम्बर को मैसूर से ४० मील के फ़ासिले पर कार के द्वारा जाकर इस गुरुकुल को देखा गया और ब्रह्मचारियों तथा ग्राम निवासियों को उपदेश दिया गया ।

एक विशेष नोट करने योग्य बात

यह गुरुकुल एच० के० पट्टानियाह महाशय ने बड़े परिश्रम से बहुत सा धन खर्च करके चला रखा है । यह महाशय उस जाति में से हैं जिसकी आबादी ४० लाख है और जिसे उच्च जातियों ने वेद पढ़ने के अधिकार से वंचित कर रखा है । पट्टानियाह महोदय का यत्न है कि इस संस्था से कुछ संस्कृत के विद्वान् तय्यार करके भिन्न भिन्न स्थानों पर जहां २ इस जाति के लोग आबाद हैं उन्हें नियुक्त कर दें ताकि वे इस जाति के लोगों और विशेष कर बच्चों को वेद पढ़ाकर वेद पढ़ने और न पढ़वाने के भेद को दूर कर दें । उनका यह यत्न स्तुत्य और हमारी सहायभूति और सहायता का प्रात्र है । पट्टानियाह बड़े आर्य्य हैं इन्हें थोड़ी सहायता देने से इनकी समस्त जाति निकट भविष्य में आर्य्य बन सकती है जो ४० लाख की संख्या में है जैसा कि कहा जा चुका है । इसलिये मेरी सम्मति में यह विषय अधिक ध्यान देने के योग्य है ।

(६४३)

लौटते हुए मैसूर का वह प्रसिद्ध स्थान देखा गया जहां कावेरी नदी से बहुमात्रा में बिजली निकाली जाती है राज्य ने इसके निकट ही एक बड़ी सुन्दर वाटिका बना दी है जिसे वृन्दावन कहते हैं और जिसमें फव्वारों की बहुतायत है और रात्रि में बिजली की रोशनी में उनका दृश्य अपूर्व हो जाता है। इसी वाटिका में कुछेक भौदुओं ने एक कावेरी की मूर्ति पैसा बटोरने के लिये बना रक्खी है।

१५ दिसम्बर को यहां से मंगलौर के लिए यात्रा की गई।

आर्यसमाज मंगलौर

१६-१२-४० की सायंकाल ५ बजे, २४ घण्टे रेल में रहने के बाद मंगलौर पहुँचे। ६ बजे एक घण्टे के बाद ही व्याख्यान का समय था इसलिये व्याख्यान दिया गया।

नोट—अरवियनसी का किनारा और प्रकाश स्तम्भ Light house देखने योग्य है।

आर्यसमाज कारकल

१७ दिसम्बर को दोपहर बाद कारकल के लिए मोटर कार से २५ मील यात्रा की। वहां के प्रधान महोदय आगए थे इसलिए यात्रा में कोई असुविधा नहीं हुई। ५ बजे सायंकाल वहाँ पहुँचते ही आध घण्टे के बाद एक विशाल सभा में व्याख्यान दिया गया।

नोट—कारकल ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र में अंकित श्रीमती रमा बाई का जन्म स्थान है।

यहाँ का राम समुद्रम और उसके समीपवर्ती जैन मन्दिर और बाहुबल स्वामी का ४५ फीट ऊँचा statue देखने योग्य हैं।

आर्यसमाज उडपी

१८ दिसम्बर को दोपहर के बाद मोटर द्वारा ४० मील की यात्रा करके उडपी पहुँचे। उडपी माधवाचार्य का जन्म स्थान है और उनके यहाँ आठ मठ हैं। एक विद्वान् ने अपनी वक्तृत्ता में कहा कि इन मठों के केवल भोजन व्यय से एक यूनिवर्सिटी चल सकती है। यहाँ आर्यसमाज का विशाल मन्दिर और उसके साथ ही एक बड़ा अश्रुता है मन्दिर के विशाल हाल में व्याख्यान दिया गया। और एक सज्जन के यहाँ उसी समय भोज रक्खा गया था इसलिए उसमें आंशिक भाग लेकर रात्रि ही में वहाँ से चलकर कारकल वापिस आगए और वहीं विश्राम किया गया।

आर्य समाज मंगलौर

१९ दिसम्बर को प्रातःकाल बस में चल कर १० बजे दिन के फिर मंगलौर आ गये।

(६४४)

वहाँ उस दिन तीसरे पहर दो घण्टे का समय शंका समाधान के लिये रक्खा गया था। कई अच्छे सुशिक्षित विद्वान् वास्तविक जिज्ञासा के साथ आये और शंकायें कीं और उत्तर प्रत्युत्तर के बाद सन्तुष्ट होकर चले गये।

आर्य समाज कन्नानोर

दोपहर को रेल द्वारा मंगलौर से कन्नानोर पहुँचे। यहाँ स्टेशन पर साधु शिवप्रसाद जी अच्छे और नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ स्टेशन पर मौजूद थे। उनके साथ उनके निवास स्थान पर जाकर विश्राम किया गया। रात्रि में एक बहुत बड़ी सभा में जिसमें पाँच सहस्र से कम व्यक्ति न होंगे, व्याख्यान दिया गया।

एक दूसरी विशेष नोट करने योग्य बात

यहाँ कन्नानोर के आस पास एक धिया जाति आबाद है जिसकी आबादी २० लाख है। इस जाति के एक गुरु "नारायण गुरु" के नाम से बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस जाति को एक सूत्र में पिरोकर उन्हें तीन मानने योग्य बातें बतलाईं। एक ईश्वर, एक धर्म, एक जाति। इस जाति में अच्छे शिक्षित विद्वान्, वकील और डाक्टर सभी प्रकार के व्यक्ति हैं और सभी उपर्युक्त ३ सिद्धान्तों के मानने वाले हैं। साधु शिवप्रसाद का इस नगर में और इस जाति के बीच बड़ा मान है। उन्होंने आर्य बन कर अब इस जाति में वैदिक धर्म का प्रचार करना शुरू किया है कि इन उपर्युक्त ३ सिद्धान्तों के मानने वालों ही का नाम आर्य है और यही वैदिक धर्म है और इसी धर्म का आर्य समाज प्रचार करता है।

आर्य समाज कालीकट

२१ दिसम्बर को दोपहर कालीकट पहुँच कर के. सी. भट्टा महोदय के यहाँ ठहरे और विश्राम किया। दूसरे दिन इंसराज हाल की बुनियाद रखी गई और उसी सभा में उपदेश दिया गया। रात्रि में मदुरा के लिये मात्रा की गई।

प्रथम दक्षिण आर्य सम्मेलन मदुरा

२३ दिसम्बर को १०-३० बजे दिन के मदुरा पहुँचा। इस बीच में उपर्युक्त सम्मेलन का प्रधान भी बन गया था इसलिये उसी दृष्टि से मदुरा में श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने स्वागत का सफल प्रबन्ध किया था।

मदुरा शहर में मीनाक्षी विद्यालय में ठहरे, जहाँ पहले से सम्मेलन का कार्यालय था और उपाध्याय जी तथा अन्य सज्जन वहाँ ठहरे हुए थे।

सम्मेलन की रिपोर्ट सभा के कार्यालय में पहुँच चुकी होगी, इसलिये उसका विवरण यहाँ अंकित करना अनावश्यक है।

(६४५)

मदुरा में आर्य समाज का इस अवसर पर बड़े पैमाने पर और विद्वत्तापूर्ण प्रचार हुआ जिससे नगर का शिक्षित और विद्यार्थी वर्ग बड़ा प्रभावित हुआ। मदुरा में यों कहना चाहिए कि भूमि तय्यार हो गई वीज डालने की कमी है। यहां कुछ काल तक बाबू शिवचन्द्र को छोड़ देने से, विश्वास है कि अच्छा आर्य समाज बन जावेगा।

सम्मेलन में वीर सावरकर का व्यवहार बड़ा श्रेष्ठ था, वे रोगी होने पर भी सम्मेलन में आये और अच्छे शब्दों में आर्य समाज और स्वामी दयानन्द को याद किया।

रामेश्वर और धनुष कोटि

केवल देखने के उद्देश्य से मैं यहां (इन स्थानों में) आया था। रामेश्वरम् वह जगह है जहाँ से रामचन्द्र जी का पुल बनवाकर लंका को जाना कहा जाता है।

धनुष कोटि—रामेश्वर से ७ मील के फासिले पर वह स्थान है जहाँ से आज कल सीलोन को स्टीमर आदि जाया करते हैं। दोनों जगह समुद्र के सिवा और कोई दर्शनीय वस्तु नहीं है। रेल का रास्ता इन जगहों का अवश्य सुहावना है। रेल की सड़क के दोनों ओर मीलों तक समुद्र हैं, उनके बीच में रेल पर मनोरञ्जक है। यहां से लौट कर फिर मदुरा आये और मदुरा से ट्रैवेंडूर की ओर यात्रा की।

ट्रैवेंडूर और कन्याकुमारी

प्रातः ८ बजे ३०-१२-४० को मदुरा से चलकर सायंकाल ६ बजे ट्रैवेंडूर पहुँचे।

३१ दिसम्बर को निम्न कार्य किये गये:—

(१) ग्रन्थ शाला (पुस्तकालय) तथा वाचनालय जो ट्रावनकोर के एक राजकुमार के नाम से खोला गया है देखा गया।

(२) एक स्त्री शाला को देखा गया जहां अरक्षित स्त्रियों की रक्षा की जाती है।

(३) तीसरे पहर अनाथ बालिकाओं का आश्रम तथा स्कूल जिसमें दस्तकारी आदि की शिक्षा दी जाती है, देखा गया और बालिकाओं को उपदेश दिया गया।

(४) ग्रंथशाला के उत्सव में शरीक होकर व्याख्यान दिया गया।

(५) सायंकाल ५ बजे कन्याकुमारी के लिए बस में यात्रा की गई और ६-३० बजे वहां पहुँचकर राज्य के छत्रम में विश्राम किया गया।

१-१-४१ को दिन में प्रातःकाल कन्याकुमारी की सैर की गई। जहां अरवियनसी, बंगाल की खाड़ी और हिन्दुस्तान का समुद्र मिलते हैं वह स्थान दर्शनीय है वहां स्नान करने के लिये अच्छे घाट बने हुए हैं। यह स्थान ट्रावनकोर राज्य के अन्तर्गत है। यहां एक विवेकानन्द पुस्तकालय है। उसके प्रबन्धकर्ता ने बतलाया कि यहां २००० मछुए रहते थे

(६४६)

और वे सभी ईसाई हो गए थे अब उसके प्रयत्न से ३०० से अधिक शुद्ध होकर फिर हिन्दू हो गए हैं। बाकी के लिए यत्न जारी है। कन्याकुमारी से वापिस होकर ट्रेवेंड्रम से १-१-४१ की रात्रिमें मदरासके लिए यात्रा की और ३-१-४१ को छः बजे Ignire पहुँचकर वहाँ से घोड़ा गाड़ी करके मदरास सेण्ट्रल पहुँच कर उसी समय ८ बजे बम्बई के लिए यात्रा की। ४ को बम्बई पहुँचा ५ को आ० स० माटुङ्गा में उपदेश दिया गया और वहाँ से वापिस होकर उसी रात देहली के लिए यात्रा की गई जहाँ ७-१-४१ को प्रातः पहुँचकर यात्रा समाप्त की गई।

—नारायण स्वामी

शारदा मन्दिर बुक डिपो की अन्य उपयोगी पुस्तकें

१. महापुरुषों के दर्शन—(लेखक श्रीराम स्वरूप कौशल एम. ए.)
 २. स्त्रियों का ओज—(आचार्य चतुरसेन शास्त्री) मूल्य १)
 ३. देश का राष्ट्र गान—(राजनाथ पाण्डेय एम. ए.)
 ४. योगामृत—(लेखक प्रो. गोपाल जी बी. ए.) मूल्य १)
 ५. सहेली—कन्याओं के लिये। मूल्य ॥=)
 ६. उपदेशामृत पांचो भाग—बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिये। मूल्य १।=)
 ७. जीवनामृत
 ८. आनन्दामृत
 ९. पुरुषार्थामृत
 १०. भक्ति कुसुमाञ्जलि
 ११. कालचक्र
 १२. कथामाला—(श्री नारायण स्वामी)
 १३. कैलाश पथ पर ॥)
 १४. नीराजना
 १५. लोरजा
 - साहित्यिक (कविता १) प्रति पुस्तक
- बच्चों के लिये—१. राजपूत बच्चे, २. अम्मा कहानी सुना, दो भाग, ३. बच्चों के नाटक, ४. सखा की सीख, ५. सखी की सीख।

मिलने का पता—

शारदा मन्दिर बुक डिपो, नई सड़क, देहली।

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की बंगाल, आसाम का भ्रमण वृत्तान्त

मैं १६-१२-४० को देहली से चलकर १७ को कलकत्ता पहुँचा और १३-१-४१ को कलकत्ता से चलकर १५-१-४१ को देहली आया। इस अवसर में आर्य समाज आसनसोल और कलकत्ता तथा गाड़ो बागान का उत्सव किया और निम्न आर्य समाजों में गया— वज्रवज्र (कलकत्ता) राजशाही, गौरङ्ग (राजशाही) शिवपुर, चाँदपुर (आर्य समाज नहीं आर्य समाजी हैं) मेदनीपुर इसी जिला में वाँधागुड़ा, दीघादर्मत। आसाम में गोहाटी (यहाँ आर्य समाज था अब एक साल से बन्द है उस आर्य समाज का सम्बन्ध प्रादेशिक सभा पंजाब से था) नौगाँव, गोलाघाट, सिवसागर, सिलहट, शिलाङ्ग (यहाँ भी प्रादेशिक सभा पंजाब के आधीन आर्य समाज था परन्तु आजकल कोई नहीं है उपदेशक गृह पर गए हुए हैं जो संभल मुरादाबाद के रहने वाले हैं सम्भव है उनका न रहना ही कारण हो)

आसाम की आबादी १९३१ की जन गणना के अनुसार

सर्व संख्या	६२४७८५७ हैं	जैन	२८०३ हैं
इनमें पुरुष	४८४४१३३ हैं	बौद्ध	१५०४५ हैं
स्त्रियाँ	४००३७२४ हैं	मुसलमान	२७८०५१४ हैं
सर्व हिन्दू	५२०४६५० हैं	„ पुरुष	१४६१७६२ हैं
हिन्दू पुरुष	२७५१६५७ हैं	„ स्त्रियाँ	१३१८७६२ हैं
„ स्त्रियाँ	२४५३९९३ हैं	ईसाई	२४६२४६ हैं
आदि निवासी	६६२३६० हैं	„ पुरुष	१२४०४५ हैं
सिख	२७६० हैं	„ स्त्रियाँ	१२५२०१ हैं

विभाग

आसाम चार भागों में विभक्त है—सूरमा घाटी, आसाम घाटी, देशी राज्य, सीमाप्रांत।

(१) सूरमा घाटी। सिलहट का सार खासिया जयन्ती हिलज, नागा हिलज, रोसाई हिलजा, पांच भागों में विभक्त (जिले हैं)।

(२) आसाम घाटी, ग्वालपाडा, कामरूप, दरंग, नोगाँव सिवसागर लखीमपुर, गाडर हिलज (जिले हैं)।

(६४८)

(३) देशी राज्य—मनीपुर खासी स्टेट्स, (छोटी २ रियासतें हैं)

(४) सीमाप्रान्त सदीपा (ब्रह्मा की सीमा) काली पाडा (तिब्बत की सीमा)

बंगाल प्रान्त इससे पृथक् है ।

उपदेशक

आर्यसमाज के बंगाल आसाम में निम्न उपदेशक हैं—

पं० दीनबन्धु जी वेद शास्त्री आसाम में हैं उनके सहकारी चार प्रचारक हैं । जिनमें से एक मनीपुरी, दूसरा खसिया जयन्तीया, तीसरा पाटनी और चौथा नमशूद्र है आसाम में कुल पांच उपदेशक हैं ।

बंगाल में

पं० जितेन्द्रनाथ जी मल्ली, पं० श्रीकृष्णचन्द्र जी मोजमदार (कलकत्ता के समीपवर्ती समाजों में काम करते हैं । पं० भुवनमोहन जी जिला मेदनीपुर में, पं० प्रियदर्शन जी जिला राजशाही में हैं उनके साथ एक श्री सूर्यकान्त जी हैं ।

इस प्रकार बंगाल में भी पांच उपदेशक हैं सब मिलाकर १० उपदेशक बंगाल आसाम में हैं और ईसाइयों के १६ मिशन केवल आसाम में काम करते हैं ।

जिला सिलहट और ग्वाल पाड़ा में ग्रामों में भी कुछ समाजें हैं, आसाम में और किसी जिला में अभी तक नहीं है ।

इस प्रकार बंगाल, आसाम में कई जिले ऐसे हैं जहां आर्यसमाज का नाम मात्र भी प्रचार नहीं है न्यून से न्यून प्रत्येक जिला में एक उपदेशक होना ही चाहिए ।

आर्थिकावस्था

श्री जुगलकिशोर विरला जी आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल आसाम को जो धन देते हैं वह इस प्रकार है :—

२००) प्रतिमास आसाम प्रचार के लिए ।

१००) प्रतिमास बंगाल प्रचार के लिए ।

६०) प्रतिमास दारजिलिंग प्रचार के लिए ।

८०) प्रतिमास जनगणना के लिए ।

यह नियत रूप से है इसमें ८०) फरवरी तक है फिर बन्द हो जायेंगे इसके अतिरिक्त जब कभी सभा विशेष आवश्यकता अनुभव करती है उस समय उन से धन प्राप्त कर लेती है इनके अतिरिक्त सेठ दीपचन्द्र जी पोद्दार भी प्रतिमास सहायता देते हैं कुछ और भी दानी होंगे परन्तु कलकत्ता में जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है ।

(६४६)

जनता की दृष्टि

जनता में जो लिखे पढ़े व्यक्ति हैं वह अनुभव करते हैं कि उनकी सहायता होनी चाहिए वह धर्म विषय में मार्ग निकालने में असमर्थ प्रतीत होते हैं जबसे पाकिस्तान की चर्चा चली है उस समय से यह अपने आपको असहाय अनुभव कर रहे हैं। क्योंकि कांग्रेस इस विषय में कुछ न करेगी यह ऐसा विचार रखते हैं। मैं जिनसे मिला हूँ वे आर्यसमाज का स्वागत करते हैं परन्तु अभी आर्यसमाज को धन देने के लिए उद्यत नहीं हैं उनको यह भी भ्रम है कि आर्य समाज के पास धन बहुत है, वह बंगाल, आसाम में चाहे तो लाखों रुपये प्रति वर्ष व्यय कर सकता है। वह मनोयोग देने को उद्यत है। यदि न्यायालय में कोई विवाद हो तो वकील भी मिल जायेंगे। परन्तु अभी इनसे धन न मिलेगा।

जो साधारण जनता है, वह आर्य समाज का स्वागत करती है। धर्म की दृष्टि से इस समय सनातन धर्मों, ब्राह्मण भारतीय सेवा संघ, हिन्दू मिशन, रामकिशन मिशन, काम करने वाले हैं। इनमें से सनातन धर्मों तो जो हैं वही हैं। रामकिशन मिशन औषधालय द्वारा सेवा करता है, वह धर्म परिवर्तनादि से उदासीन ही है। ब्राह्मण समाज भी सनातन धर्म की श्रेणी का शांत समुदाय है, शेष भारतीय सेवा संघ है जिसके नेता स्वामी प्रणवानन्द जी हैं। हिन्दू मिशन शुद्धि करता है और विशेष कर ईसाइयों को मिलाता है। परन्तु उनके मार्ग में कठिनाई है, वह शुद्धि करके किसमें शामिल करे, यह उसे मूर्खता नहीं है। हिन्दुओं की पुरानी जातीयता दृढ़ है, वह नए को आने नहीं देती हैं। शुद्ध होने पर भी यदि नीच ही रहना है तो ईसाई रहना उससे उत्तम है, यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है। इस अवस्था में साधारण जनता को आर्य समाज का ही आश्रय प्रतीत होता है और वह प्रसन्नता से आने को उद्यत हैं। परन्तु आर्य समाज के पास धन और उपदेशक नहीं हैं। आर्य समाज से वह लोग उपवीत लेकर आर्य हो जाते हैं और अपना नाम आर्य ही बतलाते हैं। जाति पात का भेद आर्य समाज में नहीं है। अतः वह सब मिलकर आर्य विरादरी बन जाते हैं और उनमें कहीं २ तो विवाह सम्बन्ध भी आर्य दृष्टि से हो गये हैं। इसलिए साधारणतया यह छोटी जातियाँ आर्य समाज का स्वागत करती हैं। परन्तु उनके पास धन नहीं है। अतः वे धन कैसे दें।

जहाँ २ आर्य समाज हैं वहाँ मुसलमान परिवार दो वा चार अथवा अधिक आर्य समाज में सम्मिलित होकर आर्य बन गए हैं। अतः शुद्धि कार्य भी हो सकता है।

इस प्रकार शिक्षित, अशिक्षित, धनी, निधन, बड़े, छोटे आर्य समाज को चाहते हैं अब एक प्रश्न मांस भक्षण का है इस समय जो बंगाली, आसामी आर्य समाजी हैं उनमें

(६५०)

अधिक से अधिक पाँच प्रतिशतक माँस न खाते हों तो न खाते हों शेष सब खाते हैं मैं इस बात को साफ करने के लिए एक घटना लिख देता हूँ। हम एक आर्य समाज में गए उस आर्य समाज के प्रधान के गृह पर ठहरे। जो शिक्षित हैं, प्रतिष्ठित हैं। भोजनके समय उनकी धर्मपत्नी ने भोजन परसा परन्तु प्रधान जी उस चौके में न बैठकर पृथक् चौके में दूर बैठे और कहा महाराज जी आज मेरा परिवार मुझे छोड़कर सब वैष्णव हैं। चौके में निरामिश भोजन बना है मेरी स्त्री, बालक वही भोजन करेंगे मैंने अपने लिए स्वयं मत्स्य बनाया है वह चौके से बाहर बनाया है। अतः मैं इस समय चौके में आपके साथ बैठकर भोजन न करूँगा आदि। इससे आप अनुमान करलें कि माँस के विषय में क्या अवस्था है अनेक स्थानों पर जहाँ हमने भोजन किया वहाँ बंगाली आसामी सज्जन हमारे साथ बैठे उन्होंने हमारे कारण उस समय माँस न बनाया था न खाया ही था।

जिला सिलहट और सुन्दर वन में आर्य समाजी ऐसे भी हैं जिनका व्योपार ही मछली का है। उसमें से एक ने किसी समय कहा था। आप मुझे आर्य समाजी माने वा न माने मैं आर्य समाजी हूँ और वैदिक धर्म पर मर मिटने को उद्यत हूँ परन्तु माँस छोड़ना असम्भव है। मैं अपने आपको किसी से न्यून आर्य समाजी नहीं मानता हूँ मेरे। मैं यह दोष है इसका फल मुझे परमात्मा जो चाहे दे इत्यादि।

मूर्ति पूजा के विषय में मुझे भय था कि बंगाल मूर्तिपूजा को न छोड़ सकेगा परन्तु यहाँ आकर पता लगा कि वह ऐसी बात नहीं है हाँ एक बात अवश्य है संभव है किसी समय न्यायालय में अभियोग हो उस समय पता लगेगा कि न्यायाधीश क्या सम्मति रखते हैं।

बंगाल में अनेक जमींदार हैं उनकी संपत्ति देव संपत्ति है अर्थात् उनके किसी पूर्वज ने अपनी जायदाद देवता के नाम करदी और उसके प्रबन्ध के लिए उसकी संतति ही नियत की गई। उस सज्जन ने यह इस दृष्टि से किया था इस संपत्ति को कोई व्यसनी होकर नष्ट न करदे अब उसकी औलाद में जायदाद बंट गई है और उस देवता की पूजा अपने अपने हिस्से के अनुसार उनकी संतान करती हैं। वह भी एक पुजारी नियत कर देते हैं वह पुजारी देवता की पूजा करता है उसके जीवन निर्वाह के लिए कुछ धन दिया जाता है शेष जायदाद को जमींदार स्वयं भोगता है। इस रीति से जमींदार जिस जायदाद का स्वामी है वह जायदाद देवता के नाम की है। पंजाब में आप एक महन्त समझलें किसी महन्त ने जायदाद मन्दिर, गुरुद्वारे के नाम करवादी उसी प्रकार की बंगाल की

(६५१)

अवस्था है वह जमींदार न मूर्ति पूजा करता है न पुजारी ही है। कई जमींदार नास्तिक भी हैं यदि वह आर्य समाजी बन जायें तो संभव है किसी समय कोई भाई अभियोग चलाए उस समय देखें क्या निर्णय होगा अभी तक तो जो आर्य समाजी हैं वह आर्य होकर पुजारी से पूर्ववत् कर्म करवाते हैं स्वयं कुछ नहीं करते हैं पूछने पर कह देते हैं हमारे पूर्वज ने जायदाद रत्नार्थ ऐसा किया था हम भी कोई नष्ट नहीं करते हैं उन्होंने यह कब लिखा था उनकी संतति में कोई आर्य समाजी न होगा।

आसाम में मूर्ति पूजा पहले से ही नहीं है यहाँ १६ वीं शताब्दी में श्री शंकरदेव जी हुए थे उन्होंने जो प्रचार किया उसमें मूर्ति का स्थान नहीं है उनके जो मन्दिर हैं वह यह 'नाम धर' के नाम से प्रसिद्ध हैं प्रत्येक ग्राम में नामधर अवश्य होगा उसमें कोई मूर्ति नहीं होती सब सत्संगी लोग उसमें आकर बैठते हैं विशेष समय में सम्मिलित भी होते हैं और बैठकर संकीर्तन करते हैं इसलिए आसाम में मूर्तिपूजा का प्रश्न ही नहीं है।

इसी प्रकार आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार भली प्रकार हो सकता है। प्रचार में सनातन धर्मी प्रतिबन्धक न होंगे। मुसलमान, ईसाई प्रतिबन्धक अवश्य होंगे। परन्तु इधर का मुसलमान पंजाब वा यू० पी० का मुसलमान नहीं है सहनशील हैं। उदाहरणार्थ मैंने एक आर्य को देखा म० सूर्यकांतजी जो प्रथम मुसलमान अपनी स्त्री सहित आर्य बना उसका भ्राता भी मुझे मिला उससे बातचीत करने पर उसने कहा जमाल (सूर्यकांत का प्रथम नाम) की इच्छा है वह आर्य रहे वा मुसलमान वह मेरा भाई है। मैंने सुना है कि उसके माता-पिता भी उससे स्नेह करते हैं उसका पिता तो सुना है प्रसन्न है वह कहता है पहले इसमें कई व्यसन थे अब इमने व्यसन छोड़ दिए हैं अतः यह अब अच्छा होगया है। अनुमान है यदि यत्न किया जाय मुसलमान भी आर्य हो जायेंगे।

विशेष चिन्तनीय

अवदाल नाम की जाति है जिनके रीति रिवाज हिन्दुओं से ही मिलते हैं। १६२१ तक वह अवदाल भी लिखे जाते थे परन्तु १६३१ में उनको मुसलमान ही लिख दिया गया क्योंकि मुसलमानों में इस गणना में भी जाति उड़ा दी गई है इसलिए उस जाति को चेतन करना कठिन हो गया है (यह अवदाली मलकाने जैसे मुसलमान थे। लेखक)

२० सहस्र मोची हैं जो हिन्दू हैं परन्तु इन पर अब मुसलमानी प्रभाव पड़ रहा है यदि उनकी रक्षा न की जाय तो १६४१ में तो निश्चय नहीं १६५१ में वह अवश्य मुसलमान लिखे जायेंगे हिन्दू अनुभव करते हैं कि वह मर रहे हैं परन्तु उनके गुरु ब्राह्मण और अन्य नेता कोई मार्ग नहीं बतलाते हैं जिससे रक्षा हो वह मार्ग केवल आर्यसमाज ही बता सकता है।

—स्वतन्त्रानन्द

प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेन्स मदुरा की रिपोर्ट

(ले०—श्री शिवचन्द्र जी संयोजक मन्त्री, प्रथम दक्षिण भारत
आर्यन कान्फ्रेन्स, मदुरा)

दैनिक प्रचार और व्याख्यान माला

यद्यपि मुख्य कान्फ्रेन्स की तिथियाँ ता० २६ तथा २७ दिसम्बर थीं । परन्तु नियमित प्रचार ता० २४ दिसम्बर से आरम्भ हो गया था और निरन्तर ता० ३० दिसम्बर तक प्रातः, सायं तथा रात्रि में होता रहा । प्रातः संध्या, यज्ञ, प्रार्थना तथा उपासना होती थी । इसके अध्येक्ष श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति तथा श्री पं० मदनमोहन जी विद्याधर थे । प्रातः ६ बजे से ११ बजे तक व्याख्यान होते थे और सायं ५ बजे से रात्रि के १० बजे तक व्याख्यान होते थे । इस प्रचार के सिलसिले में जिन महापुरुषों के व्याख्यान हुए उनके नाम इस प्रकार हैं—श्री पूज्य विद्वद्वर पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, श्री पं० मदनमोहनजी विद्याधर, श्री पं० केशवदेवजी ज्ञानी, श्रीयुत शिवचन्द्र जी, श्रीयुत के. सी. भल्ला जी, श्री पं० सुधाकर जी, श्रीयुत साधु शिवप्रसाद जी, श्री पं० धर्मकाम जी । जनता दत्तचित्त होकर व्याख्यानों को श्रवण करती थी । आरम्भ में ही जनता को यह कह दिया जाता था कि व्याख्यानों की समाप्ति पर जो भी जिस विषय पर चाहे प्रश्न कर सकता है । मूर्ति पूजा, अवतारवाद, कांग्रेस-हिन्दू महासभा, आर्य समाज में अन्तर, देश में रोटी की समस्या किस प्रकार हल हो सकती है, विषयों पर जनता की ओर से प्रश्न होते थे जिनका पूर्ण रूप से समाधान किया जाता था ।

दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्माण !

ता० २६ दिसम्बर को मध्याह्न को १ बजे से श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में दक्षिण भारत की समाजों से आए हुए प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई जिसमें विद्वद्वर श्री पूज्य पं० गंगाप्रसादजी ने उन समस्त बातों पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार मदुरा में यह प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेन्स बुलाई गई ! आपने इस अवसर पर दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा बनाने का विचार प्रगट किया जिसका सब ही प्रतिनिधियों ने हार्दिक स्वागत किया और विचार के पश्चात् सर्व सम्मति से निश्चय हुआ

(६५३)

कि प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का निर्माण किया जावे, उसका नाम दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा रखा जावे और उसका हैडक्वाटर मद्रास रखा जावे। सभा के पदाधिकारियों तथा अन्तरङ्ग सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। प्रतिनिधि सभा निर्माण सम्बन्धी प्रस्ताव तथा अधिकारी तथा अन्तरङ्ग सदस्यों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं।

समाजों के प्रतिनिधियों की सूची जो उक्त बैठक तथा कान्फ्रेंस में उपस्थित थे

दक्षिण भारत की १२ आर्यसमाजों के २६ प्रतिनिधि कान्फ्रेंस में तथा उक्त बैठक में सम्मिलित हुए थे जिनकी सूची निम्न प्रकार है—

Serial No.	Name of Aryasamaj	Serial No.	Name of Delegates
1.	Chinabazar, Madras	1.	Syt. M. B. Sharma ji
	"	2.	" J. P. Gupta ji
	"	3.	" Pt. K. Gnani ji
	"	4.	" M. Krishna Rao ji
	"	5.	" K. Shriramlu ji
	"	6.	" M. E. Lognatham ji
	"	7.	" P. M. Natesan ji
	"	8.	" Pt. M. Sundaram ji
	"	9.	" Inder Sen ji
	"	10.	" V.N. Kumar Swamji
2.	Peramboor, Madras	11.	" M. Adikesavloo ji
3.	Mangalore	12.	" U. Gopal Nayak ji
	"	13.	" B. Mohanappa Thingalaya ji
4.	Bhaktivilas yelwal Road, Mysore	14.	" Dharam Rajan ji
	"	15.	" Ramaswami ji
	"	16.	" Kuroji Rao Damodarji
5.	Cantonment Bangalore	17.	" H. Kapur ji
	"	18.	" Anup Chand ji
6.	Shri Rampore, Bangalore	19.	" Pt. Dharam Devji Vidyavachaspati
	"	20.	" " Sudhakar ji
7.	Tenali	21.	" " Madan Mohan Vidyadhar ji
8.	Kuchipudi	22.	" " Gopdev ji
9.	Cuddappah	23.	" A. Raghavendra Raoji
10.	Kottayam	24.	" Pt. Narayan Dev ji
	"	25.	" Pt. Abhaya Deva ji
11.	Karkala (S.K.)	26.	" K. Venkateswarulu ji
	"	27.	" Keshava Ram Chandra Shenoy ji
12.	Cannanore	28.	" Sadhu Shiv Prasad ji

(६५४)

२६वें एक सज्जन श्री M. K. Rangaswami Iyanger नामक चोला-पुरम जिला त्रिचनापल्ली निवासी ने अपने यहाँ आर्यसमाज खोलने का वचन दिया था और उन्होंने प्रतिनिधि बनने की इच्छा प्रकट की थी। अतः विशेष रूप से उन्हें भी प्रतिनिधि बना लिया गया था।

श्री ला० नारायणदत्तजी (नई देहली) कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा तथा श्री म० कृष्ण जी (लाहौर) उपप्रधान सार्वदेशिक सभा भी उक्त प्रतिनिधियों की बैठक तथा कान्फ्रेंस में उपस्थित थे।

कान्फ्रेंस का प्रथम दिवस

ता० २६ दिसम्बर को ठीक ४-३० बजे सायंकाल को श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के सभापतित्व में कान्फ्रेंस की कार्यवाही आरम्भ हुई। पण्डाल को चित्रों, पताकाओं तथा केले के पत्तों से यथाशक्ति सजाया गया था।

प्रारम्भ में श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने वैदिक प्रार्थना की। इसके पश्चात् मीनाक्षी विद्याशाला की छात्राओं ने वन्देमातरम् गायन किया। इसके पश्चात् श्री स्वागताध्यक्ष जी तथा प्रधान के भाषण पढ़े गए और २ प्रस्ताव पास हुए।

उपदेशकों की बैठक

ता० २७ दिसम्बर को मध्याह्न में १ बजे से श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के प्रधानत्व में दक्षिण भारत के उपदेशकों की एक बैठक हुई जिसमें इस बात पर विचार हुआ कि भविष्य में दक्षिण भारत में वैदिक धर्म का प्रचार किस प्रकार अधिक सफलता और तीव्र गति प्राप्त कर सकता है। लगभग सबही उपदेशकों ने अपने अपने अनुभव तथा कठिनाइयाँ श्री पूज्य स्वामी जी महाराज के सम्मुख रखे। अन्त में श्री पूज्य स्वामी जी महाराज ने सबको निर्देश देते हुए बतलाया कि जितना समय और जितनी शक्ति आप व्याख्यान (Public lectures) में व्यतीत करते हैं उससे कहीं अधिक लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क तथा प्रेम बढ़ाकर उनको वैदिक धर्म तथा आर्य समाज के सम्बन्ध में उनसे समय समय पर मिलकर, रुचि बढ़ानी चाहिए और उनके मानसिक सन्देहों को मिटाकर ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए।

कान्फ्रेंस का दूसरा दिन

सायंकाल को ४॥ बजे से कान्फ्रेंस का पुनः खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ और शेष प्रस्तावों पर जो अन्यत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं, वक्तृताएँ हुई और सब प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। आज के दिन इसी समय स्वातन्त्र्य वीर श्री बैरिस्टर सावरकर का जलूस नगर में निकल रहा था, जलूस के साथ भीड़ अपार थी।

(६५५)

जलूस के समाप्त होते ही श्री सावरकर जी आर्य कान्फ्रेंस में पधारे। श्री सावरकर जी के पधारने से पूर्व ही आर्यन कान्फ्रेंस पण्डाल जनता से खचाखच भरा हुआ था। अतः बहु संख्यक जनता को निराश होकर पण्डाल के बाहर ही खड़े होकर कान्फ्रेंस की कार्यवाही को सुनना पड़ा। पण्डाल के बाहर भी लाउड स्पीकर्स का प्रबन्ध था। अतः बाहर भी जनता बड़ी सुगमता के साथ व्याख्यान सुनती थी।

स्वातन्त्र वीर नेता ने अपने सन्तित ओजस्वी पूर्ण अंग्रेजी भाषण में कहा कि “हिन्दू महासभा और उसके नेता हिन्दू संगठन का सर्व प्रथम विगुल बजाने वाले नहीं थे किन्तु हिन्दू संगठन का इस देश में सर्व प्रथम विगुल बजाने वाले नेता ऋषि दयानन्द थे और उनके अनुयायी और उनकी स्थापित की हुई संस्था आर्य समाज सबसे अधिक हिन्दू सङ्गठन का कार्य कर रही है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आर्य समाज में सम्मिलित होना चाहिए और दक्षिण भारत के कोने २ में आर्य समाज स्थापित हो जानी चाहिए। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म की रक्षा का सबसे अधिक कार्य किया है। इसके बाद आपने पाकिस्तान की योजना का विरोध किया।

इस समय कान्फ्रेंस में श्री डाक्टर मुन्जे और श्री डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंग भी आ गए थे श्री महाशय कृष्ण ने जो पूर्व से उपस्थित थे पाकिस्तान विरोधी प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए भाषण दिया जिसका समर्थन तथा अनुमोदन श्री डाक्टर मुन्जे तथा श्री डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंग ने किया।

इसके पश्चात् शुद्धि प्रस्ताव पर भाषण हुए। यह प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

कृतज्ञता प्रकाशन

अन्त में उन सब स्थानीय महानुभावों को जिन्होंने कान्फ्रेंस को सफल बनाने में सहायता दी थी सबको धन्यवाद दिया गया, जिनके नाम निम्न प्रकार है—

1. Syt. N. M. R. Subbraman, Chairman, Municipal Board
2. " Doctor Ram Subramanyam of Harley's Nursing Home
3. " " Yagayanarrayan " " "
4. " A. Rangaswami Aiyar, Advocate, Chairman, Reception Committee, Aryan Conference.
5. " A Narayan Aiyar, Advocate
6. " Doctor Varadrajlu Naidu, General Secretary, Reception Committee All India Hindu Mahasabha Session.
7. " Sitaramya, G. O. C. Volunteer Corps. Hindu Mahasabha Session.
8. " P. K. Raghvan, Municipal Councillor.

(६४६)

9. „ Jambuswami Rao, Agent, Indian Bank.
10. „ R. S. Naidu, Bar-at-Law Executive officer, Meenakshi Temple.
11. „ Seshaya, Head Master, Meenakshi Vidyashala.
12. „ Seth Gaggio Bhair, Proprietor, Truthful Manufacturing Co.
13. „ Chimman Lal A. Parikh, a leading Gujrati businessman.
14. „ Gaibi Lal ji Secretary Gujrati Association.
15. „ Secretary Sourashtra Old Boys' Association.
16. „ President Sindhi Association.
17. „ Krishnmachari, a local Congress worker.
18. „ Kappuswami Clerk of the Conference.
19. „ All the Press Reporters of Madura.
20. „ Mahalingam of Madras जिन्होंने अंग्रेजी भाषणों का अनुवाद तामिल में किया था। शान्ति पाठ के पश्चात् कान्फ्रेंस की कार्यवाही समाप्त हुई।

विधवा विवाह सहायक कान्फ्रेंस

ता० २६ दिसम्बर को सायंकाल को आर्यन कान्फ्रेंस परडाल में विधवा विवाह सहायक कान्फ्रेंस विद्वद्वर श्री पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० के सभापतित्व में हुई। इस कान्फ्रेंस को सफल बनानेका श्रेय Sriyut Chettiar जो मद्रास विधवा विवाह सहायक सभा के मन्त्री हैं तथा श्री सेठ गगो भाई Proprietor Truthful Manufacturing Co. Madura को है।

श्रीयुत एन० सी० चटर्जी का अंग्रेजी में एक विशेष व्याख्यान

ता० ३० दिसम्बर को सायंकाल श्रीयुत एन. सी. चटर्जी बार-एट-ला कलकता तथा बंगाल प्रान्त के एक प्रमुख नेता का एक विशेष व्याख्यान आर्यन कान्फ्रेंस परडाल में श्री पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए. के सभापतित्व में हुआ। आपका भाषण अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

कान्फ्रेंस की विशेष सफलतायें और भावी परिणाम

इस कान्फ्रेंस से जो विशेष सफलता प्राप्त हुई और शुभ परिणाम निकले वे निम्न प्रकार हैं—

(१) समस्त भारतवर्ष में एक ही ऐसा प्रांत रह गया था जिसमें अभी तक प्रांतीय प्रतिनिधि सभा का निर्माण नहीं हो सका था। प्रत्येक आर्य भाई और वहिन को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कान्फ्रेंस की सफलता का श्रीगणेश ही दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना से हुआ। इस सभा की स्थापना का सब से अधिक श्रेय श्री पूज्य महात्मा

(६५७)

नारायण स्वामी जी महाराज तथा विद्वद्वर श्री पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए० को है। और इस महान कार्य के लिए आप दोनों महानुभावों का नाम दक्षिण भारत के आर्यसमाज के इतिहास में अमर रहेगा। आप दोनों ने आर्यसमाज के क्षेत्र में दक्षिण भारत की एक बहुत बड़ी कमी को पूर्ण किया है।

(२) दक्षिण भारत की साधारण जनता तो क्या इधर के शिक्षित समुदाय ने मद्रास आदि मुख्य स्थानों को छोड़कर हैदराबाद आर्यन सत्याग्रह के पश्चात् भी आर्यसमाज का केवल नाम ही सुना हुआ था, उनको आर्यसमाज के सिद्धान्तों, शिक्षाओं तथा कार्य का कुछ भी ज्ञान न था। इस कांग्रेस के पश्चात् समस्त दक्षिण भारत के शिक्षित समुदाय में आर्यसमाज के मिशन की चर्चा होने लगी है चूँकि इस कांग्रेस का Press Propaganda साधारणतः भारतवर्ष के समस्त समाचार पत्रों में और मुख्यतः मद्रास प्रान्त के समाचार पत्रों में आर्यसमाज के इतिहास में शोलापुर आर्यन कांग्रेस के दूसरे नम्बर पर हुआ था। समझदार लोग मूर्ति पूजा आदि विषयों पर मतभेद रखते हुए भी अब आर्यसमाज की बात को बड़े प्रेम और आदर के साथ सुनते हैं और शिक्षित जनता में विशेषतः युवकों में आर्यसमाज के विषय में अधिक जानने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो रही है।

(३) मदुरा नगर में जो दक्षिण भारत की मथुरा समझी जाती है और उसके आस-पास भी आर्यसमाज का निकट भविष्य बड़ा उज्ज्वल दृष्टिगोचर होता है ! ईश्वर ने चाहा तो मदुरा का पौराणिक गढ़ किसी दिन वैदिक धर्म और आर्यसमाज की प्रगतिश्रियों का केन्द्र बन जावेगा।

आर्यसमाज चायना बाज़ार मद्रास का सहयोग

आर्य समाज चायना बाज़ार मद्रास के समस्त आर्य भाइयों ने इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिए पूरा पूरा उद्योग किया था। श्री मान्यवर सेठ मानक जी भाई शर्मा, श्री मान्यवर सेठ जगन्नाथ प्रसाद जी, श्रीयुत इन्द्रसैन जी, श्रीयुत बी० एन० कुमार स्वामी, श्रीयुत केशवदेवजी ज्ञानी, श्रीयुत एम० कृष्णराव, श्रीयुत गणेशजी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आर्यसमाज चायना बाज़ार मद्रास ने कांग्रेस को सफल बनाने के लिए ४००) की आर्थिक सहायता प्रदान की जिसमें सब से अधिक भाग ऊपर लिखित चार महानुभावों का था ! ये महानुभाव हमारे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

(६५८)

South India Arya Pratinidhi Sabha.

A meeting of the delegates from various Arya Samajes in South India took place on 26th December '40 at 1 p.m. in the premises of Meenakshi Vidyashala, Madura, on the occasion of the First South India Aryan Conference, with a view to form the Provincial Arya Prathinidhi Sabha for South India. The following resolutions were passed at the meeting :—

1. Resolved that a Provincial Arya Pratinidhi Sabha be formed.
2. Resolved that the Provincial Arya Pratinidhi Sabha be called the South India Arya Prathinidhi Sabha.
3. Resolved that the headquarters for the South India Arya Prathinidhi Sabha should be at Madras.

Election of Office-bearers and Members of the Working Committee for the year 1941 :—

- (1) President—Pandit Gopa Dev, Kutchipudi—Proposed by Pt. Madan Mohan and seconded by Mr. K. Ramaswami.
- (2) Secretary—M. Krishna Rao, Madras—Proposed by Pandit K. Jnani & seconded by Pt. Dharma Dev.
- (3) Vice-Presidents—Mr. Gnanendra Prabhu, Mysore—Proposed by Mr. T. K. Damodar & seconded by Mr. K. Ramaswami.
- (4) „ Pandit Narayan Dev, Kottayam—Proposed by Mr. Raghavendra Rao & seconded by Pt. Sudhakarji.
- (5) Asst. Secy—Shri V. N. Kumaraswami,—Proposed by Sjt. Inder Sen ji seconded by Pt. Dharma Dev ji.
- (6) Treasurer—Sjt. J. P. Gupta, Madras.—Proposed by Pandit K. Jnani Seconded by T. K. Damodar.

Working Committee.

- (7) Shri T. K. Damodar, Mysore.
- (8) „ Inder Sen ji, Madras.
- (9) „ H. D. Kappoor ji, Bangalore Cantt.
- (10) „ K. Venkateshbrabhu, Karkala, S. Kanara.
- (11) „ Raghavendra Rao, Cuddappah.
- (12) „ Shankar Rao ji, B. A. B. L., Bangalore Cantt,
- (13) „ P. M. Natesan, Madras.
- (14) „ Ramakrishnaiyya, Tenali.
- (15) „ Gopal Nayak, Mangalore, S. Kanara.

S. Chandra*Organising Secretary***Narayanswami***President,***FIRST SOUTH INDIA ARYAN CONFERENCE.**

(६५६)

**Resolution of the First South India Arya Conference held at
Madura on 26th and 27th December 1940**

- (1) This Conference places on record the services to the cause of Arya Samaj, rendered by the late Acharya Rama Devjee, Governor and Principal, Gurukul Kangri (Haridwar), Dr, Balkrishnajee, M. A. Ph. D., Principal, Raja Ram College, Kolhapur, L. Rama Prasadji, member of the D. A. V. College Society and a distinguished journalist, Pandit M. J. Sharma of Madura and Pt. Somanath Rao Sharma of Madras Arya Samaj, a well-known Telugu Poet and expresses its deep sorrow at their sad demise. It prays to the Almighty for the peace of these noble souls and conveys heartfelt condolence to the members of their bereaved families.

(Moved from the Chair)

- (2) Realising the great and urgent need for spreading the gospel of the Vedas and seeing that the Vedic culture is gradually losing its ground in the South, this Conference calls upon all the Vedic Missionaries working in the South and all lovers of Vedic Culture to devote all their energies to the formation of Arya Samaj centres at different parts so that the humanitarian work done by the Arya Samaj in the north may be extended to these parts also. It also requests the public to lend its whole hearted support for this noble work.

Moved by: Sadhu Shiva Prasadji, Vedic Missionary of Cannanore.

Seconded by: Vedwan Pt. Narayan Devaji Siddhanta Bhooshana, Kottayam,

Supported by: Pandit Dharma Deva Vidya Vachaspati, Bangalore.

- (3) Seeing that almost all the original Arya Samajic literature is in Hindi which is not intelligible to the masses of South India, this Conference requests the Sarvadeshik Arya Prathinidhi Sabha and other agencies to contribute towards the publication of Arya Samajic literature in the languages of the South.

Moved by: Pandit Sudhakarji Siddhanta Visharad, Bangalore.

Seconded by: Pandit Abhaya Devji Rashtra Bhasha Visharad, Kottayam.

(६६०)

- (4) This Conference declares that the Shuddhi movement is a vital necessity for the consolidation of the Hindus and Aryas and therefore calls upon all lovers of the Sanatan Vedic Dharma of Southern India to actively interest themselves in the reclamation by Shuddhi Sanskar of those who have for some reasons taken to alien faiths and are now willing to come back by the process of Shuddhi

Moved by; Sjt. S. Chandra.

Seconded by: Sjt. K. C. Bhalla, Editor, "Harbinger", Calicut.

- (5) In the opinion of this Conference, the present day hereditary caste system of which untouchability in all its forms an off-shoot is anti-vedic and chiefly responsible for many of our social evils. This Conference therefore, urges upon all its workers to devote themselves whole-heartedly to the abolition of this pernicious system and solve the problem of untouchability; and for this, this Conference recommends inter-caste dinners and inter-caste marriages.

Moved by: Pandit Dharma Deva Vidya Vachaspati, Bangalore.

Seconded by: Sadhu Lakshmanandaji of Madras.

- (6) This Conference is definitely of opinion that Arya Bhasha (Hindi) is the only language, which can be the Lingua franca of this country.

Therefore it call upon all lovers of the Aryan culture to make it a point to learn and propagate it.

Moved from the Chair.

- (7) This Conference notes with a sense of grief that efforts are being made by interested people to vivisect Mother India, by putting forward the scheme of Pakistan, which is not only impracticable, impolitic, absurd, vicious and detrimental to the interests of the country, but is a positive danger to the Aryan culture and civilisation. Therefore this Conference calls upon all Aryas and other lovers of the country to oppose this Scheme vehemently in a well-organised manner.

Moved by: Mahashey Krishna, Lahore.

Seconded by: Dr. B. S. Moonje.

Supported by: Dr: Sir Gokul Chand Narang, Lahore.

+

+

+

(६६१)

**The summary of the lecture delivered by Shriyut N. C. Chatterjee
Bar-at-Law of Calcutta and a prominent leader of Bengal
on 28th December at the Aryan Conference Pandal.**

Swami Dayanand Saraswati was the first prophet of Swaraj for India. It was he who had first preached that the political slaves cannot be spiritually free. Some slanderers of Aryasamaj call it a communal movement and some call it only a religious and social movement. But as a matter of fact, it is a mighty national movement for the renaissance of India. Swami Dayanand was pained to find that the Hindus were suffering from so many social evils and had forsaken the path of the Holy Veda. To bring reforms in these directions he founded the institution of Aryasamaj. The message of Rishi Dayanand will bring peace not only to India but to the entire world. Rishi Dayanand came to the world with a message of freedom for all. I would not have come to Madura if you would not have opened the Meanakshi Temple for the Depressed Classes. Dayanand fought like a brave man for the social improvement of the depressed classes. He raised his voice against the unreasonable and dogmatic Brahmanical customs. Dayanand gave true conception of Varnashram according to Shastras. He entered into Tapsya to find the real truth. His Guru Virjanand asked him to preach only one God. Mahrishi Dayanand was a greater reformer than Luther. Dayanand has given Aryasamaj such a life that it has contributed so much to the awakening of India. First who thought of Hindu consolidation was Dayanand. Another contemporary movement known as Brahmo Samaj is dead but Aryasamaj is still alive and gaining gradual momentum. The philosophy of the Vedas as preached by Dayanand and Aryasamaj is bold and invigorating. The Vedic Dharam preached by them is not only meant for India but for the entire humanity."

दक्षिण भारत में सार्वदेशिक सभा का प्रचार कार्य सभा के उपमन्त्री श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के निरीक्षण में हो रहा है। मदुरा कांग्रेस की सफलता तथा आर्य प्रतिनिधि सभा मद्रास की स्थापना के लिये श्री पं० जी ने जो परिश्रम किया है और जिसके फलस्वरूप ये दोनों कार्य शानदार सफलता के साथ सम्पन्न हुए हैं उसके लिए पं० जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

—सम्पादक सार्वदेशिक

हैदाराबाद-सत्याग्रह-विजयोपलक्ष्य में !

भारी रियाअत !!

श्री चमूपति-साहित्य-विभाग

की

पुस्तकों के मूल्य में असाधारण कमी

१. वेदामृत (स्वामी वेदानन्द तीर्थ)	मूल्य २॥) घटाया मूल्य १॥)
२. आर्य-प्रतिनिधि-सभा का इतिहास	„ २॥) „ „ १॥)
३. शास्त्रार्थ दर्पण (उर्दू)	„ ॥) „ „ १)
४. यास्कयुग (श्री पं० चमूपति जी)	„ ॥) „ „ १)
५. त्रिदेव निर्णय (श्री पं० शिवशंकर जी)	„ ॥॥) „ „ ॥)
६. वैदिक-पीयूष-विन्दु „ „	„ १-) „ „ २-॥)
७. ऋग्वेदशतक (श्री स्वामीअच्युतानन्दजी)	„ १) „ „ २-)
८. वैदिक स्वर्ग (उर्दू) (श्री पं० चमूपति जी)	„ ॥॥) „ „ ॥)
९. वेद से वेदार्थ (श्री प्रो० रुलियाराम जी)	„ १) „ „ २-)
१०. देवयज्ञ (श्री पं० बुद्धदेव जी)	„ १) „ „ २-)
११. स्वर्ग „ „	„ १-) „ „ ३-)
१२. मरुत्सूक्त „ „	„ १) „ „ १)
१३. Glimpses of Dayananda	„ ११) „ „ ११)
१४. Immortal Sayings of Dayananda	„ १) „ „ २-)
१५. दयानन्द-रत्नमाला	„ ३-) „ „ २-)
१६. जीवन-ज्योति (ले० पं० चमूपतिजी एम० ए०) सामवेद के प्रथम ११४ मन्त्रों की सरस-व्याख्या	१॥)
१७. मौत के बाद रूह की हालत (उर्दू) पं० मनसाराम कृत १०० प्रति का	३)
१८. वेदार्थ-कोष—मूल्य	३०)
१९. आर्य समाज और सनातन धर्म	१०० प्रति का ३)
२०. श्राद्ध	„ ३)
२१. निरुक्त का मूल वेद में—(श्री शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी)	१-)
२२. आर्य समाज (उर्दू) १०० प्रति का	६)
२३. ऋग्वेद-देवता—(पं० भगवदत्त जी)	॥॥)
२४. शतपथ ब्राह्मण भाषा भाष्य प्रथम भाग (श्री पं० बुद्धदेव जी)	३)

अधिष्ठाता—श्री चमूपति-साहित्य-विभाग

आर्य-प्रतिनिधि-सभा, गुरुदत्त भवन, लाहौर।

जनगणना १९४१

विज्ञप्ति सं० ६

जैसे पहिले सूचना दी जा चुकी है, जनगणना दो प्रकार की है:—

(१) प्रारम्भिक जनगणना (Preliminary Census) जो कि कुछ प्रान्तों में जनवरी के तीसरे सप्ताह से शुरू हो जायगी और कुछ में फरवरी के प्रारम्भ से शुरू हो जायगी ।

(२) अन्तिम जनगणना (Final Census) जो कि २७, २८, फरवरी और १ मार्च को होगी । प्रारम्भिक जनगणना में ही जनगणना सम्बन्धी सारा कार्य होता है और सब प्रश्नों के उत्तर लिखे जाते हैं । उस जनगणना में गणक (Enumerators) प्रत्येक घर में जाकर जनगणना सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर लिखते हैं । अन्तिम जनगणना तो साधारण उपस्थिति (General Roll call) की तरह होती है इसलिये प्रारम्भिक जनगणना के सम्बन्ध में सचेत रहने तथा निम्न प्रकार कार्य करने की आवश्यकता है:—

१. यह देखना चाहिये कि आपके यहां कोई गृह ऐसा तो नहीं जिस पर नम्बर न लगा हो । यदि कोई ऐसा घर हो तो उसकी सूचना तत्काल जिले अथवा तहसील के जनगणना अफसर को देनी चाहिए ।

२. यह देखना चाहिए कि गणक लोग प्रश्नों का वही उत्तर दर्ज करते हैं जो कि प्रत्येक व्यक्ति दर्ज कराता है । अन्यथा लिखने वाले की रिपोर्ट तत्काल जनगणना अफसर को करनी चाहिए । गलत लिखने वाला जनगणना एक्ट १९३६ के अनुसार दण्डनीय है ।

३. भारत सरकार की ओर से प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वह प्रश्न नं० ३ (जाति) तथा प्रश्न नं० ४ (धर्म) के उत्तर में जो कुछ लिखायेगा वही लिखा जायगा । गणकों को कोई अधिकार न होगा कि वह इन प्रश्नों के उत्तर में अपनी ओर से कुछ और लिखें । इसलिये प्रत्येक आर्य को यह अधिकार है कि वह सार्वदेशिक सभा की आज्ञानुसार धर्म के कोष्ठक में "वैदिक धर्म" लिखाये और "नसल, कबीला, जाति" के कोष्ठक में आर्य लिखाये । यदि कोई गणक ऐसा लिखने से इन्कार करे तो उसकी सूचना तत्काल प्रान्त के जनगणना सुपरिण्टेण्डेण्ट को तार द्वारा तथा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को पत्रों द्वारा देनी चाहिये ।

(६६४)

४. प्रश्न नं० १८ (मातृभाषा) के उत्तर में अपनी मातृभाषा लिखवानी चाहिये । जो हिन्दी जानते और बोलते हों वे अवश्य हिन्दी लिखायें ।

५. अन्य भाषा (प्रश्न नं० १९) जिनकी मातृ भाषा बंगाली, मराठी, तामिल इत्यादि हो वे इस प्रश्न के उत्तर में अपनी भाषा “हिन्दी” अवश्य लिखावें ।

६. प्रश्न संख्या २० (लिपि) Script इस प्रश्न के उत्तर में देवनागरी अथवा हिन्दी लिखवानी चाहिये ।

आवश्यक सूचना

अधिकतर प्रान्तों में सरकार की ओर से यह निश्चय किया गया है कि हिन्दी और उर्दू बोलने वालों की जवान “हिन्दुस्तानी” लिखी जावे । सार्वदेशिक सभा की ओर से सरकार से निवेदन किया जा रहा है कि वे हिन्दी बोलने वालों को हिन्दी लिखाने की आज्ञा दे । इस निवेदन के सम्बन्ध में सरकार का अन्तिम निश्चय क्या होगा यह कुछ नहीं कहा जा सकता । इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रश्न सं० २० (लिपि) के खाने में हिन्दी अथवा देवनागरी अवश्य लिखाई जाये ।

अन्तिम निवेदन

प्रत्येक आर्य समाज तथा आर्य का यह कर्तव्य है कि वे जन गणना तक के बाकी दिनों में अपने शहर, गली कूचा तथा इर्द गिर्द के ग्रामों में घूमकर प्रत्येक व्यक्ति तक सार्वदेशिक सभा की आज्ञा पहुँचाये इसके लिये निम्न प्रकार की पर्चियां छपाकर घर २ पहुँचानी चाहिये ।

प्रश्न	सं० ४ धर्म	सं० ३ नसल, कबीला, जाति	सं० १८ भाषा	सं० २० लिपि
उत्तर	वैदिक धर्म	आर्य	हिन्दी	देवनागरी या हिन्दी

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ये पर्चियां हरिजनों के घरों में अवश्य पहुँच जायें । हरिजनों पर विधर्मी लोग किसी प्रकार का दबाव डालकर उनकी गणना किसी विधर्म में न करा दें, इस सम्बन्ध में आपको सचेत होना चाहिये ।

इस बात पर भी दृष्टि रखनी चाहिये कि विधर्मी लोग, अपनी संख्या को बढ़ाने के लिये कोई अनुचित उपाय न कर सकें । यदि इस प्रकार की कोई शिकायत हो तो इसकी सूचना जनगणना अफसर को देनी चाहिये ।

सुधाकर एम० ए०

मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

बैतूल (सी० पी०) की दुर्घटना

आर्य समाज चिचोली जिला बैतूल का रजत जयन्ती महोत्सव बड़े समा-
रोह पूर्वक ता० २५ से २७ दिसम्बर तक मनाया गया। अन्य वक्ताओं के साथ
श्रीमान् धर्मवीर पं० ज्ञानेन्द्र देव जी सूफी मौलवी फाजिल देहली भी तशरीफ
लाए थे। आप जन्म से मुसलमान हैं परन्तु वैदिक धर्म की महत्ता का प्रकाश
आपकी आत्मा पर पड़ा और आपने उसे स्वीकार किया।

सम्भवतः एक जन्म के मुसलिम भाई को वैदिक धर्म का प्रचार करते
देखकर हमारे चिचोली पोलिस के सब इन्स्पेक्टर साहब जनाब अहमद खां
के हृदय को चोट पहुँची और चूँकि आप मुसलिम सम्प्रदाय के विकट
पक्षपाती हैं आपने आर्य समाज के जलसे में विघ्न पैदा करने की इच्छा
से अपनी टेबल और कुर्सी “कमला नेहरू पंडाल” के अन्दर जहाँ कि करीब एक
हजार महिलाएँ बैठी थीं रख ही नहीं दी किन्तु आप भी वहाँ जाकर नोट
लेने की गरज से डट गए। आपके दो मातहत भी साथ में थे। श्रीमान् सब इ०
सा० से समाज के एक स्वयं सेवक ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वे कृपाकर
उस स्थान से जहाँ कि स्त्रियाँ बैठी हैं और जो स्थान केवल स्त्रियों के लिए ही
रिजर्व है और जहाँ ‘महिला मण्डल’ के साइन बोर्ड भी लगे हुए हैं दूसरे
स्थान पर या मंच के पास हट जावें और यहाँ तक कि उनकी कुर्सी टेबल
भी उठाने के लिए स्वयं सेवक स्वयं तैयार था परन्तु जैसा ऊपर लिखा है जनाब
सब इ० सा० विघ्न डालने की इच्छा से बिगड़कर बोले कि “तुम बड़े खूबसूरत
हो और तुम्हारी औरतें बड़ी खूबसूरत हैं मैं कुछ उनसे लिपटा तो जाता नहीं
साले आर्यों की औरतें अभी तो फायशा रंडियों की तरह प्रोसेशन में गाना गाते
हुए घूम रही थीं और अब बड़ी पर्दानशीन बन गई हैं।” इस पर स्त्रियों और
मर्दों में बहुत बड़ी उत्तेजना हो गई परन्तु समय का विचार करते हुए सामाजिक
नेताओं ने बड़े प्रयत्न से परिस्थिति को सम्भाला और जनता को शान्त किया
यहाँ तक कि जनता में अधिक जोश न पैदा हो जाए इस भावना से सब इ० सा०
की काली करतूत पर जो प्रस्ताव जनता लाने की इच्छा कर रही थी वह भी
पेश नहीं किया गया।

(६६६)

दूसरे दिन ता० २६ को सायंकाल के समय जलसा करीब ८ बजे रात्रि को समाप्त होने पर जनता अखाड़े का खेल देखने जा रही थी कि पण्डाल के बाहर बाजार में जनाब सब इ० सा० के हृदय में पुनः कौन सी साम्प्रदायिक लहर उठी और उनका किससे झगड़ा हुआ कहा नहीं जा सकता किन्तु उनके कथन से जो उन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों के सामने कहा यह प्रतीत हुआ कि किसी एक व्यक्ति ने उन्हें मार दिया। इस दुर्घटना पर आर्य समाज ने खेद प्रदर्शित किया। इस बात का बतंगड बनाया जा रहा है और किसी एक स्थान पर ५ आर्य गिरफ्तार कर लिए हैं और अभी जांच जारी है आर्य भाइयों को गिरफ्तार करने पर जब कि वे चिचोली से बैतूल लाये जा रहे थे, तथा जिस दिन हमारे जिले के श्रीमान् कप्तान साहब जनाब वली उल्ला साहब भी चिचोली में ही हाजिर थे, इन गिरफ्तार हुए आर्य बन्धुओं को हिन्दू तथा आर्यों के हृदय में भय और आतंक फैलाने की इच्छा से उन्हें २० कानिस्टबिलों के द्वारा, हथकड़ी लगाकर बस्ती भर में उनका प्रदर्शन कराया। अफवाह गरम है कि इस जोश में होश खोकर कई आर्य भाइयों को गिरफ्तार करने वाले हैं। विश्वस्त सूत्र से यह भी पता चला है कि गिरफ्तारी करने के पश्चात् कुछ मुसलमान पुलिस कर्मचारियों ने गिरफ्तार शुदा भाइयों का यज्ञोपवीत तोड़ने की भी चेष्टा की परन्तु वे कामयाब न हो सके। हम जिले तथा प्रान्त के बड़े बड़े आफीसरान से यही प्रार्थना करते हैं कि वे बहुत बारीकी के साथ वास्तविक परिस्थिति की जांच करें और जो दोषी हो उन्हें ही उचित दण्ड दे। बिना कारण इस छोटे से झगड़े को जिसे जनाब सब इ० साहब ने संभवतः मोल लिया है साम्प्रदायिक रंग न दिया जाय, देखिये आगे क्या होता है ?

ह० गणेशदत्त आर्य

प्रेसीडेंट जिला कांग्रेस कमेटी तथा

मंत्री आर्य समाज श्रद्धानन्द भवन चिचोली

डाक० चिचोली जि० बैतूल (सी० पी०)

ता० ७—१—४१



जन गणना और श्री० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी कार्यकर्ता प्रधान सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य

वीर सावरकर ने अपने २२ जनवरी के वक्तव्य में आर्य समाजियों को प्रेरणा की है कि वे आगामी जन गणना में अपने को हिन्दू लिखायें। चूँकि आर्य लोग हिन्दुओं से पृथक् अपनी गणना कराते हैं इसलिए उन्हें भय है कि कहीं सरकार धीरे २ सिक्खों की भांति आर्यों की भी हिन्दुओं से पृथक् गणना करने पर उतारू न हो जाय। यह बहुत अच्छा होता यदि वीर सावरकर इस विषय पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से पत्र-व्यवहार करते जिससे जन गणना जैसे अखिल भारतीय विषयों पर आर्य सामाजिक जगत मार्ग प्रदर्शन और प्रकाश ग्रहण करता है।

जन गणना के उद्देश्य के लिए 'हिन्दू' शब्द साधारणतया रूढ़िवादी 'हिन्दुओं' का द्योतक होता है और 'आर्य' शब्द से सुधारवादी हिन्दुओं का बोध होता है। ब्रह्म समाजी भी सुधारवादी हिन्दुओं की कोटि में परिगणित होते हैं। इन सब का योग अन्य हिन्दुओं के योग में सम्मिलित होता है। सन् १८६१ से सरकार इसी प्रथा का अवलम्बन करती आ रही है। सुधारवादी अङ्ग प्रत्येक समाज का जीवन तत्व होता है। अतः उस अङ्ग की उन्नति को अङ्कित कराना एक विशेष महत्व रखता है। आर्य समाज का उद्देश्य हिन्दू समाज को नव जीवन प्रदान करके उसकी आदिकालीन महिमा को पुनः प्रतिष्ठित करना है जिसका 'आर्य' शब्द से आभास मिलता है। हिन्दुओं के हितों और उनकी रक्षा के अपने उत्साह में आर्य समाज किसी के सामने नहीं झुकता। हिन्दू हित के लिए प्रत्येक सम्भव त्याग करने में आर्य समाजी सदैव सब से आगे रहे हैं और इस समय हिन्दू हितों की रक्षा किस प्रकार हो सकती है, इस बात को भी वही अच्छी तरह जानते और समझते हैं। अस्पृश्यता और जात-पात की

(६६८)

त्रुटियों को निर्मूल करके हिन्दू जाति के संगठन के लिए आर्य समाज मैदान में डटा हुआ है ।

अतः स्वयं हिन्दू संगठन के कार्य के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सुधारवादी हिन्दुओं (आर्यों) की उन्नति हो । वीर सावरकर की आशंका भ्रम पर आश्रित है । आर्यों ने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया है कि वे हिन्दुओं से पृथक् हैं और भविष्य में भी उनकी यही स्थिति रहेगी ।

सिक्खों का उदाहरण ठीक नहीं है क्योंकि सिक्खों की प्रबल प्रेरणा पर ही सरकार ने उन्हें पृथक् परिगणित और अङ्कित किये जाने की आज्ञा दी है । क्योंकि वे पृथक् राजनैतिक अधिकारों के लिए अपने वर्ग को पृथक् अङ्कित कराना चाहते थे । हिन्दुओं से पृथक् अपनी स्थिति की कल्पना भी आर्य समाजियों ने कभी नहीं की है ।

अन्त में मैं समस्त देश के आर्यों को प्रेरणा करता हूँ कि वे अपनी सुनियन्त्रित और सुसंगठित शक्ति की गौरवमय परम्परा की रक्षा करते हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आदेशों का पालन करें और आगामी जन गणना में 'धर्म' और 'जाति' के प्रश्नों के उत्तर में क्रमशः 'वैदिकधर्म' और 'आर्य' लिखायें ।

श्री प्रधान जी का उपर्युक्त वक्तव्य स्वयं अपने में स्पष्ट है ।

वीर सावरकर जी आर्य समाज के नियमित सदस्य न होते हुए भी उसके बड़े प्रेमी और प्रशंसक हैं । हिन्दू हित के लिए आर्य समाज की भावना और उसके कार्य पर उन्हें कोई आशंका नहीं है । फिर हमारी समझ में यह नहीं आया कि उपर्युक्त वक्तव्य का निकालना उन्होंने क्यों आवश्यक समझा । निश्चय ही आर्य समाज की जन गणना विषयक नीति के सम्बन्ध में उन्हें भ्रम हुआ है ।

हमें विश्वास है कि आर्य समाज की नीति के उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह विषय उन पर भली भाँति स्पष्ट हो जायगा और यह विषय विवाद का विषय न बनने दिया जायगा ।

आर्य विवाह ऐक्ट में आर्य समाजियों की परिभाषा में आर्य समाजी हिन्दुओं के एक वर्ग के रूप में स्वीकृत हो चुके हैं । यों कहिए आर्य समाजी हिन्दुओं के दायरे से बाहर नहीं हैं । इस कानूनी परिभाषा की विद्यमानता में आर्य समाजियों को हिन्दुओं से पृथक् अङ्कित किये जाने की आशङ्का हो ही नहीं सकती । आशा है हमारे आर्य और हिन्दू भाइयों की जो भ्रमवशात् जनगणना

(६६६)

में आर्य समाजियों को 'हिन्दू' अङ्कित किए जाने का यत्न तथा प्रचार कर रहे हैं। भ्रान्ति मिट जायगी और वे इस प्रकार के प्रचार में अपनी शक्ति और परिश्रम व्यर्थ न गवायेंगे।

गढ़वाल और डोला पालकी की समस्या

गढ़वाल के आर्यों (शिल्पकारों) की डोला पालकी की समस्या पर गतांक में प्रकाश डालते हुए हमने आशा प्रकट की थी कि वहां १-१२-४० से जो २ बारातें रुकी हुई हैं वे शीघ्र निकल जायँगी और इस प्रकार समस्या जटिल न बनने दी जायगी। परन्तु इन पंक्तियों को लिखते समय तक हमें इन बारातों के निकलने की कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है। उधर सबणों के अत्याचारों के विरुद्ध आर्यों का असन्तोष बहुत बढ़ गया है और यह समाचार प्राप्त हुआ है कि वे मुसलमानों के साथ मिलकर सत्याग्रह के उपाय का आश्रय लेने की सोच रहे हैं। महात्मा गांधी जी भी इस ओर से विशेष चिन्तित प्रतीत होते हैं। उन्होंने जब तक ये बारातें नहीं निकल जाती हैं तब तक के लिए गढ़वाल के सत्याग्रहियों को सत्याग्रह करने से रोक दिया है और उन्हें प्रेरणा की है कि वे इस समस्या को हल करने का यत्न करें। हरिजन सेवक संघ भी इस दिशा में प्रगति शील है। सरकार इस सम्बन्ध में क्या कार्यवाही कर रही है यह हमें विदित नहीं हुआ है। उसे शीघ्र से शीघ्र इस दिशा में हस्ताक्षेप करके इस समस्या को हल करना चाहिए। ऐसा न हो कि उसकी उदासीनता से मामला और भी खराब हो जाय।

गढ़वाल के आर्य भाइयों के कष्टों को हम गली भांति अनुभव करते हैं। सबणों के घोर अत्याचारों के होते हुए भी उन्होंने जिस दृढ़ता और धर्म प्रेम का परिचय दिया है उसको सामने रखकर जब हम मुसलमानों के साथ मिलकर उनके सत्याग्रह करने के समाचार पर सोचते हैं तो हमें यह समाचार बिल्कुल गलत प्रतीत होता है। हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि गढ़वाल के हमारे आर्य भाई एक क्षण के लिए भी ऐसी बात सोच सकते हैं। कष्टों में ही धर्म प्रेम का परिचय दिया जाता है, यह बात गढ़वाल के आर्यबन्धुओं के सामने रखे जाने की आवश्यकता नहीं है। इस बात का वे वर्षों से अच्छा परिचय दे रहे हैं।

आर्य समाज पर इस समस्या के उचित हल की सबसे अधिक उत्तरदायिता है। सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा जिला उपसभा बिजनौर तीनों मिलकर इसके तल के लिए प्रयत्नशील हैं। सभा के प्रचारक आर्य भाइयों की सहायतार्थ गढ़वाल गए हुए हैं। स्थिर प्रचार तो गढ़वाल प्रान्त में वर्षों से हो रहा है फिर भी उसे और भी व्यवस्थित करने और बढ़ाने के लिए उपाय किए जा रहे हैं जिससे इस प्रकार की समस्याएँ निर्मूल हो जावें।

(६७०)

बैतूल की दुर्घटना

पाठक अन्यत्र बैतूल की दुर्घटना में एक मुस्लिम पुलिस इन्स्पेक्टर द्वारा आर्य देवियों के अपमान के दुःखद समाचार पढ़ेंगे।

यदि ये समाचार सत्य हैं और जिनके सत्य न होने में हमें कोई विशेष सन्देह नहीं है विशेषतः जिम्मेवार व्यक्तियों और संस्थाओं के अनुसंधानों के प्रकाश में, तो कौन ऐसा आर्य व हिन्दू होगा जिसे अपनी माताओं और बहनों के अपमान से दुःख और रोष न होगा। इस अवसर पर आर्य भाइयों ने स्थिति पर काबू रखकर दूर दर्शिता और शान्ति का अच्छा परिचय दिया है। सरकार को चाहिये कि वह आर्य समाजियों के इस रुख का आदर करे और इस मामले की खुली और निष्पक्ष जांच कराके अपराधी को उचित दण्ड दे जिससे भविष्य में इस प्रकार का साहस करने का किसी को साहस न हो और यह घटनाएँ दुहराई न जायँ। स्त्री जाति के सम्मान की रक्षा प्रत्येक सभ्य समाज और सरकार का एक उच्चतम कर्तव्य माना गया है। देखना है कि सरकार इस मामले में अपने इस कर्तव्य का कैसा पालन करती है ?

आर्यसमाज दीवान हाल देहली

आर्यसमाज देहली का ५६ वां वार्षिकोत्सव गत २४, २५, २६, जनवरी को सदैव की नाई समारोह पूर्वक समाप्त हुआ। इन दिनों यह समाज दीवान हाल में स्थित है जो देहली नगर का एक दर्शनीय भवन है और जिसका चित्र सार्वदेशिक के गताङ्क में प्रकाशित हो चुका है। यह भवन आर्यसमाज के अनन्य भक्त स्वर्गीय दीवानचन्द जी के दान से 'दीवानचन्द ट्रस्ट' द्वारा बनाया गया है।

आर्य समाज दीवान हाल के आधीन कई संस्थाएँ सफलता पूर्वक चल रही हैं। इस समाज की आर्य कन्या पाठशाला देहली की प्रसिद्ध कन्या शालाओं में से है। गत वर्ष तक यह पाठशाला एंग्लो वर्नक्यूलर मिडिल तक स्वीकृत थी। इस वर्ष 'बोर्ड ऑफ सेकैण्डरी एजुकेशन' से हाई स्कूल के रूप में स्वीकृत हुई है। इसके अतिरिक्त यह पाठशाला हिन्दी रत्न भूषण और प्रभाकर की परीक्षाओं की भी व्यवस्था करती है। ३१ मार्च १९४० को पाठशाला में ३६० कन्याएँ थीं। पाठशाला का वार्षिक बजट १३३६७ का है।

इसी प्रकार पाटौदी हाउस में एक आर्य अनाथालय १९१६ से अपना कार्य कर रहा है। इस समय इसमें ८५ बालकों और ४० बालिकाओं का पोषण और शिक्षण हो रहा है। इसमें बच्चों को स्कूलीय तथा कला कौशल यथा बढ़ई, दर्जी पेटिंग इत्यादि के कामों की शिक्षा दी जाती है। इस वर्ष का बजट १३०६५ का है।

(६७१)

भूली भटकी स्त्रियों की रक्षा तथा विधवाओं और असहाय देवियों की सहायता आदि के लिए इस समाज के आधीन 'आर्य बनिता विश्राम आश्रम' नामक एक संस्था चल रही है। सर्वसाधारण जनता तथा सरकारी क्षेत्रों में इस संस्था का अच्छा मान है। इसका वार्षिक व्यय ६८० रु० के लगभग है। श्री सेठ जुगलकिशोर जी विड़ला के दान से ही इस आश्रम का अधिकांश व्यय चलता है।

इस समय आर्य समाज दीवान हाल के प्रधान श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० तथा मंत्री श्री बा० केदारनाथ जी बी० ए० हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त आर्य समाज की ओर से उपदेशक और भजनोपदेशक नियुक्त हैं जो देहली तथा उसके आस पास सफलता पूर्वक प्रचार करते रहते हैं।

यह नोट अपूर्ण रहेगा यदि इस सम्बन्ध में हम देहली की आर्य सामाजिक प्रगतियों के प्राण श्रीमान् लाला नारायणदत्त जी के नाम का उल्लेख न करें। देहली में आर्य समाज की प्रगति को विस्तृत और गहरा बनाने में जिन लोगों का उल्लेखनीय योग रहा है उनमें श्री लाला जी का नाम एक विशिष्ट स्थान रखता है। श्री लाला जी दीवानचन्द ट्रस्ट के भी मंत्री हैं। दीवान हाल उन्हीं के एक मात्र परिश्रम का फल है।

श्री सर राधाकृष्णनन् और भारतीय संस्कृति

कलकत्ता की शिक्षा कान्फ्रेंस में भाषण करते हुए सर राधाकृष्णनन् ने गत २१ दिसम्बर को उपर्युक्त विषय पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला:—

“ऋग्वेद की महिमा पर बात चीत करते हुए एक प्रसिद्ध लेखक ने कहा था कि यदि मानव जाति को अपने सबसे पुराने लेख वा ग्रन्थ को देखने की इच्छा हो तो उसे ऋग्वेद देखना चाहिए। उन्हें यह भी विदित होगा कि उपनिषदों की शिक्षा और विचार धारा का यूनानी सभ्यता के विकाश पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

वर्तमान अवस्थाओं को भी देखने से विदित होगा कि इन आदर्शों ने संसार की विचार धारा पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। गत १०० वर्ष से पश्चिमी देशों में जो जागृति फैल रही है, उस पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि इस जागृति में भारत के विचारों का बहुत बड़ा प्रभाव है। इटली, जर्मनी और अमेरिका की जागृति तथा रोमियां रोला जैसे वीसियों उच्चकोटि के लेखकों ने भारत के विचारों से प्रकाश ग्रहण किया था।

यद्यपि भारतवर्ष की राजनैतिक और आर्थिक अवस्थाएँ ऐसी नहीं हैं, जिन पर गर्व किया जा सके तथापि हमारी संस्कृति अकेली ऐसी है, जो अब तक जीवित है और जो संसार की विचार धारा को प्रभावित कर रही है। संक्षेप में भारतीय संस्कृति की महिमा यही है।”

पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रचित

अमूल्य पुस्तकें

योग-रहस्य

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक में योग के अनेक रहस्यों को प्रगट करते हुए उन विधियों को बतलाया गया है जिनसे कोई भी नया आदमी जिसे रुचि हो योग के अभ्यासों को कर सकता है। इसी पुस्तक में 'योग-दर्शन' भाष्य सहित भी है। आत्मोन्नति के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पुस्तक में २०० से अधिक पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटे पेपर पर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल १-) प्रति।

मृत्यु-परलोक

सत्तरहवाँ-संस्करण

इस पुस्तक में शरीर, अन्तःकरण तथा जीवन का स्वरूप और भेद और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरक इत्यादि लोकों का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि आदि विषयों पर अति सुन्दर रूप से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली ही है। अतः इसे पढ़े बिना कोई व्यक्ति न रहना चाहिए। पुस्तक में लगभग ३०० पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटा पेपर तथा मोटे टाइप में अति सुन्दर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल १-)

विद्यार्थी जीवन रहस्य

द्वितीय-संस्करण

विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को जीवन निर्माण में सहायता देनेवाली
अमूल्य पुस्तक

इस पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए उनके जीवन के मार्ग का सच्चा पथ प्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलावद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश अंकित हैं। अतः प्रत्येक नवयुवक तथा विशेष कर विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तक ऐन्टिक पेपर पर छपी हुई है। पृष्ठ संख्या लगभग १०० हैं। मूल्य केवल प्रचारार्थ ३-) प्रति।

नोट—पुस्तक विक्रेताओं को इन पर उचित कमीशन भौ दिया जायगा।

पुस्तक मिलने का पता—

कार्यालय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

बलिदान भवन, देहली।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित

जगत् प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री

घोखे से बचने के लिये आर्यों को

बिना वी० पी० भेजी जाती है ।

पहिले पत्र भेज कर 5- नमूना फ्री मंगालें

नमूना पसन्द होने पर आर्डर दें

अगर नमूना जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेज दें

अन्यथा

कूड़े में फेंक दें

फिर

मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं ।

क्या

इससे भी बढ़ कर कोई सच्चाई की कसौटी हो सकती है ।

भाव ॥) सेर, ८० रुपये भर का सेर

थोक ग्राहक को २५) प्रति मैकड़ा कमीशन ।

मार्ग-व्यय ग्राहक के जिम्मे

स्वामी दयानन्द कृत मृत्यार्थ प्रकाश १) और संस्कार विधि २) में मिलती है ।

परन्तु पुस्तकों का मूल्य मार्ग व्यय सहित पेशगी भेज दें ।

रामेश्वरदयालु आर्य पो० अमोली, फतेहपुर (यू०पी०)

हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१-ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव वतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसल्मान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारे बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २।)

२-मेरी अबीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव वतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किसकूट नीति से अबीसीनिया की सीमा पर भगड़ा कर अबीसीनिया को हड़प लिया आँख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

३-हमारी जापान यात्रा— इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्वकी अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १।।)

पुस्तक मिलने का पता:—

बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार
वांदा (यु० पी०) जी० आई० पी० रेलवे।

पं० खुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवारास चावला द्वारा
“चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस”, श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

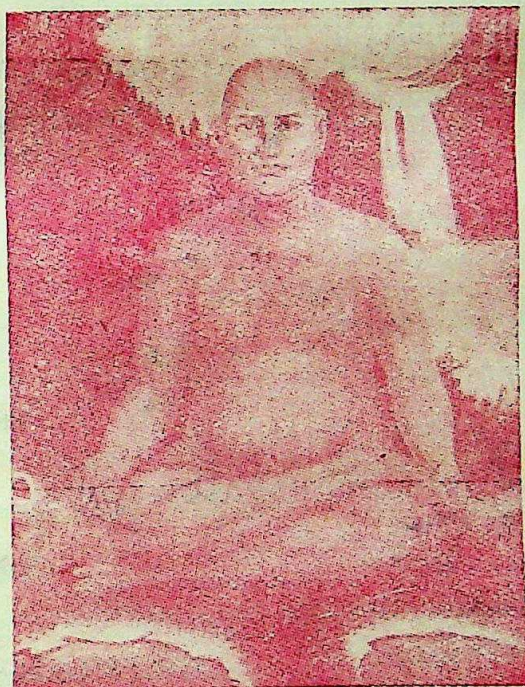
मार्च १९४१



Reg. No. L 2121

यजुर्वेद

सावदाशिक



सम्पादक— प्रो० सुधाकर, एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश २), एक प्रति का ३) विदेश से १ शि० वार्षिक

सामवेद

लेख-सूची

संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	वेद की शिक्षाएँ		१
२.	ईश्वर प्राप्ति	स्व० श्री स्वा० दर्शनानन्दजी महाराज	२
३.	मन मन्दिर	श्री बा० पूर्णचन्द्रजी (एडवोकेट)	१०
४.	गुरुकुल समस्या	आचार्य विश्वश्रवाः	१८
५.	वेदाधिकार	श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज	१६
६.	आर्य विवाह कानून की विस्तृत व्याख्या		१६
७.	सुमन-सञ्चय	रघुनाथ प्रसाद पाठक	२२
८.	आर्यसमाज की चिनगारियां	श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज	२५
९.	वेदों में प्रक्षेप	श्री म० नारायणस्वामीजी महाराज	२७
१०.	गढ़वाल में डोला पालकी की समस्या का हल अभी भी होना है		४२
११.	असतोमा सद्गमय तमसोमा ज्योतिरर्गमय मृत्योर्मांमृतं गमय		४५
१२.	Grandeur of Sanskrit	Pt. Dhareshver	५८
१२.	सम्पादकीय		६१

आर्यसमाज के नियोपनियम

१।) प्रति सैकड़ा)। प्रति

प्रवेश-पत्र ॥) सैकड़ा ।

मिस्त्रने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

सस्ता, ताजा, बढ़िया सब्जी व फूल-फल का

बीज और गाछ हमसे मँगाइये ।

पता:—मेहता डी० सी० वर्मा, बेगमपुर (पटना)

बीज

॥ ओ३म् ॥



* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६	{ मार्च १९४१ ई०]	फाल्गुन १९६७	{ अंक १
		[दयानन्दाब्द ११७	



कृणवन्तो विश्वमार्यम् । ऋग् १।६३।५

सारे संसार को आर्य बनाओ ।

Make every human being an Arya (Gentleman).

*

*

*

मधुमतीं वाचमुदेयम् ।

अ० १६।२।२

मैं मीठी वाणी बोलूँ ।

May I ever utter sweet words !

ईश्वर प्राप्ति

(ले०—स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज,)

वेदाहमेतंपुरुषमहान्तमादित्य वर्णतमसः परस्तात् । तमेवविदित्वाऽति
मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय (यजु० ३ । १८)

इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को मोक्ष के साधन का उपदेश करते हैं और बतलाते हैं कि संसार में मोक्ष के बहुत से साधन नहीं; किन्तु जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिए प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं हो सकता। और न सरदी को दूर करने के लिए गरमी के अतिरिक्त और से काम चल सकता है। इसी प्रकार संसार में मनुष्य के जीवन उद्देश्य अर्थात् दुःखों से छूटने का नाम या आगे को दुःख न उत्पन्न होने का नाम मोक्ष बतलाते हुए उसके एक ही साधन को (जिसके अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता) उपदेश करते हैं कि—तुम सर्वव्यापक परमात्मा को जानो, जो परमात्मा सूर्यवत् प्रकाशमय है, जिसमें किसी प्रकार की अज्ञानता या दोषादि का होना सम्भव नहीं, जो सर्व प्रकार के दूषणों से पृथक् है उसी परमात्मा को जानने से ही अति मृत्यु अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष के लिए कोई दूसरा मार्ग हो ही नहीं सकता। वेद के इस मन्त्र को सुनते ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि—

“लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्न तु प्रतिज्ञामात्रेण”

अर्थात् जब तक किसी वस्तु का लक्षण न कहा जावे और उसकी सत्ता के लिये कोई प्रमाण न उपस्थित किया जावे, तब तक उसकी सत्ता प्रतिज्ञा मात्र से नहीं सिद्ध हो सकती। इस कारण जब तक ईश्वर का लक्षण न किया जावे, तब तक “उसके जानने से मुक्ति होती है और परमात्मा के जानने के अतिरिक्त मोक्ष नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा मात्र ही है” इस सिद्धान्त को लेकर महात्मा व्यासजी अपने वेदान्त दर्शन में ईश्वर का लक्षण कहते हैं कि—

“जन्माद्यस्ययतः” । वे० द० १ । १ । २

अर्थ—जिससे इस संसार का जन्म, स्थिति और नाश होता है वह ईश्वर है अर्थात् जो इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला, पालने वाला और नाश करनेवाला है वह ईश्वर है। इस लक्षण को सुनते ही वादी शंका करता है कि तुम्हारा यह

(३)

ईश्वर का लक्षण ठीक नहीं ; क्योंकि यह संसार अनादि है, जब तक जगत् की उत्पत्ति सिद्ध न की जावे, तब तक ईश्वर का यह लक्षण किस प्रकार ठीक हो सकता है—इस कारण से कि वादी की प्रतिज्ञा जगत् को अनादि मानने की है, इस पर यह प्रश्न होता है कि जगत् स्वरूप से अनादि है या प्रवाह से ? यदि यह कहे कि जगत् स्वरूप से अनादि है, तो यह किसी दशा में सत्य हो ही नहीं सकता, इस दशा में जगत् का अविकारी अर्थात् ६ विकारों से पृथक् होना आवश्यक है। वह विकार ये हैं कि—“जायते वर्द्धते संस्थीयते विपरिणम्यते क्षीयते विनश्यते” जिस वस्तु में इन ६ विकारों में से कोई पाया जावे, वह अनादि नहीं हो सकती ; क्योंकि प्रत्यक्ष में भी इन ६ विकारों का उत्पत्तिमान वस्तु में ही होना पाया जाता है। जैसे एक बालक उत्पन्न होता है, बढ़ता है, युवावस्था पर्यन्त बढ़ना बन्द हो जाता है, फिर मूँछ डाढ़ी का निकलना, शरीर में भोजन का आना फिर पक कर निकल जाना आदि विकार होते रहते हैं पश्चात् वृद्ध होना अर्थात् घटना आरम्भ होता है और अन्त को मर जाता है, यही दशा एक वृत्त की है। वह बीज से छोटा-सा अंकुर बनकर उत्पन्न होता है फिर बढ़ता है, फिर एक अवधि तक बढ़कर बढ़ना बन्द हो जाता है, फिर पतझड़ और बसन्त के कारण कभी हरा-भरा होकर फल लाता है, कभी शुष्क होकर नंगा हो जाता है, अन्त को नाश हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु में छहों विकार एक साथ ही हों; किन्तु अपने अपने समय में एक या दो ही रहते हैं, जो उस वस्तु में अपने दूसरे सहचारियों के होने को सिद्ध करते हैं। जब कि हम सम्पूर्ण जगत् को विकार वाला प्रतीत करते हैं, तो उसको किस प्रकार अनादि स्वीकार कर सकते हैं ? अनादि वस्तु के लिये निर्विकार अर्थात् बढ़ने घटने से पृथक् होना आवश्यक है। जब कि यह सृष्टि किसी प्रकार भी विकार रहित सिद्ध नहीं होती, तो किसी प्रकार यह स्वरूप से अनादि नहीं कहला सकती। यदि कहो कि प्रवाह से अनादि है, तो इस प्रवाह के चलने वाले का होना (अर्थात् जो किसी समय बनावे और किसी समय न बनावे) उचित है। इस पर वादी यह कहना है कि यद्यपि जगत् में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दशा बदलती हुई दृष्टि पड़ती हैं; तथापि समष्टि सृष्टि दशा नहीं बदलती इस कारण सृष्टि को स्वरूप से अनादि मानना ठीक है। यहां पर हम वादी से पूछते हैं कि वास्तव में सृष्टि इन सब वस्तुओं के समूह का नाम है या कोई दूसरी वस्तु है ? यदि कहो

(४)

कि वस्तुओं के समूह का नाम सृष्टि है, तो जिस समूह के अवयव दशा बदलते हैं वह समूह विकार रहित नहीं हो सकता—जैसे एक मनुष्य के हाथ, पांव उदर, शिर आदि सम्पूर्ण अवयव निर्बल हो गए यदि वह कहे कि मेरा शरीर निर्बल नहीं हुआ, तो उसे मूर्ख ही कहना पड़ेगा, क्योंकि अवयवों के समूह के अतिरिक्त शरीर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इस कारण सृष्टि के सम्पूर्ण अवयवों को विकारी मानकर सृष्टि को समष्टि रूप से निर्विकार बतलाना सर्वथा अज्ञानता है। यदि वादी कहे कि इन वस्तुओं के समूह के अतिरिक्त सृष्टि कोई दूसरी वस्तु है, तो उसकी सत्ता का प्रमाण देना चाहिए। वादी कहता है कि यदि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु के उत्पत्तिमान होने से और उसका नाश देखने से सृष्टि को उत्पत्तिमान ही स्वीकार किया जावे, तो भी उसका कर्त्ता ईश्वर नहीं हो सकता; क्योंकि सृष्टि स्वभाव से उत्पन्न होती है, स्वभाव के अतिरिक्त सृष्टि का उत्पादयिता कोई नहीं। वादी की इस शंका में भी कि “सृष्टि का उत्पन्न करने वाला स्वभाव है” यह वादी की प्रतिज्ञा है इस कारण इस प्रतिज्ञा की परीक्षा आवश्यक है। इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि स्वभाव द्रव्य है या गुण है? यदि गुण है, तो किस द्रव्य का है? दूसरे गुणों से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता। सृष्ट द्रव्य हैं—इस कारण कोई द्रव्य ही हो सकता है। वादी कहता है कि स्वभाव गुण है, जो प्रकृति में रहता है, प्रकृति के विशेष मिलाप से सम्पूर्ण वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अब हम वादी से कहते हैं कि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार हम स्वभाव को प्रकृति का गुण मानकर उससे सृष्टि की उत्पत्ति मान लेवें, तो नाश किससे होगा? क्योंकि उत्पन्न होना और नाश होना ये दो विरुद्ध गुण हैं, जो किसी एक वस्तुमें रह ही नहीं सकते। अब वादी इसका उत्तर देता है, कि प्रकृति में संसार के नाश और उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है उत्पत्ति संयोग या मिलाप से होती है प्रकृति के अन्तर्गत जल है, जिसका गुण संयोग है। और दूसरी वस्तु प्रकृति में अग्नि है जिसका काम विभाग करना है इस कारण जल से मिलाप होकर वस्तुओं की उत्पत्ति और अग्नि से अवयव भिन्न होकर वस्तुओं का नाश हो सकता है। इस कारण अग्नि और जल दो प्रकार की वस्तुयें प्रकृति के अन्तर्गत होने से विरुद्ध गुणों की एकता का दोष इस स्थान पर नहीं घटता; वादी के इस उत्तर को सुनकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकृति में उत्पन्न करने और नाश करने की शक्तियाँ तीन दशाओं में रह सकती हैं या तो उत्पन्न करने की शक्ति अधिक और

(५)

नाश करने की शक्ति न्यून हो या नाश करने की शक्ति अधिक और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून हो या दोनों सम हों; परन्तु प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति आदि का होना इन तीनों दशाओं में असम्भव है चौथी दशा कोई हो ही नहीं सकती, यदि वादी उत्पन्न करने की शक्ति अर्थात् संयोग को अधिक मानेगा तो प्रत्येक वस्तु बढ़ती ही चली जायेगी कोई वस्तु घटेगी नहीं; क्योंकि जिस क्षण में संयोग की शक्ति की अधिकता से उस वस्तु में पांच परमाणु मिलेंगे, उस क्षण में वियोग अर्थात् घटने की शक्ति के कम होने से चार परमाणु पृथक् होंगे अर्थात् प्रतिक्षण एक परमाणु बढ़ता जायगा। घटने का अवसर कभी आवेगा ही नहीं; परन्तु यह प्रतिज्ञा सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि सृष्टि में वस्तु घटती बढ़ती दोनों दशाओं में पाई जाती है, जो ऐसा मानना असम्भव है, इसलिये यह प्रतिज्ञा स्थिर नहीं हो सकती कि प्रकृति में उत्पन्न करने की शक्ति अधिक है। दूसरे यदि नाश करने की शक्ति अधिक मानी जाये और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून, तो उस दशा में जिस क्षण में पांच परमाणु पृथक् होंगे और चार मिलेंगे, तो इस दशा में प्रतिक्षण प्रत्येक वस्तु से एक परमाणु घटता ही चला जायगा। कोई वस्तु बढ़ेगी नहीं; परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध प्रतीत होती है; क्योंकि जगत् में बहुत वस्तुएँ बढ़ती हुई दृश्य होती हैं। तीसरी दशा यह है कि दोनों शक्तियाँ तुल्य स्वीकार की जावें। उस दशा में जिस क्षण में एक वस्तु पांच परमाणु संयुक्त होंगे, उसी क्षण में पांच ही नियुक्त होंगे; क्योंकि दोनों शक्तियाँ अव्याहत और तुल्य काम कर रही हैं। इस दशा में सृष्टि की कोई वस्तु न बढ़ेगी और न घटेगी; किन्तु सर्व सृष्टि एक ही दशा में रहेगी, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से स्पष्ट असत्य है; क्योंकि प्रत्येक वस्तु सृष्टि में एक-सी नहीं दीखती, सब बढ़ती घटती हुई पायी जाती हैं। जैसा दिन कल था, वैसा आज का दिन नहीं है; क्योंकि उससे अनुमान डेढ़ मिनट के अधिक होता है। आज की रात कल की गत रात के बराबर नहीं वरन् वह उससे न्यून होगी। इस प्रकार विचार करने से सम्यक्तया बोध होता है कि स्वभाव से उत्पत्ति का होना असम्भव है, दूसरे संयोग और वियोग दोनों गुण कर्म से उत्पन्न होनेवाले हैं और कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक, यह प्रश्न होता है ? यदि यह कर्म प्रकृति में स्वाभाविक धर्म मान लिया जावे, तो कोई प्राकृत वस्तु स्थिर नहीं पावेगी क्योंकि स्वाभाविक

(६)

धर्म किसी वस्तु का रुक नहीं सकता ; परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध है ; क्योंकि हम बहुत वस्तुओं को स्थिर देखते हैं ।

अब वादी कहता है कि कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है; परन्तु जिन वस्तुओं को हम स्थिर देखते हैं, उनको पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ने रोका हुआ है, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगी, फिर कोई प्राकृत वस्तु चलती हुई नहीं दीखेगी; क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उस पर प्रभाव डालती है—जैसे एक गाड़ी चल रही है, दूसरी स्थिर है, जब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति दोनों पर तुल्य प्रभाव रखती हैं ।

प्रकृति में कर्म को स्वाभाविक धर्म मानने से एक का चलना और दूसरी का न चलना किस प्रकार सम्भव हो सकता है, उक्त दोषों के अतिरिक्त पृथ्वी भी प्रकृति से बनी है, वह भी गतिमान होने से किसी नियम के आधीन नहीं हो सकती । उसका प्रत्येक परमाणु गतिमान है, इस कारण उनका संयोग हो ही नहीं सकता । क्योंकि पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु में उनका स्वाभाविक धर्म जो कर्म है, उसे पृथक् करने के लिये उपस्थित है । जिससे पृथ्वी का आकर्षण भी नहीं हो सकता । इस पर वादी कहता है कि प्रकृति का प्रत्येक परमाणु गतिमान है और पृथ्वी का आकर्षण उनको रोके हुए है, जिसको दूसरी शक्ति अर्थात् अग्नि आदि से सहायता मिलती है, वह पृथ्वी की शक्ति को दबाकर चली जाती है, जिसको सहायता नहीं मिलती वह रुकी रहती है ।

अब फिर प्रश्न होता है कि दूसरी शक्ति जिसकी सहायता से एक गाड़ी चलती है और दूसरी उसकी सहायता न होने से रुकी हुई है, यह सहायता देना उस शक्ति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक ? यदि कहो स्वाभाविक धर्म है, तो उसको दोनों गाड़ियों को सहायता देना चाहिए, जिससे दोनों गाड़ियां चलेंगी या स्थिर रहेंगी । एक का चलना एक का न चलना दोनों असम्भव है । इस कारण जगत् को उत्पत्तिमान और ईश्वर को उसका उत्पन्न करने वाला मानने के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से व्यवस्था हो ही नहीं सकती । इसी अवसर पर वादी फिर शंका करता है कि यदि यह भी स्वीकार कर लिया जावे कि कोई जगत् का कर्त्ता है, तो उसके होने में प्रमाण क्या है ? क्योंकि यदि उसके होने में कोई प्रमाण हो ; तो उसके जानने से मुक्ति हो सकती है, परन्तु जिसके होने में कोई प्रमाण ही नहीं, तो उसको किस प्रकार जान सकते हैं ? क्यों कि ईश्वर तीन

(७)

काल में प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं और जिसका प्रत्यक्ष न हो, उसे अनुमान से कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर फिर उसके अनुसार अनुमान होता है और जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो, उसके लिये शब्द प्रमाण हो ही नहीं सकता । जब ईश्वर को प्रमाण से जान नहीं सकते, ईश्वर का होना सत्य नहीं और न उसके जानने से मुक्ति ही हो सकती है, परन्तु जब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं को इन्द्रियों से ज्ञान न होवे वह नहीं होती, यदि ऐसा मानों तो जिन इन्द्रियों से न देखने से तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो, उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो । यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं, तो आत्माश्रय दोष है अर्थात् स्वयं ही दृश्य वस्तु और स्वयं ही देखने का साधन नहीं हो सकता । यदि कहो हम दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं इसलिये आंख का होना आंख से ही प्रतीत होता है, परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्योंकि दर्पण में आंख नहीं दीखती, किन्तु आंख का आभास उससे अनुमान के द्वारा जानना तो मान सकते हैं, परन्तु यह कहना कि आंख से आंख को देखते हैं, सत्य नहीं; किन्तु आंख से आंख के आभास को देखकर उससे आंख के होने का अनुमान करते हैं कि यह सत्य होगा अस्तु, आंख का तो अनुमान से ही ज्ञान हो गया; परन्तु रसनेन्द्रिय का किससे ज्ञान होगा ? न तो वह रूप है जो आंख से दीखे और न शब्द है; जिसका कान से ज्ञान हो । प्रयोजन यह है कि रसना इन्द्रिय का ज्ञान किसी इन्द्रिय से नहीं हो सकता, ऐसे ही अन्येन्द्रियों की दशा है । जिन इन्द्रियों से न दीखने के कारण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, वे तुम्हारी इन्द्रियां ही प्रत्यक्ष नहीं, तो तुम्हारा सिद्धान्त स्वयंमेव खण्डित होता है । इसके अतिरिक्त जो पुरुष ऐसा विचार रखते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणों का मूल है और जिस वस्तु का प्रत्यक्ष न हो, उसका अभाव है—वे बहुत ही भ्रांति में पड़े हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष से किसी वस्तु का अनुमान के बिना ज्ञान हो ही नहीं सकता । प्रत्येक वस्तु के एक ही भाग का प्रत्यक्ष होता है, शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है । जब केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना जावे, तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न होगा । दूसरे अनेक ऐसी दशा हैं कि जिनके कारण वस्तुओं के विद्यमान होने पर भी उनका ज्ञान नहीं होता । प्रथम अति समीप होने से—जैसे नेत्र में सुर्मा होता है; परन्तु वह नहीं दीखता, दूसरे बहुत दूर होने से—जैसे लन्दन यहां से नहीं दीखता । तीसरे

(८)

अति सूक्ष्म होने से—जैसे परमाणु दृष्टि में नहीं आते। चौथे अति स्थूल होने से जैसे हिमालय पहाड़ सम्पूर्ण नहीं दीखता, पांचवें वस्तु और इंद्रिय के बीच में व्यवधान होने से—जैसे आंख पर हाथ रखने से कोई वस्तु भी नहीं दीखती अथवा भित्ति (दीवार) की दूसरी ओर की वस्तुएँ नहीं दीखती। छठे इन्द्रियों में दोष हो जाने से—जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता और बहरे को शब्द का ज्ञान नहीं होता इत्यादि। सातवें मन के अव्यवस्थित होने से भी नेत्रों के सामने चली जाने वाली वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता, जब कि इन सात दशाओं में विशमान वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष नहीं होता, तो प्रत्यक्ष न होने से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सत्य नहीं, किन्तु ईश्वर के होने में अनुमान और शब्द प्रमाण विद्यमान हैं।

वादी शंका करता है कि अनुमान किस प्रकार हो सकता है क्योंकि जब तक व्याप्ति का ज्ञान न हो, तब तक अनुमान नहीं हो सकता और व्याप्ति प्रत्यक्ष से ग्रहण की जाती है। ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ नहीं इसलिये व्याप्ति के न होने से अनुमान नहीं हो सकता; परन्तु वादी का यह कथन सत्य नहीं, क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि प्रकृति में क्रिया नहीं। जब तक चेतन उसको क्रिया देता है, तब तक ही क्रिया होती है। जिसका प्रमाण मृतक और जीवित शरीर को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है अर्थात् जब तक क्रिया देनेवाला चेतन क्रिया दे रहा था, तब तक यह शरीर क्रिया कर रहा था और जब चेतन पृथक् हो गया, तब वह शरीर जो प्रकृति से बना था क्रिया शून्य हो गया। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृति वस्तु में क्रिया चेतन के बिना नहीं हो सकती, दूसरे जिस क्रिया में नियम पाया जावे, वह तो किसी प्रकार नियम बनाने वाले के बिना हो ही नहीं सकती।

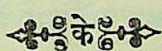
घड़ी १२ घण्टे के पश्चात् अपने उसी स्थान पर आ जाती है, चाहे वह चौबीस घण्टे में चाबी लेती हो, अथवा एक सप्ताह में। इन उदाहरणों के होने से सम्यक्तया विद्वान घड़ी बनाने वाले का होना प्रतीत होता है। कोई मनुष्य भी जिसको बुद्धि हो, घड़ी को उत्पत्तिवान मानकर किसी अचेतन वस्तु द्वारा बनाई हुई नहीं जानता। यद्यपि घड़ी बनाने वाले को घड़ी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा; परन्तु अनुमान से घड़ी के कर्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है, क्योंकि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तु में लौटकर उसी स्थान पर आने का

(६)

नियम हो नहीं सकता—जैसे कि आगे चलना । इन्हन में भाप 'के होते हुए और किसी कल के बिगड़ जाने से रुक जाना भी सम्भव है; परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्भव नहीं, जब तक कोई चेतन न लौटावे । इसी लिए जिन वस्तुओं की कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसी स्थान पर आने की शक्ति है, वह अवश्य ही चेतन के नियम से बँधी हुई हैं । इसलिये सृष्टि के सम्पूर्ण नियम भूगोल में आधीन देखने में आते हैं । चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी और तारागण सबके बीच में नियत क्रिया के अतिरिक्त और किसी प्रकार का नियम प्रतीत नहीं होता । जिसके नियमों की परीक्षा हम सौ वर्ष पहिले से ही जान सकते हैं कि अमुक तिथि में इतने बजे सूर्य ग्रहण वा चन्द्र ग्रहण होगा । जिस प्रकार हम घड़ी को देखकर प्रतीत कर सकते हैं कि इतनी देर के पश्चात् घड़ी की सुइयां अमुक स्थान पर मिल जायेंगी, ऐसे ही सूर्य और चन्द्र ग्रहण भी नियम के आधीन होने से हमें पहले से प्रतीत हो सकते हैं । यद्यपि घड़ी को बनाने वाला चेतन मनुष्य हमें सृष्टि में दीखता है, जिससे व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर हम कह सकते हैं कि इस नियम पूर्वक जगत् को बनानेवाला चेतन परमात्मा है ।

अपि ऋण से मुक्त होने के लिए

आर्य सेवक



ग्राहक बन कर

तन, मन, धन वैदिक धर्म सेवा निमित्त प्रदानकर पुण्य के भागी बनिये । प्रत्येक संस्था को जीवित रखने के लिये अपना मुखपत्र चलाना आवश्यक है ।

वार्षिक मूल्य २)

मैनेजर—आर्य-सेवक, कार्यालय, सदर बाजार, नागपुर ।

मन-मन्दिर

(ले०—श्री वा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, आगरा)

[गताङ्क से आगे]

मन्त्रों का पहला भाग

इन छत्रों मन्त्रों में जो भाव हैं हम उनको पहले पृथक् पृथक् लिखेंगे और फिर उनके समन्वय को एक चित्र से दर्शाने का उद्योग करेंगे। सबसे पहले मन्त्र में परमात्मा को पूर्व की दिशा में अग्नि के नाम से सम्बोधन करके अधिपति माना गया है। और पूर्व की दिशा में सब से बड़ी आकर्षक चीज जो है वह सूर्य है। सूर्य की किरणों से परमात्मा हमारी अनेक प्रकार से रक्षा करता है। सूर्य की किरणों से तेज और प्रकाश प्राप्त होता है और यही किरणें अनेक प्रकार के रोगों के निवारण की कारण भी हैं। इन्हीं किरणों से जल की वर्षा में सहायता मिलती है और इन्हीं किरणों की सहायता से अन्नादिक बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। सूर्य में भी जो प्रकाश है उसका कारण परमात्मा है और संसार की अन्य सब प्रकाश उत्पन्न करने वाली वस्तुयें सूर्य के प्रकाश पर ही आश्रित हैं। इस लिये हम सूर्य को लक्ष में रख कर परमात्मा को स्वतन्त्र संरक्षक और तमाम प्रकाशों का कारण मान सकते हैं। उसको रक्षक और अधिपति मानना हमारे अन्दर आदर के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है और हमारे लिए नमस्कार करना एक बार नहीं अनेक बार अनिवार्य है। पूर्व दिशा उन्नति अभ्युदय की भी द्योतक है। हम प्रातः काल उठ कर ही अपने कर्मों का आरम्भ करते हैं। प्रकाश ज्ञान का भी द्योतक है। यदि हमारा ज्ञान केवल ज्ञान न रह कर हमें कर्म के लिए भी प्रोत्साहित करेगा तो हम अवश्य उन्नत दशा को प्राप्त होंगे। कर्म बिना ज्ञान के और ज्ञान बिना कर्म के दोनों अधूरे हैं। हमें रसातल को ले जाने वाले हैं। हमें अपने जीवन के कर्म ज्ञान के प्रकाश में जांच कर करने चाहियें। इस प्रकार इस पहले मन्त्र में हम सूर्य को लक्ष में रख कर परमात्मा की सत्ता को भी सदैव अपने ध्यान में रख सकते हैं और अपने जीवन में लाभ भी उठा सकते हैं। प्रकाश के आधार पर अन्याय की सम्भावना नहीं हो सकती। जो परमात्मा अग्नि स्वरूप सर्व व्यापक और सूर्य

(११)

का सूर्य है वह सर्व ज्ञाता और अन्तर्यामी भी अवश्य मानना पड़ेगा, उसकी दिव्य दृष्टि से हमारे और दूसरों के शुभाशुभ कर्म छुपे नहीं रह सकते और उसकी न्याय व्यवस्था में भी बाल बराबर अन्तर नहीं आ सकता। इस लिये ईश्वर को न्यायकारी होने की भी बात हमारे ध्यान में सदैव बनी रहनी स्वाभाविक है।

दूसरा मन्त्र दक्षिण दिशा को लक्ष्म में रख कर है इस मन्त्र में परमात्मा को इन्द्र नाम से संबोधित किया गया है और जो तिरछी चाल चलने वाले जीव जन्तु हैं उनसे रक्षा की याचना की गई है और रक्षा का साधन पितर अर्थात् ज्ञानी लोग बताए गए हैं। महा शक्तिशाली परमात्मा के दिए हुए ज्ञान के आधार पर बुद्धिमान् लोग अपने ज्ञान से टेढ़े चलने वाले जन्तुओं से और छल कपट करने वाले मनुष्यों से रक्षा अपनी करते हैं और अन्य प्राणियों के लिये रक्षा के साधन उपस्थित करते हैं। बिना ज्ञान के उन भय के साधनों से रक्षा नहीं हो सकती जो अप्रत्यक्ष रहते हैं और जिनका पता हमें बहुधा जब ही लगता है जब हम उनसे हानि पहुंचाए जाने के समीप होते हैं। इस मन्त्र से भी परमात्मा को भी रक्षक मान कर एक बार नहीं अनेक बार नमस्कार की गई है।

तीसरे मन्त्र में अर्थात् पश्चिम दिशा को लक्ष्म में रखकर परमात्मा को वरुण नाम से संबोधित करते हुए अधिपति माना गया है और रक्षा का साधन अन्न को बताया गया है। वरुण से अभिप्राय सबसे श्रेष्ठ है। जहाँ पूर्व दिशा में सूर्य को लक्ष्म में रखकर कर्म की शिक्षा दी गई थी इस मन्त्र में कर्मों का फल जो भोग के रूप में हमें प्राप्त होता है उसको लक्ष्म में रखकर परमात्मा को वरुण नाम से याद किया गया है। दिन भर की महत्त का परिणाम शाम को निकलता है और जीवन भर के परिश्रम का फल वृद्धावस्था में आनन्द देता है। मनुष्य अपने परिश्रम से भोग पदार्थ प्राप्त करता है परन्तु ऋषि मुनि आदि विद्वान यह मानते आए हैं कि रिज्जक रोज़ी के देने वाला खुदा (ईश्वर) ही है। यदि परमात्मा की कृपा दृष्टि नहीं तो हम महान परिश्रम करते हुए भी अपनी अभिलाषा की पूर्ति नहीं कर सकते। हमें अपने प्राप्त किए हुए भोग की मात्रा को लक्ष्म में रखकर अपनी सामर्थ्य पर अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि ईश्वर की दया नहीं तो हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। ईश्वर की दया न केवल प्राप्त करने के लिये आवश्यक है परन्तु प्राप्त की हुई चीजों की रक्षा के लिये भी परमात्मा की दया दृष्टि की आवश्यकता है। खेत में से अनाज काट कर खाना

(१२)

में आ जाए तो भी उसके बिगड़ जाने और लुट जाने की सदैव सम्भावना रहती है। खल्यान से घर में भी आ जाए तो भी चोर और डाकुओं से और अन्य अनाचारियों से सुरक्षित रहे तभी तो हम उसको अपने उपयोग में ला सकते हैं। यदि ईश्वर अपनी दया दृष्टि न करें तो वही भोग पदार्थ जिनको हम अपनी रक्षा का साधन समझते हैं वही हमारे लिए नाश के कारण और भय के साधन बन जाते हैं। डाकू और चोर सदैव सठ और साहूकार को ही ताकते हैं किसी गरीब किसान पर उनकी दृष्टि नहीं जाती। जिस राजा के राज्य में वैध और उन्नति है और आय के साधन बहुतायत से हैं उन्हीं पर शत्रुओं की दृष्टि रहती है। जहाँ तिरछे चलने वाले जन्तु और छल कपट करने वाले मनुष्य हमें छिपकर और अप्रत्यक्ष रूप में हानि पहुँचाते हैं वहाँ हमारे धन और दौलत के लूटने वाले भयंकर अजदहों के रूप में आकर डसने के लिए हम पर आक्रमण करते हैं। ऐसे अत्याचारी अजदहों से भी वह सर्व श्रेष्ठ वरुण परमात्मा ही हमारी रक्षा करता है। हमें उसको बार बार नमस्कार करना चाहिए और हर दशा में उसको न्यायकारी मानकर उसके न्याय को सदैव ध्यान में रखना चाहिये और स्वप्न में भी किसी से अन्याय की चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

चौथे मन्त्र में अपनी बाईं ओर अर्थात् उत्तर दिशा को लक्ष्म में रखकर परमात्मा को सोम के विशेषण से संबोधित करके अधिपति माना गया है। सोम से अभिप्राय शान्ति और परम आनन्द के हैं। परमात्मा महान् आनन्द वाला होकर हमारी विद्युत अर्थात् विजली द्वारा रक्षा करता है। विजली से अभिप्राय ज्ञान और प्रकाश के साधनों से है। इससे पूर्व के मन्त्रों में ज्ञानकर्म और भोग को लक्ष्म में रखकर परमात्मा को रक्षक माना गया है परन्तु हम बड़े ज्ञानी भी हों, बड़े परिश्रमी भी हों और अपने ज्ञान और परिश्रम से सुख की सामग्री भी बहुतायत से उपार्जन कर लें परन्तु यदि हमें तृप्ति और शान्ति प्राप्त नहीं तो हमारा जीवन सुखमय नहीं हो सकता। जिनके अन्दर शान्ति और तृप्ति की भावना नहीं है वह चाहे जितना धनवान और सामर्थ्यवान हो सदैव निर्धन और निर्बल ही रहेंगे। न स्वयं सुख पा सकेंगे और न दूसरे को सुख में रहने देंगे। हमें शान्ति उसी समय प्राप्त हो सकती है जब हम सँसार के भोग पदार्थों को विद्युत के समान क्षणिक और आकर्षक मानें और अपने उपयोग में लाने के पश्चात् हम उनको दूसरों के परोपकार में लाने की भावना रखें। सोम रूपी परमात्मा के

(१३)

ही चरणों में पहुँचकर तृष्णा से रक्षा और तृप्ति प्राप्त हो सकती है। तब ही हम परमात्मा को सच्चा रक्षक मानकर हम बार बार नमस्कार कर सकते हैं और हमको करनी चाहिए।

इन चार मन्त्रों में हमने अपनी चारों ओर परमात्मा की विभूति को भिन्न-भिन्न रूप में देखने की शिक्षा प्राप्त की और अपने जीवन को सफल और धार्मिक बनाने के लिए यह अभ्यास करने की चेष्टा की कि हम कर्म करते समय, ज्ञानोपाजन करते समय और भोग प्राप्त करते समय परमात्मा की शक्ति को स्मरण रखें और कभी न भूलें। इन दो दिशाओं के अतिरिक्त अभी दो दिशाएँ और भी हैं। साधारण बोल-चाल और भूगोल में तो उपरोक्त चारों दिशाएँ हो बताई गई हैं परन्तु ईश्वर की शक्ति को विराट् और समष्टि रूप में समझने के लिए हमें अपने ऊपर और नीचे भी तो देखना होगा। अर्थात् आकाश और पृथ्वी की ओर भी तो दृष्टि डालनी होगी। आकाश एक तरफ और पृथ्वी दूसरी तरफ हमें अपने चमकीले और आकर्षक पदार्थों के आधार पर अपनी ओर खेंचते रहते हैं। अपने नीचे की दिशा को लक्ष में रखकर परमात्मा को विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा को संबोधित किया गया है और अधिपति माना गया है और पृथ्वी में जो अनेक प्रकार की वृक्ष, पुष्प और लताएँ हैं उनसे परमात्मा हमारी सब प्रकार से रक्षा करता है सब प्रकार की औषधियाँ तथा वनस्पतियाँ उनसे प्राप्त होती हैं न केवल हमारी बल्कि प्राणी मात्र के वंशों की रक्षा इन्हीं वृक्षादिकों से होती है। इन सुन्दर फूलों को देखकर हमें इनकी सुन्दरता पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए इनमें परमात्मा को व्यापक मानकर परमात्मा को ध्यान में रखना चाहिए और इन सब में इसका ही जलवा देखना चाहिए जिससे हम यह कहने के अधिकारी हों कि “जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।” नीचे के साथ हमें अपने ऊपर भी तो दृष्टि डालनी होगी। ऊपर की दिशा को लक्ष में रखकर परमात्मा को ब्रह्मपति नाम से अधिपति माना गया है ऊपर की दिशा से हमारे लिए जल की वर्षा होती है। यदि जल की वर्षा ठीक समय और ठीक मात्रा में न हो तो न हमारे प्राणों की रक्षा हो सकती है और न हरी-भरी गर्दन वाले वृक्ष और लताएँ उपज सकती हैं और वृद्धि को प्राप्त कर सकती हैं। वर्षा परमात्मा की महान् दया की द्योतक है। जिस प्रकार वर्षा से संसार के सब सुख देने वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी महान् अनुकम्पा से हमारे दुखों का निवारण करते हैं। हमने देखा कि छत्रों दिशाओं में हमने मानसिक रूप से आसन पर दृढ़ बैठे हुए अपने मन को घुमाया और हर दिशा और दशा में परमात्मा के ही दर्शन किए यह मानसिक अभ्यास जिसे हम प्रातःकाल और सायंकाल दोहराते हैं हमारे क्रियात्मक जीवन को सफल बनाने के लिए अनिवार्य और आवश्यक है।

“गुरुकुल समस्या”

(ले०—आचार्य विश्वश्रवाः वेदमन्दिर बरेली)

श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ने जनवरी १९४१ के सार्वदेशिक में कुछ आवश्यक बातों की ओर ध्यान दिलाया है। उनमें एक गुरुकुल समस्या भी है। शास्त्री जी के ये शब्द आर्य समाज के विधाताओं को बार बार विचारने चाहिए कि—

“सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम सम्भाल लेंगे, यह बात अनुभव विरुद्ध है।”

जहां तक मेरा अनुभव गुरुकुल संचालन का है, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रत्येक गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग रखना व्यर्थ आडम्बर है और अनभिज्ञ जनता को धोखा देकर धन का नाश करना है। कोई गुरुकुल अपना आडम्बर नहीं खोना चाहता है और यह रोग बढ़ रहा है। जो गुरुकुल नये खुल रहे हैं उनका मुख भी महाविद्यालय बनाने की ओर है। कुछ नये गुरुकुल अपने यहां महाविद्यालय बना भी चुके हैं।

साधारणतया सब गुरुकुलों में १४ वर्ष का अध्ययन काल रखा जाता है। दस वर्ष विद्यालय विभाग और अन्तिम चार वर्ष महाविद्यालय विभाग कहाते हैं। जिस समय गुरुकुल वृन्दावन का कार्य मेरे हाथ में आया और विशेष परिवर्तन पाठविधि में हुआ, तब हमने दस वर्ष के विद्यालय विभाग का नाम वेदाङ्ग विद्यालय रखा और महाविद्यालय को अनेक प्रकारों में बांटा जो निम्न प्रकार है—

महाविद्यालय नाम	वैकल्पिक विषय			
वेद महाविद्यालय	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	अथर्ववेद
उपवेदमहाविद्यालय	आयुर्वेद	अथर्ववेद	गान्धर्ववेद	धनुर्वेद
गुरुकुल महा-विद्यालय	सिद्धान्त	पाश्चात्यदर्शन	राजनीति इतिहास	वेदाङ्ग आदि विशेष संस्कृत
विशेष संस्कृत में भी	दर्शन	साहित्य	व्याकरण	अन्य वेदाङ्ग एक एक

(१५)

हसारी स्कीम यह थी कि दश वर्ष का वेदाङ्ग विद्यालय प्रत्येक गुरुकुल अपने यहां रखे। और महाविद्यालय एक एक विषय का पृथक् २ गुरुकुलों में रहे। सब गुरुकुलों के लड़के एक दूसरे गुरुकुल के महाविद्यालय में प्रविष्ट किए जाया करें। उदाहरणार्थ—गुरुकुल वृन्दावन का दश श्रेणी तक का पढ़ा छात्र यदि आयुर्वेद महाविद्यालय में पढ़ना चाहता है तो वह गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय में चला जावे। गुरुकुल वृन्दावन में पृथक् आयुर्वेद महाविद्यालय की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार कांगड़ी गुरुकुल का दश श्रेणी तक का पढ़ा छात्र यदि दर्शन महाविद्यालय में अध्ययन करना चाहता है तो वह गुरुकुल वृन्दावन के दर्शन महाविद्यालय में चला आवे। कांगड़ी में पृथक् महाविद्यालय की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार व्याकरण महा विद्यालय ज्वालापुर रहे।

इस रीति से सब गुरुकुलों में महाविद्यालय विभाग रह सकेंगे। प्रत्येक महाविद्यालय की परीक्षा का प्रबन्ध सार्वदेशिक सभा करे। वहीं से प्रमाण पत्र मिले फिर प्रान्तीयता आदि का भी विध्वंस स्नातकों के सम्बन्ध में हो जावेगा।

जिन दिनों आवागढ़ नरेश का दौरा दौरा गुरुकुल वृन्दावन में था तब राजा साहब ने गुरुकुलों की एकता के लिये सब गुरुकुल संचालकों से मिलकर बात करने के लिए मुझे नियत किया। मैं कुछ गुरुकुलों में गया भी। पर दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि छोटे से छोटे गुरुकुल संचालक अपने २ गुरुकुल को विश्वविद्यालय बनाने की चिन्ता में हैं; वे एक शृङ्खला में आना नहीं चाहते। उनको दोषी क्यों कहें पहले तीन बड़े गुरुकुल और सार्वदेशिक मिलकर संगठन बनाले। अन्यो का समाधान स्वयं हो जायगा। यह बात कठिन भी नहीं क्योंकि वे ही आदमी सार्वदेशिक में हैं वे ही अपने अपने प्रान्त में गुरुकुलों के संचालक हैं। केवल ध्यान इधर देने की बात है। आशा है आर्य समाज के धुरीण हम लोगों के इस आवश्यक निवेदन पर ध्यान देंगे जिससे यह समस्या सुधर सके जिसे हम कहते हैं गुरुकुल समस्या।

वेदाधिकार

[ले०—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज]

—:❀❀:—

वेद पढ़ने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों को है अथवा शूद्र को भी है। साथ ही यह भी चिंतनीय है क्या वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को नहीं है। महर्षि दयानन्द जी मनुष्य मात्र का अधिकार स्वीकार करते हैं परन्तु सनातन धर्मावलम्बी पंडित द्विज को ही मानते हैं और अन्य को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है यह उनका निश्चय है। शारीरिक सूत्र पर भाष्य लिखते समय श्री शंकराचार्य जी शूद्र का निषेध करते हैं। गीता रहस्य में श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी अफरीका की एक घटना लिखकर लिखते हैं शूद्र वेद को समझ ही नहीं सकता है इसी कारण शूद्र को निषेध है।

इस समय यदि जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने वालों के सिद्धान्त को लें तो अनेक शूद्र ऐसे हैं जो वेद को पढ़ सकते हैं समझ सकते हैं। यदि आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार जन्म से न मानकर गुण कर्म, स्वभाव से वर्ण स्वीकार किया जाय तो वह व्यक्ति शूद्र नहीं है वह तो द्विज श्रेणी में आजायेंगे और जो कोई ऐसे व्यक्ति हैं जिनको पढ़ाने से भी कुछ नहीं आता अथवा जिनकी पढ़ने में रुचि ही ही नहीं है वह शूद्र बन जायेंगे। मैं ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ मैंने स्वयं भी उनको आर्य भाषा पढ़ाने का यत्न किया परन्तु वह इसमें अर्थात् पढ़ने में असफल ही रहे। यदि उनको शूद्र माना जाय तो शूद्र के अधिकार का प्रश्न ही मिट जाता है, जिनको मैंने पढ़ाने का यत्न किया वह जन्म की दृष्टि से ब्राह्मण और क्षत्रिय साधारण काम अच्छा करते हैं परिश्रमी भी हैं आलस्य नाम को नहीं परन्तु पढ़ने से डरते हैं।

महर्षि जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है वह निम्न प्रकार है—

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है।

स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

(१७)

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है । और तुम कथा में पढ़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है । किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं । और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छवीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है ।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥यजु० २६।२॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने वाली (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ, वदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो ।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि 'जन' शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है, स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं । (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य व स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ाके अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों । कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? 'सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास तृतीय ।'

इस पाठ में ऋषि ने सब मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार स्वीकार किया है इससे वर्णाश्रम धर्मियों के अतिरिक्त जो इस समय ईसाई, मुसलमानादि हैं उनका भी वेद पढ़ने में अधिकार है उन्हें कोई रोक नहीं सकता यह भाव साफ है जो मन्त्र सत्यार्थ प्रकाश में है वह यजुर्वेद का है इसमें 'जन' शब्द के आगे जो ब्राह्मणादि नाम है वह सब वर्णाश्रम धर्मियों के पारिभाषिक नाम हैं यदि जन के पश्चात् वह शब्द न होते तो यह संदेह न होता कि यह मंत्र वर्णाश्रम धर्मियों को आज्ञा देता है, ईसाई व मुसलमानों को नहीं । इस संशय की निवृत्ति के लिये मैं एक और मन्त्र लिखता हूँ उसके देखने से प्रतीत होता है कि वेद सबको ही अधिकार देता है ।

(१८)

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।

प्र च सुवाति सविता ॥ ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त ८२ मंत्र ६ ॥

इस मंत्र का देवता सविता है जिस प्रकार सावित्री का है सविता परमात्मा का भी नाम है जो सब संसार का उत्पादक है इस मंत्र के अर्थ महर्षि जी ने यह किये हैं ।

हे मनुष्यो (यः) जो (श्लोकेन) वाणी से (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण प्रज्ञानों और (जातानि) उत्पन्न हुआओं को (आश्रावयति) सब प्रकार से सुनाता है वह (च) और (सविता) प्रेरणा करने वाला हम लोगों को (प्रसुवाति) प्रेरणा को ।

भावार्थ—हे मनुष्यो जो जगदीश्वर वेद के द्वारा मनुष्यों के लिये सम्पूर्ण विद्याओं का उपदेश करता है वही परम गुरु मानने योग्य है ।

महर्षि जी ने भावार्थ में ईश्वर को परम गुरु मानने का विधान किया है और शब्दों में 'विश्वा जातानि' शब्द हैं विश्वा के अर्थ सर्व प्रज्ञान और जातानि के अर्थ उत्पन्न हुए लिखा है यदि सब उत्पन्न हुए अर्थ किया जाय तब भी भाव में कोई अन्तर नहीं आता तब यह अर्थ होंगे जगदीश्वर ने सबको मन्त्रों द्वारा उपदेश किया है अर्थात् वेद पढ़ने का सबको अधिकार है मनुष्य मात्र वेद पढ़ सकता है जैसा कि यजुर्वेद में जन पद है वैसे ही ऋग्वेद में विश्वा जातानि है । और सत्यार्थ प्रकाश में जो मनुष्य मात्र को पढ़ने का विधान किया है यह मंत्र भी उसका पोषक है ।

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाई के रेट्स

स्थान	१ मास का	३ मास का	६ मास का	१ वर्ष का
दूसरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा ,,	३।)	८)	१५)	२५)
चौथाई ,,	२)	४)	८)	१५)

उत्तरत का धन नियमानुसार पेशगी आना चाहिये ।

आर्य विवाह कानून की विस्तृत व्याख्या

(३)

इंडियन सक्सेशन ऐक्ट

१९२३ के ऐक्ट के अधीन अन्तर्जातीय विवाह करने वालों के मार्ग में बड़ी कठिनाई धारा सं० २४ के अन्तर्गत है जिस में यह व्यवस्था की गई है कि १९२३ के ऐक्ट के अनुसार विवाह करने वाले व्यक्तियों और उनकी सन्तानों का जायदाद पर उत्तराधिकार इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार नियंत्रित होगा। यह कानून इस देश के युरोपियनों और ईसाईयों के उत्तराधिकार का कानून है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि १९२३ के अधीन विवाह करने वालों को इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के प्रचलन पर आपत्ति क्यों होनी चाहिए। क्योंकि कुछ दशाओं में यह ऐक्ट अधिक न्याय युक्त है। यदि कोई व्यक्ति एक पुत्र और २ पुत्रियां छोड़ कर मर जाय तो इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार लड़के और लड़कियों को जायदाद में से बराबर २ भाग मिलेगा अर्थात् प्रत्येक को अपने पिता की सम्पत्ति का $\frac{1}{3}$ भाग प्राप्त होगा। हिन्दू कानून के अनुसार पुत्र को समस्त जायदाद मिलती है और पुत्रियों को कुछ नहीं मिलता है। जब आर्य विवाह ऐक्ट पर असेम्बली में बहस हो रही थी तो श्रीयुत आण ने आर्य समाजियों को कहा था कि यदि वे सुधार की विशुद्ध भावना से प्रेरित हुए हुए हैं तो उनके लिए स्वर्ण अवसर प्राप्त है कि वे उत्तराधिकार की उस प्रणाली को स्वीकार करें जिसके दृष्टिकोण को सब लोग हिन्दुओं की उत्तराधिकार की प्रणाली की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक न्याय युक्त मानते हैं। सेलेक्ट कमेटी ने आर्य मैरेज ऐक्ट में इंडियन सक्सेशन ऐक्ट की धारा जोड़ी थी और कमेटी ने स्त्रियों के प्रति उदार और न्याय भावना से प्रेरित होकर ही ऐसा किया था। परन्तु आर्य समाजियों का दृष्टिकोण यह था कि वे शास्त्रानुमोदित उत्तराधिकार के कानून को चाहते हैं भले ही वह कानून अच्छा हो या बुरा।

इसमें संदेह नहीं जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध है हिन्दू कानून में कुछ त्रुटियाँ हैं। परन्तु ये त्रुटियाँ धीरे-धीरे दूर की जा रही हैं। आर्य समाजियों की स्थिति यह है कि

(२०)

समस्त हिन्दू जाति के लिए हिन्दू कानून में जो संशोधन किए जायेंगे वे उन्हें स्वीकार कर लेंगे । वे यह मानते हैं कि उत्तराधिकार और सामाजिक प्रथाओं के सम्बन्ध में उनकी साधारण भावना हिन्दुओं जैसी ही है और अन्य हिन्दुओं पर जो कानून लागू होते हैं वही उन पर लागू होने चाहिये । उदाहरणार्थ हम एक सुधार को लेते हैं जिसने स्त्रियों की स्थिति में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है । वह सुधार १६३७ का स्त्रियों का जायदाद सम्बन्धी अधिकार का कानून है । इस कानून से पूर्ण सम्मिलित परिवार की हिन्दू विधवा गुजारे और रहने के लिए मकान की हकदार थी और हिन्दुओं की सामाजिक प्रणाली से परिचित कोई भी व्यक्ति इसका मतलब समझ सकता है । सैकड़ों रीतियाँ और ढङ्ग थे जिनके द्वारा स्त्री तंग की जा सकती थी और कुछ परिस्थितियों में वह इन कथित अधिकारों से वंचित भी की जा सकती थी । यदि हिन्दू विधवा के अपने पुत्र न होते थे और सम्मिलित परिवार में उसके पति के भाई वा सौत की सन्तान होती थी तो तब उसकी स्थिति बड़ी दयनीय होती थी । परन्तु अपने पुत्रों के परिवार में भी उसकी दुर्दशा संभव थी । परन्तु अब धारा सभा ने हिन्दुओं के उत्तराधिकार प्रणाली के धब्बे को बात की बात में मिटा दिया है और अब हिन्दू विधवा अपने अधिकार के अनुसार उस भाग की अधिकारिणी होती है जिसका अधिकारी उसका पति हो सकता है । इससे बढ़ कर बात यह है, सम्मिलित परिवार के अन्य सदस्यों को उस का हिस्सा तकसीम करने के लिए बाधित करने का उसे कानूनी अधिकार भी प्राप्त है ।

यह कानून बड़ा महत्व पूर्ण है और भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक हिन्दू समाज पर इस का प्रभाव पड़ता है । स्त्रियों की स्थिति के सुधार के लिये इस प्रकार के कई बिल कानून बनाए जाने के लिए प्रस्तावित हुए हैं और आशा है कि कुछ वर्षों में हिन्दुओं के उत्तराधिकार के कानून में संशोधन हो जायेंगे कि जिससे वह अपनी मौलिक विशेषताओं के साथ २ अन्य किसी भी सभ्य प्रणाली की तुलना में कम न रहेगा । मुसलमानों का उत्तराधिकार का कानून भी स्त्रियों के अधिकारों के अनुकूल है । उदाहरण के लिए यदि कोई पुरुष १ पुत्र और २ पुत्रियाँ छोड़कर मर जाये तो पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में से $\frac{1}{3}$ भाग मिलेगा और पुत्र को $\frac{2}{3}$ भाग मिलेगा । ईसाइयों की

(२१)

नाई पुत्र और पुत्रियों को समान भाग नहीं मिलता है। परन्तु पुत्रों को पुत्रियों के भाग का दुगुना प्राप्त होता है। हिन्दू कानून के अनुसार पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में से कुछ नहीं मिलता है। हां यदि कोई पुत्री अविवाहित हो तो परिवार को उसके विवाह के व्यय की व्यवस्था करनी होती है। आर्य समाजियों को यह कहना असंगत होगा कि वे उत्तराधिकार की किसी दूसरी प्रणाली का आश्रय लें क्योंकि वह प्रणाली उनकी प्रणाली की अपेक्षा अधिक उदार है। हो सकता है कि कुछ ब्रह्मसमाजी और उदार कहे जाने वाले हिन्दू इंडियन सक्सेशन ऐक्ट को पसन्द करें। परन्तु आर्यों, ब्रह्म समाजियों और अन्य हिन्दुओं का बहुमत हिन्दू प्रणाली के पक्ष में ही होगा भले ही उसमें त्रुटियां हों। और आर्य समाजियों ने अपनी यही स्थिति रखी है। १९२३ के स्पेशल मैरिज संशोधन कानून की २४ वीं धारा के द्वारा जो कठिनाई लगाई गई थी वह आर्य समाजियों की दृष्टि में बड़ी आक्षेप योग्य थी और इसी कारण से श्रीयुत घनश्यामसिंह गुप्त और श्री खरे ने आर्य समाजियों को सुविधा दिलाने के लिए यह बिल प्रस्तुत किया था।

महात्मा नारायण स्वामी जी की

उपनिषदों की टीका का संग्रह

उपनिषद् प्रेमियों के लाभार्थ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरेय उपनिषदों का संग्रह एक ही जिल्द में तैयार कर दिया गया है। मूल्य १।=॥

मिलने का पता :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

सुमन-संचय

(१)

कर्त्तव्य का सम्मान

प्रातः काल की वेला थी । काठियावाड़ के अधिपति अपने महल की छत पर टहल रहे थे । सहसा ही उनकी दृष्टि एक सुन्दरी पर पड़ी जो अपने मकान की छत पर बैठी नंगी स्नान कर रही थी । महाराज के मन में उस सुन्दरी को देख कर बिकार उत्पन्न हुआ और वह खड़े होकर उस सुन्दरी को देखने लग गए । जब वह स्नान करके चली गई तो महाराज कुर्सी पर बैठ कर कुछ सोचने लगे और कुछ देर के पश्चात् छत पर से उतर आए । आते ही उन्होंने ने अपने कुल पुरोहित को बुलवाया और उन से कहा 'महाराज ! यदि कोई पिता अपनी पुत्री को कुदृष्टि से देखे तो उसको क्या दंड मिलना चाहिए ?' कुल पुरोहित ने कहा "महाराज ! ऐसे नराधम के लिए शास्त्रों में मृत्यु दंड का विधान है ।" फिर राजा ने पूछा "यदि कोई राजा अपनी प्रजा की किसी कन्या को कुदृष्टि से देखे तो उसे क्या दंड मिलना चाहिए ?" पुरोहित जी ने कहा " उसे भी वही दंड मिलेगा क्योंकि राजा के लिए प्रजा की कन्याएँ पुत्रियों के समान होती हैं ।" यह उत्तर सुन कर महाराज गुलाब सिंह ने प्रातः काल की समस्त घटना कुल पुरोहित को बतला दी । कुल पुरोहित ने कहा "आपको अग्नि में जलाया जायगा क्योंकि ऐसे पाप के लिए मृत्यु दंड का यही रूप निश्चित किया हुआ है ।" महाराज ने यह दंड स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन प्रातः काल अग्नि चिता के सामने महाराज नीचा मुँह किए खड़े थे । नगर और राज-परिवार में शोक छाया हुआ था । भिन्न २ प्रकार की चेमें गोहयां हो रहीं थीं । कोई शास्त्रों को बुरा भला कहता था, तो कोई पुरोहित को डांटता फटकारता था और कोई इस प्रसंग को प्रहसन बतलाता था । जितने मुँह उतनी बातों की कहावत भली भाँति चरितार्थ होती थी ।

चिता में अग्नि प्रज्वलित की गई । महाराज उसमें प्रवेश करने के लिए आगे बढ़े । उपस्थित नर नारियों का करुण चीत्कार हुआ । रानियां महाराज

(२३)

के चरणों में लोट गईं और रो रो कर चिता में प्रवेश करने से रोकने लगी। इतने में ही कुल पुरोहित आगे आए और महाराज को संबोधन करके बोले “महाराज ! ठहरो ! चिता में प्रवेश न करो।” महाराज ने पूछा ‘क्यों ?’ कुल पुरोहित ने कहा इस लिए कि तुम्हारे पाप का प्रायश्चित हो गया। चिता में जलाने की आवश्यकता नहीं है” महाराज ने पूछा “कुल पुरोहित ! आप की बात मेरी समझ में नहीं आई ” कुल पुरोहित ने कहा “आपका पाप मानसिक था। चूँकि इस पाप को आपने मुझ पर स्पष्ट कर दिया है और इतना ही नहीं समस्त प्रजा को भी मालूम हो गया है अतः इस स्पष्टीकरण से आपके पाप का प्रायश्चित हो गया है।”

इतना सुन कर महाराज पीछे हट गए। उपस्थित नर नारी हर्ष से उन्मत्त हो गए और महाराज की प्रजा वत्सलता की भूरि २ प्रशंसा करते हुए अपने घर को चले गए।

(२)

राजमहल सराय है

एक दिन सिकन्दर बादशाह के महल में एक फकीर चुपके से घुस गया। राज परिवार के लोगों और भृत्यों ने उसको वहाँ से निकालने का बहुत यत्न किया परन्तु वह फकीर न हटा। अन्त में निराश होकर सिकन्दर शाह को इस की सूचना दी गई। सिकन्दर बादशाह का क्रोध और आतंक प्रसिद्ध था। उनकी एक रानी भावी असंगल की कल्पना से भयभीत होकर फकीर के निकट गई और हाथ जोड़ कर वहाँ से चले जाने की अनुनय विनय की परन्तु फकीर पर उसकी प्रार्थनाओं और अनुनय विनय का कोई प्रभाव न पड़ा। इतने में ही सिकन्दर शाह अपने दल बल के साथ राज महल में प्रविष्ट हुए। उनकी मुखाकृति से ऐसा प्रतीत होता था मानों क्रोध मूर्तिमान होकर स्वयं उपस्थित हुआ है। उपस्थित नर नारी भय से काँपने लगे। उन्होंने क्रोध केस्वर में फकीर को सम्बोधन करके पूछा “तुम बिना आज्ञा के मेरे राज महल में क्यों दाखिल हुए हो ? फकीर पर सिकन्दर के आगमन और प्रश्न का मानो कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने लापरवाही से उत्तर दिया “सिकन्दर शाह ! मैं आपके राजमहल में नहीं घुसा हूँ। मैं तो सराय में आया हूँ।” इस उत्तर को सुन कर सिकन्दर को बड़ा कौतूहल हुआ उसने कहा “ऐ फकीर ! तुम भूलते हो, यह सराय नहीं है। यह तो राज महल है। किसी ने

(२४)

आपको वहका दिया है।” साधु ने कहा “सिकन्दर। तुम भूलते हो। मैं तुम से पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे माता-पिता और बुजुर्ग इस महल में नहीं रहे हैं ?” सिकन्दर ने उत्तर दिया मेरे माता-पिता और बुजुर्ग अवश्य इस महल में रहे हैं ?” फकीर ने फिर पूछा “क्या तुम सदैव इस महल में रहोगे ?” सिकन्दर ने कहा “नहीं।” इस पर फकीर ने कहा “जब इस महल में तुम्हारे माता पिता सदैव नहीं रहे हैं और तुम भी सदैव नहीं रहोगे तब तुम्हारा यह महल सराय नहीं तो क्या है ?” फकीर का यह उत्तर सुन कर सिकन्दर शाह के ज्ञान चक्षु खुल गए और बिना कुछ कहे फकीर के चरणों में बैठ गए।

(३)

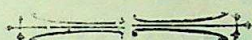
एक बार एक महात्मा एक नदी के तट पर बैठे प्रकृति निरीक्षण कर रहे थे उन्होंने नदी के प्रवाह में बहते हुए एक बिच्छू को देखा। उसकी दशा पर उन्हें दया आई और वे उसे निकालने के लिए नदी में घुसे। ज्योंही उन्होंने बिच्छू को छुआ त्योंही उसने महात्मा को डंक मार दिया। इस प्रकार ३-४ बार बिच्छू ने उन्हें काटा परन्तु उन्होंने अपना यत्न न छोड़ा। महात्मा के निकट एक व्यक्ति खड़ा था। उस ने महात्मा को कहा “महात्मन् ! इस दुष्ट को अपनी मौत मरने दो। आप इस पर दया करते हैं और यह आपको बार २ काटता है। ऐसे दुष्ट पर उपकार करने से क्या लाभ ?” महात्मा ने मृदु मुस्कान के साथ कहा “भाई तुम बड़े भोले हो। जब यह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता है तो हम अपनी सज्जनता को क्यों छोड़ें।” यह कह कर महात्मा ने साहस करके बिच्छू को जल में से निकाल कर उस की प्राण रक्षा की।

(४)

एक बार तैमूरलंग अपनी सेना के साथ एक बन में घूम रहा था। बन में उसे एक अंधी बुढ़िया मिली जो बड़े जोर से रो रही थी। तैमूर उसके पास गया और उससे रोने का कारण पूछा परन्तु बुढ़िया ने कोई कारण न बताया। इस पर तैमूर ने बुढ़िया का नाम पूछा। बुढ़िया ने कहा “मेरा नाम दौलत है।” यह नाम सुन कर तैमूर बहुत हंसा और बोला ‘बुढ़िया ! कहीं दौलत भी अंधी होती है।’ बुढ़िया ने तत्काल उत्तर दिया “यदि दौलत अंधी न होती तो तैमूर लंगड़े के पास क्यों जाती” यह उत्तर सुन कर बिना कुछ कहे तैमूर ने अपना रास्ता लिया।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

आर्य समाज की चिनगारियाँ



ऋषि दर्शन

मेहता अमीचन्द जी आर्य समाज के उत्तम कवि और भजनीक थे। आपका जन्म स्थान हरणपुर ग्राम था जो तहसील पिंड दादुनखा जिला जेहलम में जेहलम (बितस्ता) नदी के किनारे आवाद है आप 'बाली' ब्राह्मण थे यह मोहपाल ब्राह्मणों की उपजाति है।

आपने उर्दू, फारसी पढ़ी क्योंकि उस समय पंजाब में प्रायः यही पढ़े जाते थे। अंग्रेजी का चलन न्यून था। संस्कृत और आर्य भाषा का लोप हो चुका था। पढ़ाई समाप्त करके आपने नौकरी की, नौकरी में आप वासिलवाकीनवीस, चुङ्गी दारोगा और कभी कभी नायब तहसीलदार भी रहे।

आपने राग विद्या सीखी जिससे अनुमान होता है कि आपके राग विद्या के पुराने जन्म के संस्कार थे क्योंकि आर्यों में उस समय राग विद्या का सर्वथा ही प्रचार न था। राग विद्या के साथ साथ आप व्यसनी हो गए, क्योंकि राग विद्या का मुख्य स्थान पंजाब में मीरासी और वेश्याएं ही थीं और मोहपाल ब्राह्मणों को मांस से भी विशेष घृणा न थी इसलिये आपने वहां गान विद्या में पटुता प्राप्त की। वहाँ व्यसनीराज भी हो गए और वेश्याओं के संग से उभय सिद्ध थे अतः उस मार्ग के यात्री हो गए।

कहते हैं मेहता अमीचन्द ने जेहलम से चलकर गुजरात में आकर ऋषि के दर्शन किए। उस समय एक डाक्टर आपके साथ थे आपने महर्षि जी के सम्मुख एक भजन गाया। भजन सुनकर महर्षि ने कहा 'है तो हीरा परन्तु कीचड़ में पड़ा है' इतने ही में आँख खुल गई और जो व्यसनी अमीचन्द था अब सचमुच अमीचन्द हो गया और ऋषि कृपा से अमीचन्द जी की काया पलट गई और जो अनुराग उसे व्यसनों में था अब यही अनुराग ईश्वर भक्ति में हो गया।

अब अमीचन्द जी आर्य समाजी थे। आर्य समाज के अधिकारी थे और आर्य समाज के भजनीक थे। उत्सवों पर सत्संगों में आपकी चर्चा

(२६)

थी। आप गान विद्या के ज्ञाता थे कवि थे, स्वर उत्तम था गला कोकिल सम
था अब आप आर्य समाज के भजन बनाते और गाते थे।

जेहलम में आपकी सुसराल थी आपने वहां भूमिक्रय करके गृह
बनाया और जेहलम में ही रहने लगे।

२६ जुलाई १८६३ को आपका शरीरांत होगया। सुनते हैं आपने देहावसान
से पूर्व स्वीकार पत्र लिख दिया था कि उनकी सम्पत्ति उनकी धर्मपत्नी के जीवन
काल तक उसे और पश्चात् दयानन्द एंगलो वैदिक कालिज कमेटी
लाहौर को मिले।

आपके भजनों में से एक पंजाबी का भजन लिखा जाता है जिसमें
स्त्री रूप में एक यात्रो का वर्णन है जिससे पाठक उनके भावों से भी परिचय
प्राप्त कर सकें।

वतन दुराडा, साडा देश दुराडा, पंखा मैं लम्बड़े राहीं, साईं सानू तोड पुचाईं।
दुरी हां कुवेले, विच उजड़ वेले, साथ न वेली वाईं साईं साडा साथ निभाईं।
पैर अगरे मैं, डरदी न धरदी, सप्प बूटे-बूटे काईं, साईं कर दूर बलाईं।
झल्लाबिच्च झल्लियां, मैं दम सूलांसलियां होगए पैर अजाईं, साईं किते पैर टिकाईं।

(ता)

थक-थक हारी, सिरते भार है भारी, पै गई अवलडे राहीं, साईं सानू राह बखाईं।
खुभड़ विच खुबियां, चिकड़ विच डुबीयां, फसीयां आण कथाईं, साईं जामां किस थाईं।
रात अन्हेरी, लभदा तुल्हा न बेड़ी, नदीयां बगए असगाहीं, साईं सानू पार लघाईं।
खाली मेरा पल्ला हथीं छाप न छल्ला, मसूल ए मंगदे भलाहीं, साईं साडा पल्ला छडाईं,
बुरी हों जां भली हां, मैं दरउते खड़ी हों, ढठी हां आन पनाहीं, साईं नित्त दा पैंडामुकाईं।
तेरे दर मंगदे, अमीर न मंगदे, मेरी भी आस पुजाईं, साईं सानू वतन पुचाईं।

—स्वतन्त्रानन्द

वेदों में प्रक्षेप

(ले०—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज)

वैदिक सम्पत्ति के लेखक पं० रघुनन्दन शर्मा ने वैदिक सम्पत्ति में वेदों में प्रक्षेप होने का प्रश्न उठाया है और उनमें प्रक्षेप होना बतलाया है । उनकी स्थिति अच्छी तरह से समझ ली जावे इसलिए हम पहले उनका मत कुछ विवरण के साथ दिए देते हैं । उन्होंने अपने ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में वेदों का विवरण दिया है । उन्होंने वहां लिखा है कि:—

“इन समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि अपौरुषेयता और ईश्वर प्रदत्तता ऋग्यजु, साम और अथर्व ही को प्राप्त है अन्य को नहीं । (पृष्ठ ५३२)

“यह स्पष्ट हो जाने पर कि ब्राह्मण ग्रन्थों को अपौरुषेयत्व प्राप्त नहीं है वे संहिताओं के व्याख्यान ही हैं और यह भी स्पष्ट हो जाने पर कि अथर्व वेद भी अपौरुषेय है, वेदों की इयत्ता निर्धारित हो जाती है और ज्ञान हो जाता है कि अपौरुषेय वेद चार हैं और उनके नाम ऋग्, यजु, साम और अथर्व हैं ।”

(पृष्ठ ५३६)

वेद की शाखायें

अर्थों के निश्चित करने के लिये मूल संहिता के सिवा मूल संहिता का पदपाठ संहिता का रूप दिया गया । ऐतरेय आरण्यक में लिखा है जिसमें सन्धि व्यों की व्यों बनी रहती है वह निर्भुज संहिता और जिसमें सन्धि के बिना केवल पदों का उच्चारण होता है वह प्रतृण्णा से संहिता कही जाती है* ।

वेदों की शाखा का पहला रूप यही था । फिर इसी आरण्यक में लिखा है† कि जब आगे चलकर प्रतृण्णा (पदपाठ) संहिता जटा माला आदि× भेदों से विकृत हो जाती है और तब उसे क्रम संहिता कहते हैं । अभिप्राय यह है कि

* यद्धि सन्धि विवर्तयति तन्निर्भुजस्य रूपम् अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृण्णस्य ॥ (ऐतरेय आरण्यक ३ । १३) ।

† अग्न उखो भयमन्तरेणो भय व्याप्तं भयति । (ऐतरेय आरण्यक ३ । १३)

× जटा माला शिला लेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः ।

अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रम पूर्वा मनीषिभिः ॥ (विकृत वल्ली १ । ५)

(२८)

मूल मन्त्रों के सिवा जिसमें उनके पद भी अलग अलग हों और इन पदों की विकृति भी हो वह क्रम संहिता कही जाती है ।

शाखाओं की समाप्ति यहां पर नहीं हुई । बृहदेवता के अनुसार देवता, ऋषि, छंद और अर्थ भेद से सूक्तों के अनेक भेद हो गये+ । इस प्रकार सूक्त आदि के भेदों से शाखाओं की संख्या में और वृद्धि हुई । देवता परक सूक्तों को एकत्र करने से दैषत शाखा, ऋषि परक सूक्तों को इकट्ठे करने से आर्ष शाखा कही जाने लगी ।

रघुनन्दन शर्मा का कहना है कि “यद्यपि मन्त्रों का इतना अधिक उलट फेर हुआ परन्तु अब तक मन्त्रों में पाठ भेद अथवा न्यूनाधिकता नहीं हुई ।”

(पृष्ठ ४२)

“किन्तु कृष्ण यजुर्वेद के अवतार धारण करते ही वैदिक शाखाओं में उथल पुथल शुरू हुआ । रावणादि कृत साहित्य के सम्मिश्रण से शाखाओं में गड़बड़ मची और संहिताओं में ब्राह्मण भाग तथा ब्राह्मणेतर भाग भी मिला मिलाकर अथवा मूल मन्त्रों ही को घटा बढ़ाकर और पाठ भेद कर करके अनेक शाखाओं को जन्म दिया गया । (पृष्ठ ५४३)

इस कथन के बाद रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रन्थ के उद्देश्य से इन शाखाओं के दो भेद किये हैं, एक को उन्होंने आर्य और दूसरे को अनार्य शाखा का नाम दिया है ।

जिन शाखाओं में मूल मन्त्रों की ज्यों की त्यों रक्षा करते हुए केवल मन्त्रों के उलट फेर से उन्हें बनाया गया वे आर्य शाखा और जिनमें मन्त्रों में पाठ भेद करके आसुरी साहित्य ब्राह्मण भाग और मनः कल्पित बाह्य संस्कृत का मिश्रण करके रचा गया उन्हें अनार्य शाखा का नाम दिया है । (पृष्ठ ५४३)

आर्य शाखा

शर्मा जी ने आर्य शाखाओं का उत्तम नमूना (ऋग्वेद की) शाकल और वाष्कल आदि शाखाओं को बतलाया है और अनार्य शाखाओं का नमूना तैत्तिरीय और काठक आदि को कहा है ।

+ देवतार्पणं छन्देभ्यो वैविध्यं तस्य जायते ॥ (बृहदेवता १ । १४)

(२६)

इन दोनों प्रकार की शाखाओं का उदाहरण देते हुए, उन्होंने एक बार फिर कहा है कि आर्य शाखाओं में उलट फेर के अतिरिक्त न्यूनाधिक्य नहीं है पर अनार्य शाखाओं में दोनों बातें विद्यमान हैं । (देखो पृष्ठ ५४३, ५४४) ऋग्वेद की उपर्युक्त आर्य शाखाओं में से उनके एक शाखाकार शाकल (या शाकल्य) को ऋग्वेद को मंडल और सूक्तों में विभाग करने वाला और सबसे पहला शाखाकार माना जाता है । वाष्कल, जो शाकल्य का शिष्य कहा जाता है, और जिसे ऋग्वेद को अष्टकादि विभागों में विभक्त करने वाला बतलाया जाता है, वह शाकल्य के बाद का शाखाकार समझा और माना जाता है तो भी ये दोनों शाखाएँ अत्यन्त प्राचीन और आदिमकालीन स्वीकार की जाती हैं । शाकल्य के विभाग के सदृश वाष्कल के विभाग के लिये भी, रघुनन्दन शर्मा ने लिखा है कि “इस विभाजन के कारण मन्त्रों के केवल संख्या अंक ही फिरे और किसी प्रकार का फेर फार नहीं हुआ । इसलिये वैदिकों ने दोनों को एक ही मानकर मिला दिया । अब तक दोनों शाखाएँ एक ही में मिली हुई मिलती हैं और केवल इतिहास स्मरणार्थ दोनों प्रकार के पते (मण्डल तथा अष्टक) वर्तमान ऋग्वेद के पृष्ठों में लिखे रहते हैं । यह क्रम आदि काल से ही चला आता है । इस प्रकार से यह आदि प्रवचन कर्ता की स्थिर की हुई ऋग्वेद शाखा प्राप्त है और इसमें अब तक आरम्भिक संहिता के प्रकृत मन्त्र और पदपाठ दोनों एक ही में छपते हैं । × × × इसलिए आदिम अपौरुषेय ऋग्वेद संहिता पूर्ण रूप से प्राप्त है इसमें ज़रा भी संदेह नहीं । ” (पृष्ठ ५४५) ऋग्वेद की तरह यजुर्वेद की शाखाओं पर विचार करते हुए रघुनन्दन शर्मा ने लिखा है—“इसलिये माध्यन्दिनीय शाखा (वर्तमान यजुर्वेद) ही आदि मूल और अपौरुषेय है इसमें संदेह नहीं । ” (पृष्ठ ५४८)

इसी प्रकार सामवेद के सम्बन्ध में लिखा है—“इसलिये उत्तर भारत से सम्बन्ध रखने वाली और गुर्जर (दक्षिण गुजरात) तक फैली हुई कौथुमी शाखा (वर्तमान सामवेद) ही आर्य शाखा है और आर्य शाखा ही मौलिक है, अतएव कौथुमी शाखा के आदि अर्थात् अपौरुषेय होने में कुछ भी सन्देह नहीं है । (पृष्ठ ५४६)

अथर्व वेद की शाखाओं पर विचार करने के बाद निष्कर्ष यह निकाला है—
“मूल आर्य और अपौरुषेय संहिता तो शौनक संहिता (वर्तमान अथर्व वेद) ही

(३०)

है। वही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के साथ सनातन से पठन पाठन में चली आ रही है, उसी पर भाष्यकारों ने भाष्य किये हैं, और उसी में वेद के सब लक्षण पाये जाते हैं। इसलिये शौनक संहिता ही सनातन ईश्वर प्रदत्त है, इसमें सन्देह नहीं (देखो पृष्ठ ५५८)।

प्रक्षेप

इस प्रकार रघुनन्दन शर्मा ने चारों वेदों को न्यूनाधिक्य से रहित और ईश्वर प्रदत्त मानने के बाद उन में प्रक्षेप होने का प्रश्न उठाते हुये लिखा है:—
‘जहां तक हमको ज्ञात है अब तक एक भी प्रमाण इस बात का उपस्थित नहीं किया गया कि अमुक स्थल प्रक्षिप्त है और इसको आज तक कोई नहीं जानता था। जिन स्थानों को प्रक्षिप्त बतलाया जाता है वे बहुत दिन (ब्राह्मण काल) से सब को ज्ञात हैं। वे प्रक्षिप्त नहीं हैं किन्तु एक प्रकार के परिशिष्ट हैं जो लेखकों और प्रेस वालों की असावधानी से मूल में घुस कर मूल जैसे मालूम होते हैं। बाल खिल्य सूक्त ऋग्वेद में, खिल अर्थात् ब्राह्मण भाग यजुर्वेद में, आरण्यक और महा नाम्नी सूक्त सामवेद में और कुन्ताप सूक्त अथर्व वेद में मिले हुये हैं।

ऋग्वेद

इन पर विचार

हम सब से पहले ऋग्वेद के कथित प्रक्षिप्त या परिशिष्ट पर विचार करते हैं। रघुनन्दन शर्मा ने स्वीकार किया है कि शाखाओं का काल ब्राह्मण काल के बहुत पूर्व का है (देखो पृष्ठ ५४८) और यह भी माना है कि शाखा आरम्भ काल के बहुत दिन बाद संहिताओं में खैलिक भाग—प्रक्षिप्त भाग—जोड़े गये हैं और उन खैलिक भागों का वर्णन ब्राह्मणों में है (देखो पृष्ठ ५४९) शर्मा जी ने इस प्रकरण में यह नहीं बतलाया है कि बालखिल्य सूक्त किस ब्राह्मण से लेकर ऋग्वेद में जोड़े गये हैं। उन्होंने बालखिल्य सूक्तों के प्रक्षिप्त होने के दो प्रमाण दिये हैं—

पहला प्रमाण

ऐतरेय ब्राह्मण का है। ऐतरेय ब्राह्मण के २८। ८ में लिखा है ‘वज्रंण बालाखिल्याभिर्वाचः कूटेन’। इस वाक्य के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि बालखिल्य नाम के कोई महर्षि थे। उनसे सम्बन्ध रखने वाले आठ सूक्त हैं।

(३१)

वे खिल्य नाम के ग्रन्थ में लिखे गये हैं । ❀

इस पर हमारा कहना यह है कि ऐतरेय ब्राह्मण के अन्त के अध्याय प्रक्षिप्त बतलाये जाते हैं । † शर्मा जी का दिया हुआ प्रमाण इसी प्रक्षिप्त भाग के अन्तर्गत है इसलिये कोई अप्रमाणिक लेख किसी दूसरे के अप्रमाणित करने में प्रमाण किस प्रकार माना जा सकता है ? सायणाचार्य का कोई (केचन) शब्द स्वयं बतलाता है कि उसको बालखिल्य किसी कथित महर्षि का कुछ ज्ञान नहीं था उसने ऐसा प्रतीत होता है कि बिना किसी प्रमाण के ही बालखिल्य ऋषि और उनके कथित खिल्य ग्रन्थ की कल्पना करली । देशी और विदेशी विद्वानों ने जो संस्कृत साहित्य के इतिहास लिखे हैं उनमें कोई खिल्य नामक ग्रन्थ नहीं देखने में आता ।

(२) दूसरा प्रमाण शर्मा जी ने किसी अनुवाकानुक्रमणि से दिया है । उसमें लिखा है कि खिल भाग को छोड़कर ऋग्वेद के एक सहस्र सूक्त निश्चित हैं । × परन्तु इसी अनुवाकानुक्रमणि के नाम से पं० भगवतदत्त ने लिखा है कि शाकल शाखा में १११७ सूक्त और बाष्कल शाखा में इससे आठ अधिक सूक्त अर्थात् ११२५ सूक्त हैं । * इससे स्पष्ट हो जाता है कि रघुनन्दन शर्मा का उद्धृत किया हुआ वाक्य ऋग्वेद संहिता से नहीं अपितु किसी शाखा विशेष से सम्बन्धित होगा जिसमें बालखिल्य सूक्तों के सिवा और भी १४ सूक्त बाष्कल शाखा से कम होंगे । शर्मा जी को ऋग्वेद की केवल दो शाखाओं का पता चला था परन्तु उनके पीछे और भी अनेक शाखाओं का ज्ञान विद्वानों को हुआ और उन्होंने उन (अश्वलायन आदि शाखाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है । +

❀ बालखिल्य नामका: केचन महर्षय तेषां सम्बन्धीन्यष्टौ सूक्तानि विद्यन्ते तानि बालखिल्य नाम के ग्रंथे समाभ्यायन्ते । (सायनाचार्य)

† देखो Encyclopedia Britanica में प्राचीन संस्कृत (Ancient Sanskrit literature) सम्बन्धी लेख ।

× सहस्रं मेतत्सूक्तानां निश्चितं खैलिकेविना ॥ (अनुवाकानुक्रमणि)

* एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कल केऽधिकानि । तान्पाण्ये शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टं न खिलेषु विप्राः ॥ ३६ ॥

+ देखो पं० भगवतदत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृष्ठ ६८-१०२ ।

(३२)

अस्तु वालाखिल्य सूक्त जब वाष्कल शाखा में मौजूद हैं और जब शर्मा जी शाकल और वाष्कल शाखा के लिये स्वीकार करते हैं कि 'वैदिकों ने दोनों (शाकल + वाष्कल) को एक मानकर एक में लिख दिया और अब तक दोनों शाखायें एक ही में मिली मिलती हैं ।" जैसा ऊपर लिखा जा चुका है तो वे किस प्रकार से कह सकते हैं कि वालाखिल्य सूक्त परिशिष्ट हैं मूल नहीं ।

स्वामी हरप्रसाद और वेदों का प्रक्षेप विषय

रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रन्थ में प्रक्षेप और पुनरुक्ति का विषय स्वामी हरप्रसाद के वेद सर्वस्व के आधार से शुरू किया है (देखो पृष्ठ ५५१) परन्तु उन्हें समझना चाहिए था कि स्वामी हरप्रसाद तो ऋग्वेद के सिवा अन्य वेदों को अपौरुषेय वेद ही नहींमानते फिर उनका प्रक्षेप का विषय उठाना कैसा ? उन्होंने एक जगह लिखा है—

यजुर्वेद—

यज्ञ कर्म से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण यजु नाम के मन्त्रों को ऋग्वेद संहिता से अलग करके, उनमें कुछ सामयिक भाषा में लिखे हुए ब्राह्मण नाम के गद्य भाग को यथोचित स्थान में सम्मिलित करके यज्ञ पद्धति के रूप में लिख दिया गया इसी का नाम पीछे से यजुर्वेद हो गया ।

सामवेद—

इसी प्रकार यज्ञ कर्म में गाये जाने वाले साम नाम के मन्त्रों को ऋग्वेद से अलग करके क्रम विशेष के रूप में लिख दिया गया—उसी का नाम सामवेद हो गया ।

अथर्ववेद—

प्राचीन साहित्य के रूप में परम्परा से प्राप्त थोड़े मन्त्रों में बहुत अधिक ऋचा मन्त्रों को मिलाकर और "ऐतश प्रलाप" इत्यादि वृणित तथा व्यर्थ अनेकों ग्रामीण वाक्यों का समिश्रण करके अथर्व वेद संहिता तय्यार की गई ।

जिस व्यक्ति के इस प्रकार के तुच्छ विचार हों उसका वेदों के प्रक्षेप आदि से क्या मतलब ? रघुनन्दनजी को उनके लेख पर ध्यान नहीं देना चाहिए था ।

ॐ "स्वाध्याय" पुस्तक स्वा० हरप्रसाद रचित पृष्ठ ३ से ५ तक ।

(३३)

वालखिल्य सूक्त

ये सूक्त उसी समय से ऋग्वेद संहिता के अन्दर सम्मिलित हैं जब से वह प्रादुर्भूत हुई शाखाओं में से किन्हीं में उन्हें लिखा गया किन्हीं में नहीं। शाखाओं में सूक्त और मन्त्र संख्या भेद उसी समय से चला आता है जब से उनका जन्म हुआ। इसीलिये शाकल्य और वाष्कल प्राचीनतम शाखाओं में भी, जिन्हें रघुनन्दनजी ने आर्य शाखा माना और जिनमें मन्त्र संख्या में न्यूनाधिक्य न होना लिखा है, सूक्त संख्या भेद है। इन शाखाओं से ऋग्वेद संहिता प्रथक थी और उसमें वालखिल्य सूक्त सम्मिलित थे। इसीलिए पं० भगवतदत्त ने लिखा है:—

“यथा शाकलों में कई वालखिल्य सूक्त नहीं हैं परन्तु वाष्कलों में ये मिलते हैं। मूल ऋग्वेद में ये सारे समाविष्ट हैं। *

इनमें आठवें मण्डल के ११ सूक्तों में आये हुए ८० वालखिल्य मन्त्र भी सम्मिलित हैं। ये ऋग्वेद का अंग है। +

इन्हीं वालखिल्य सूक्तों की प्राचीनता के सम्बन्ध में विन्टर निट्ज ने लिखा है:—खिल शब्द के अर्थ परिशिष्ट के हैं और यह नाम स्वयं प्रकट करता है कि यह मूल है और एकत्रित करके संहिता में पीछे से शामिल किए गए। परन्तु यह सम्भावना है कि इन (खिल मन्त्रों) में से कुछेक की प्राचीनता ऋग्वेद की अन्य ऋचाओं से कम नहीं। यह बात समझ में नहीं आती कि इन्हें परिशिष्ट क्यों कहा गया? ¹ फिर उसने लिखा है कि ये ११ सूक्त वालखिल्य के सभी हस्त लिखित कापियों में पाए जाते हैं। ²

* वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ ७६।

+ ,, ,, पृष्ठ १३५।

(1) The word Khila means “supplement” and this name in itself indicates that they are texts which were collected and added to the sanhita only after the latter had already been conducted. This does not exclude the possibility that some of these Khilas are of no less antiquity than the hymns of the Regved Sanhita but for some reason unknown to us were not included in the collection.

(A History of Indian Literature by Mr. Winternity P.Hd. p. 59-60)

(2) The eleven Bal Khillya hymns ... in all manuscripts are found at the end of the book VIII. (p. 60)

(३४)

इन सब बातों पर विचार करने के बाद हमारी सम्मति यह है कि ये वालखिल्य सूक्त न प्रक्षिप्त हैं और न परिशिष्ट किन्तु वेद का अंग है । मालूम यह होता है कि ये सूक्त प्रारम्भ में बहुत प्रचलित थे और यह भी सम्भव है कि कोई वालखिल्य नामक व्यक्ति उनका प्रचारक हो । इसलिये उसी के नाम से इनकी प्रसिद्धि हो गई । और सुगमता से लोगों को मिल जाय इसलिए उनको प्रारम्भ और अन्त में “अथ” और “इति” किसी ने लगा दी । पीछे से यह अथ और इति पुस्तक का अंग बन गई । पं० रघुनन्दन शर्मा का यह अनुमान ठीक नहीं कि लेखकों के प्रमाद से ये सूक्त अन्त में रहने की जगह मूल में शामिल हो गये । ये सूक्त आठवें मण्डल के भी अन्त में नहीं किन्तु उसके बीच में हैं । ग्रीफेथ ने यह ईमानदारी का काम नहीं किया कि अपने ऋग्वेद के अनुवाद में इन्हें आठवें मण्डल के बीच में से निकालकर अन्त में रख दिया है । मैक्समूलर ने जो शुद्ध ऋग्वेद का संस्करण यूरोप में छपवाया था उसमें भी वे सूक्त मौजूद हैं ।

यजुर्वेद—

रघुनन्दन जी ने यजुर्वेद में प्रक्षिप्त होने के लिये जो प्रमाण दिये हैं उनमें से एक एक को लेकर उन पर विचार किया जावेगा ।

पहला आक्षेप

सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि ऋचा, खिल और शुक्रिय मन्त्रों के सहित माध्यन्दिनीय यजुर्वेद के ऋषि, देवता और छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ ।* इस पर रघुनन्दन जी का कहना यह है कि यहां खिल भाग का प्रत्यक्ष इशारा है ।

हमारा उत्तर

खिल परिशिष्ट (appendix) को कहते हैं प्रक्षिप्त को नहीं । किसी ग्रन्थ के परिशिष्ट के लिये यही समझा और माना जाता है कि वह उसी ग्रन्थ कर्त्ता की रचना है, जिसका वह ग्रन्थ है । फिर उसे बाहर का भाग क्यों समझना चाहिए ? यहां एक बात और भी समझ लेनी चाहिए कि हम माध्यन्दिन शाखा का मूल यजुर्वेद नहीं मानते । व्यास का शिष्य वैशम्पायन था जिसने तैत्तिरीय शाखा (कृष्ण यजुर्वेद) का प्रचार किया था । उसका शिष्य याज्ञवल्क्य था जो शतपथ

* माध्यन्दिनीये वाजनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिय ।

ऋषि दैवत छन्दाँ स्यानुक्रमिष्यामः ॥ सर्वानुक्रमणि ॥

(३५)

का रचयिता था और जनक आदि से जिसका सम्वाद ब्रह्मदारण्यकोपनिषद् में अङ्कित है। उसी को वाजसनेय याज्ञवल्क्य भी कहते हैं। उसका वैशम्पायन से बिगाड़ हो गया था इसलिये कि वह (याज्ञवल्क्य) तैत्तिरीय शाखा का प्रचार का विरोधी था। याज्ञवल्क्य के १५ शिष्य थे जिनमें से प्रत्येक ने यजुर्वेद की एक एक शाखा का प्रचार किया था। इन्हीं में से दो शिष्य काण्व और माध्यन्दिन थे, जिन्होंने काण्व और माध्यन्दिन शाखाओं का प्रचार किया था। याज्ञवल्क्य के शिष्य मूलवेद के यथासम्भव साथ साथ चलते थे। कृष्ण यजुर्वेद की तरह ये १६७५ मन्त्रों को बढ़ा कर १८००० कर देने के विरोधी थे। यही कारण वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य के बिगाड़ का था। स्पष्ट है कि इन काण्व और माध्यन्दिन शाखाओं का प्रादुर्भाव ५००० वर्ष (महाभारत काल) से कुछ इधर ही हुआ है। परन्तु मूल यजुर्वेद इससे बहुत पहले प्रादुर्भूत हो चुका था। किष्किन्धा पर हनुमान की योग्यता के लिए राम ने लक्ष्मण से कहा था कि बिना ऋक्, यजु और साम वेदों के जाने कोई इस प्रकार की बात नहीं कर सकता।†

ब्राह्मण शाखाओं के बनने के बहुत पीछे बने हैं। इसलिए शाखाओं के बनने से पूर्व उपस्थित वेदों में ब्राह्मण भागांश का मिश्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यजुर्वेद के विषय

यजुर्वेद के विषयों पर विचार करने से पं० रघुनन्दन शर्मा के कहे खिल भाग का स्पष्टीकरण हो जाता है।

सं०	अध्याय	विषय
(१)	१, २	दर्श पौर्णिमा यज्ञ
(२)	३	दैनिक तथा चातुर्मास यज्ञ
(३)	चौथे से आठवें अध्याय तक	सोमयज्ञ
(४)	नवां तथा दसवां अध्याय	वाजपेय राजसूय यज्ञाङ्ग मन्त्र समूह
(५)	ग्यारहवें से अठारहवें तक	वेदी की तय्यारी आदि

† नानुवेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।

नासामवेद विदुषः शक्यमेवं प्रमाषितम् ॥

(बालमीकीय रामायण १।३।२६)

(३६)

- | | |
|----------------------------|--|
| (६) १६ से २१ वें अध्याय तक | सौत्रामणि यज्ञ |
| (७) २२ से २५ तक | अश्वमेध यज्ञ |
| (८) २६ से २९ वें तक | प्रारम्भिक यज्ञ सम्बन्धी नियम |
| (९) ३० से ३६ तक | पुरुष मेध, पितृ मेध, सर्व मेध और प्रवर्ग्य के नियम और विधि |
| (१०) ४० वां अध्याय | ब्रह्मविद्या (ज्ञानकाण्ड) |

महीधर और उन्वट ने यजुर्वेद की टीका करते हुए २५ अध्याय तक की, जहां तक किसी न किसी यज्ञ का विधान है, मूल और बाकी अध्याय जिनमें उन यज्ञों से सम्बन्धित अन्य बातें तथा यज्ञोत्तर शिचार्ये हैं, उन्हें खिल अर्थात् मूल २५ अध्याय का स्पष्टीकरण तथा विस्तार आदि लिखा है। इसका कदापि यह मतलब नहीं हो सकता कि ये अध्याय पीछे के मिलाये हुए हैं।

दूसरा आक्षेप

सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि (१) यजुर्वेद १६।१२ के “देवा यज्ञमतन्वत” मन्त्र से लेकर २० अनुप छन्द ब्राह्मण भाग हैं।

(२) समस्त २४ वां अध्याय और २५ वें अध्याय के आरम्भ के “वाद” से लेकर ६ मन्त्र भी ब्राह्मण हैं।

(३) यजुर्वेद अध्याय ३० के “ब्राह्मणे ब्राह्मणम्” से लेकर सारा अध्याय ब्राह्मण है।

हमारा उत्तर

पहले आक्षेप के उत्तरांत से प्रकट है कि इस वेद के २५ वें अध्याय तक तो किसी ने उन्हें मूल के सिवा खिल कहने तक का साहस ही नहीं किया फिर सर्वानुक्रमणी कार किस प्रकार उन्हें वेद से बाहर का भाग कह सकता था। सर्वानुक्रमणी कार का भाव समझने में योरूप के विद्वानों को तो भ्रम हुआ ही करता था परन्तु आश्चर्य है कि शर्मा जी भी उसी भ्रम में पड़ गये। पहला उत्तर तो यह है कि यदि उपर्युक्त मन्त्र ब्राह्मण ग्रंथों के वाक्य हैं तो पता देना चाहिए था कि किस ब्राह्मण के ये वाक्य हैं? दूसरी बात यह कि ब्राह्मण ग्रन्थ छन्दों में हैं भी नहीं फिर छन्द उनके अंश किस प्रकार से हो सकते हैं? फिर इन छन्दों के देवता और ऋषि भी प्रजापति और गौतम-आदि ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रायः सभी ब्राह्मण कारों से सहस्रों वर्ष पहले हो चुके हैं ;

(३७)

असल बात यह प्रतीत होती है कि ब्राह्मण शब्द ब्राह्मण ग्रंथों की रचना से बहुत पहले से कर्मकाण्ड के लिए प्रयुक्त होने लगा था। इसीलिए कर्म काण्ड के ग्रंथ शतपथ आदि जब रचे गये तब उनके कर्ताओं ने कर्म काण्ड में रूढ़ि हुए ब्राह्मण शब्द ही को उन ग्रंथों के नाम के लिए उपयोगी समझकर उनका नाम ब्राह्मण रक्खा। इसी प्रथा के अनुकूल सर्वानुक्रमणी कार ने भी ब्राह्मण शब्द कर्मकाण्ड के अर्थों में प्रयुक्त किया है। उनका इसीलिए अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त मन्त्र कर्मकाण्ड विभाग के हैं। इनमें प्रक्षेप आदि की बात ढूँढना व्यर्थ है।

तीसरा आक्षेप

रघुनन्दनजी ने बिना पते के एक श्लोक ✽ लिखकर प्रकट किया है कि इसके अनुसार यजुर्वेद के मन्त्र १६०० हैं परन्तु वर्तमान यजुर्वेद में १६७५ मन्त्र हैं इसलिए ७५ मन्त्र कहीं बाहर से लाकर जोड़े गये हैं।

हमारा उत्तर

पं० भगवदत्त ने यजुर्वेद के मन्त्रों की संख्या काशी के शिक्षा संग्रह में मुद्रित वासिष्ठी शिक्षा के अनुसार १६७५ ही दी है। * यह संख्या उन्होंने अध्याय वार दी है। इसलिए यजुर्वेद के मन्त्र संख्या १६०० कहना भूल है। जो श्लोक शर्मा जी ने दिया है उसमें किसी ने थोड़ी सी चालाकी की है। पं० भगवदत्त ने दो श्लोक वायुप्राण अध्याय ६१ के ६७ व ६८ वें श्लोक हैं अपने ग्रन्थ में दिए हैं और वे इस प्रकार हैं।*

द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वाजसनेयके।

ऋग्गणः परि संख्यातो ब्राह्मणंतु चतुर्गुणम् ॥

अष्टौ सहस्राणि शतानिचाष्टावशीतिर न्यान्यधिकश्च पादः।

एतत् प्रमाणं यजुषामृचां च स शुक्रियं सखिलं याज्ञवल्क्यम् ॥

ये दोनों श्लोक ब्रह्मांड पुराण पूर्व भाग अध्याय ३५ के भी श्लोक ७६ व ७७ हैं। दूसरे श्लोक में याज्ञवल्क्य से सम्बन्धित समस्त शाखाओं के ऋचा और

✽ द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वाजसनेय के।

इत्युक्त परि संख्यात मेतन्सर्वं सशुक्रियम् ॥

* देखो पं० भगवदत्त रचित वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृष्ठ १७०-१७२।

* ,, ,, पृष्ठ १७४।

(३८)

यजु मन्त्रों का योग ८८८० और एक पाद दिया है और पहले श्लोक में केवल ऋचा (पाद व्यवस्था वाले) मंत्रों का योग १६०० दिया है जिसका अभिप्रायः यह है कि (शेषे) यजु मन्त्र ६६८० और एक पाद हैं । १६०० ऋचाओं के बतलाने के लिये श्लोक में “ऋग्गणः परिसंख्यातो” पाठ आया है । रघुनन्दन शर्मा ने जो श्लोक यजुर्वेद की मंत्र संख्या १६०० बतलाने के लिए दिया है वह इन दो श्लोकों में से पहले का विकृत रूप है । उसमें किसी चालाक ने “ऋग्गणः” की जगह “इत्युक्त” शब्द कर दिया है । जिससे यजुर्वेद की मंत्र संख्या १६०० समझी जावे एक चरण व्यूह में भी यह श्लोक है वहां इसका पाठ इस प्रकार है:—

द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वाजसनेयके ।

ऋग्गणः परि संख्या ततस्तोऽन्यानि यजूंषि च ॥

इसमें भी वही “ऋग्गण” पाठ है ।

अतः स्पष्ट है कि यह आक्षेप भी पं० रघुनन्दन के दिये हुए श्लोक से पुष्ट नहीं होता ।

यहां यह बात समझ लेना चाहिए कि वाजसनेयों की १५ शाखाओं में भी मंत्र भेद हैं । उदाहरण के लिए काण्व शाखा को देखें तो उसमें २०८६ मंत्र हैं । वाजसनेयी शाखाओं में माध्यन्दिनीय शाखा क्यों समस्त भारत में प्रचलित हो गई ? उसका कारण केवल यह है कि इस शाखा का माध्यन्दिन ने अपनी शाखा में मूल संहिता की मन्त्र संख्या १६७५ को ज्यों का त्यों बनाये रक्खा उसमें कुछ न्यूनाधिक्य नहीं किया । इसीलिए कई प्रेस अब भी मूल यजुर्वेद को माध्यन्दिनीय शाखा कह कर छपा करते हैं ।

चौथा आक्षेप

यजुर्वेद के प्रसिद्ध मंत्र, “नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः” (देखो यजुर्वेद २२।३) पर है । शर्मा जी का आक्षेप मंत्र के दूसरे चरण पर है । वे कहते हैं कि इस मन्त्र में आधा भाग तो मंत्र का है परन्तु आधा भाग तीन भिन्न भिन्न स्थलों में आये हुए मंत्रों की प्रतीकों का बतलानेवाला वाक्य (प्रक्षिप्त) वाक्य है ।

हमारा उत्तर

प्रतीक बतलाने वाला वाक्य बाहर का (प्रक्षिप्त) वाक्य क्यों कहा जा सकता है ? क्या एक ग्रंथकार अपने ग्रंथ के किसी उत्तर भाग में अपने पूर्व भाग

(३६)

की प्रतीक नहीं हो सकता ? यदि ए६ कर्म में किन्हीं ऐसे मंत्रों की आवश्यकता है जो उससे पूर्व उसी ग्रंथमें आचुके हैं तो वहां समस्त मंत्रों के दोहराने की जगह उनकी प्रतीक दे देनी काफी समझी जा सकती है और यही बात इस आक्षेपान्तर्गत मंत्र में की गई है। इस मंत्र में यजुर्वेद में इस २२ वें अध्याय से पूर्व आए हुए एक यजुर्वेद के आठवें दूसरी बारहवें और तीसरी (हिरण्य गर्भः सम्बर्तताग्र) तेहरवें अध्याय में आए हुए मंत्रों की प्रतीकें हैं। शर्माजी ने एक होशियारी की है और वह यह है कि “हिरण्य गर्भः इति” प्रतीक का पता यजुर्वेद १३।४ का न देकर ऋग्वेद ८।७।६ का दिया है जिससे यह मंत्र यजुर्वेद का न समझा जाकर ऋग्वेद का समझा जावे। आश्चर्य है कि ऐसा क्यों किया गया है ? अस्तु ! यहां यजुर्वेद के सम्बन्ध में जो परिमित आक्षेप, उसमें मिलावट होने के सम्बन्ध में थे समाप्त हो जाते हैं।

सामवेद—

पहला आक्षेप

सामवेद की महा नाम्नी ऋचायें और आरण्य भाग परिशिष्ट हैं। महानाम्नी ऋचाओं के परिशिष्ट होने के प्रमाण में शर्मा जी ने एतरेय ब्राह्मण का एक वाक्य उपस्थित किया है जिस का भाव यह है कि इन (महा नाम्नी) ऋचाओं को प्रजापति ने वेद की सीमा से बाहर बनाया है। यहां महानाम्नी ऋचायें, स्पष्ट रीति से ऋग्वेद की सीमा के बाहर बतलाई गई हैं।† इस के सम्बन्ध में हमारा उत्तर यह है कि एतरेय ब्राह्मण के वाक्य से यह स्पष्ट नहीं होता कि ये ऋचायें परिशिष्ट हैं। इस वाक्य में इन ऋचाओं को प्रजापति (ईश्वर) की रचना कहा गया है फिर इन के मिलावटी होने का प्रश्न कैसा ? इस वाक्य का अर्थ पं० रघुनन्दन ने यह समझा है कि “ये ऋचायें स्पष्ट रीति से ऋग्वेद की सीमा से बाहर बतलाई गई हैं।” * जब ये ऋचायें सामवेद की हैं तो साफ जाहिर है कि इन्हें ऋग्वेद की सीमा से बाहर तो होना ही चाहिए था वेद सर्वस्व के कर्ता स्वा० हरप्रसाद जिन के लेखों पर ही शर्मा जी के ये सब आक्षेप हैं, उन्होंने ७५ मंत्रों का एक सामवेद छापा था जिन में ऋग्वेद के मंत्रों को निकाल कर सामवेद के असली

† ताऊर्ध्वा साम्नो ऽभ्य सृजत । यदूर्ध्वा सीक्तो ऽभ्य सृजत ततसिमा अभवन् तत्सिमानां सिमात्वम् ॥ एतरेय ब्राह्मण २२-२

* वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ ५५३

(४०)

मंत्र ७५ उन्होंने छापे थे उन मंत्रों में स्वामी हरप्रसाद ने भी इन ऋचाओं को सामवेद को असली ऋचा कह कर छपा था। स्पष्ट है कि इन ऋचाओं के परिशिष्ट होने के सम्बन्ध में शर्मा जी के हेतु अहेतु हैं।

आरण्यक भाग के लिये शर्मा जी ने लिखा है कि यह भी परिशिष्ट है पूर्वार्चिक के छठे में जहां यह आरण्यक खंड जुड़ा हुआ है उस में (दो की जगह तीन विभाग छपे हुये हैं। यह तीसरा विभाग ही आरण्यक है। इसे सायणाचार्य ने भी परिशिष्ट ही कहा है और उसके देखने मात्र से यह परिशिष्ट मालूम हो जाता है। (पृष्ठ सं० ५५३)

हमारा उत्तर

हमने छठे प्रपाक के तीसरे भाग (आरण्यक) को ध्यान पूर्वक देखा। आरण्यक के कुल ५५ मंत्र है जिन में ४२ मंत्र ऋग्वेद के हैं और इन में ११ मंत्र ऐसे हैं जो सामवेद ही के ऐसे स्थानों-उत्तरार्चिक आदि में आये हैं जिन्हें कोई परिशिष्ट नहीं कहता। ऐसी दशा में इन समस्त आरण्यक मंत्रों को परिशिष्ट कहना वे फायदे धूल उड़ाना है। सामवेद में ७५ के सिवा सभी ऋग्वेद के मंत्र हैं उन्हें कौन परिशिष्ट कहने का साहस कर सकता है।

अथर्व वेद—

पहला आक्षेप

अथर्व वेद के कुन्ताप सूत्र भी खिल ही के नाम से प्रसिद्ध हैं। हेतु केवल यह कि इन के प्रारंभ और अंत में “अथ” और “इति” लिखा है दूसरा हेतु यह है कि स्वामी हरप्रसाद ने वालखिल्य सूक्तों की तरह इन को भी परिशिष्ट माना है।

हमारा उत्तर

अथर्व वेद के २० वें काण्ड के १२७ से १३६ तक के सूत्र कुन्ताप सूक्त कहे जाते हैं। इन के परिशिष्ट होने के ऊपर जो हेतु दिये गये हैं, वेदों में अहेतु हैं। उन्हीं हेतुओं से जो हमने ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्तों के असली वेद होने के सम्बन्ध में दिये हैं हम इन सूक्तों को भी अथर्व वेद का मूलांश ही मानते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की जरूरत नहीं है।

(४१)

दूसरा आक्षेप

अथर्व वेद के १६ वें कांड के सूक्त २२ और २३ में लिखा है ।

अङ्गिरसानामाभ्यै पञ्चानुवाकैः स्वाहा ।

आथर्वणानां चतु ऋचेभ्यः स्वाहा ॥

इस पर शर्मा जी का कहना है कि ये वाक्य कहीं बाहर के हैं ऐसे वाक्य स्वयं प्रक्षिप्त होने की सूचना दे रहे हैं । (देखो पृष्ठ ५५४)

हमारा उत्तर

यजुर्वेद से सम्बन्धित चौथे आक्षेप के उत्तर में जो हेतु दिये गये हैं उन्हीं हेतुओं से हम इन वाक्यों को परिक्षिप्त नहीं अपितु मूल वेद का अंश ही समझते हैं । वेद में पहले आये हुए मन्त्रों से उसके बाद की किसी विधि में आहुति देने के लिए प्रयुक्त शब्द मिलावटी हैं, ऐसा मानने के लिये कोई नियम नहीं ।

“उपसंहार”

असल में पं० रघुनन्दन शर्मा ने स्वामी हरप्रसाद के लेखों पर इतना विश्वास किया जिसके वे योग्य नहीं थे और उसी का कारण है कि उनके प्रशंसनीय ग्रन्थ (वैदिक सम्पत्ति) पर, ये निर्मूल आक्षेप धब्बा लगाने वाले हैं । पाठक गण देखेंगे कि आक्षेप कुछ महत्व पूर्ण नहीं और उनके द्वारा व्यर्थ एक प्रश्न (वेदों में आक्षेप होने का) उठाया गया जिसके उठाने के लिये प्रबल हेतु नहीं थे । इन आक्षेपों के सम्बन्धमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह स्वाध्याय शील विद्वानों के विचारार्थ ही लिखा गया है, आशा है कि वे उस पर विचार करेंगे ।

गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या का हल अभी भी होना है ।

२३।२।४१ को गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या के हल के लिए समस्त दलों की जो तथा कथित कान्फ्रेंस हुई थी उसकी कार्यवाही की रिपोर्ट समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गई है ।

यह कहा गया है कि इस कान्फ्रेंस ने जो प्रस्ताव पास किया है उसमें डोला-पालकी में वरवधू को ले जाने के हरिजनों के नागरिक अधिकार को स्वीकार किया गया है और इसलिये यह आशा की जाती है कि डोला पालकी की समस्या से जो वर्तमान भगड़ा उत्पन्न हुआ है वह मिट जायगा और जिले में अच्छा वातावरण व्याप्त होने में सहायक होगा ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा उन सूचनाओं के आधार पर जो उसके कार्यालय में पीड़ित पक्ष से प्राप्त हुई हैं, यह घोषणा करना अपना कर्तव्य समझती है कि लैंसडौन की उपर्युक्त कान्फ्रेंस जल्दबाजी का अपूर्ण यत्न था और इससे न केवल समस्या का हल ही नहीं हो सकता था अपितु इसने समस्या को और भी जटिल बना दिया है ।

वास्तविक स्थिति को समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिये कि आर्य भाई अर्थात् शिल्पकार लोग जो आर्य समाजी बन गये हैं, पीड़ित हैं । कुछ वर्ष हुए उन्होंने साहस करके डोला पालकी के जलूस निकालकर सबर्णों के साथ अपने नागरिक अधिकारों की समानता की रक्षा की थी और इस साहस में सबर्णों के हाथों उन्हें अत्याचार भी सहन करने पड़े थे । स्पष्टतः जब तक उपर्युक्त प्रस्ताव को आर्य लोग स्वीकार नहीं कर लेते हैं तब तक कोई निर्णय सर्व सम्मत नहीं हो सकता ।

म० भगतराम ने जो इस आन्दोलन में आर्यों के सम्मानित नेता हैं लैंसडाउन कान्फ्रेंस में स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की थी कि इस प्रस्ताव से आर्यों को वह चीज नहीं मिलती है जो वे चाहते हैं वरन् उन पर वे पाबन्दियां लगती हैं जिन्हें वे स्वीकार नहीं कर सकते । अपने कथन के समर्थन में उन्होंने निम्न हेतु प्रगट किए:—

(४३)

१. सरकार ने उनका नाम आर्य स्वीकार कर लिया है और सरकारी कागजों में वे इसी नाम से अंकित किए जाते हैं। हरिजन नाम से नहीं।

२. इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अपने १९३६ के प्रसिद्ध फैसले में डोला पालकी निकालने के आर्यों के निर्वाध अधिकार को स्वीकार कर लिया था। परन्तु प्रस्ताव से उन पर यह नई पाबन्दी लगाई जाती है कि वे सर्वण हिन्दुओं की नाई मन्दिरों और उपासना गृहों के पास से निकलते हुए डोला पालकी में से उतर जायें। परन्तु चूँकि आर्य भाई मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं अतः उन्होंने इस पाबन्दी को स्वीकार नहीं किया परन्तु धार्मिक कर्तव्य के रूप में नहीं वरन् पारस्परिक सद्भाव को बढ़ाने के लिये बतौर प्रथा के वे इसको स्वीकार करने के लिये उद्यत थे इस शर्त के साथ यदि सर्वण हिन्दू भी आर्य समाज मन्दिरों के सामने डोला पालकी से उतरना स्वीकार कर लें परन्तु दुर्भाग्य से कान्फ्रेंस के संचालकों ने इस निर्दोष प्रथा को स्वीकार करना पसन्द न किया।

३. आर्य यह चाहते हैं कि कान्फ्रेंस धार्मिक, सामाजिक और नागरिक अधिकारों में आर्यों, शिल्पकारों और तथा कथित सर्वणों की समानता के असूल को स्वीकार करके इसकी घोषणा कर दें परन्तु बड़े आश्चर्य और दुख की बात थी कि कान्फ्रेंस के संचालकों ने सामाजिक न्याय के इस प्रारम्भिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया।

४. १ से ३ तक की बातों का सन्तोष जनक हल न होने के कारण आर्य भाई उस कमेटी में अपने प्रतिनिधि भेजने में असमर्थ हैं जो भविष्य में उठने वाली समस्याओं के हल के लिये प्रस्तावित हुई हैं अतः उसके निर्णयों से वे बाध्य न होंगे।

इस वक्तव्य के साथ म० भगत राम जी ने कान्फ्रेंस की कार्यवाही में आर्यों के भाग न लेने की घोषणा की। इसके पश्चात् कान्फ्रेंस की कार्यवाही एक तरफा मामला रह गया था। वर्तमान में डोला पालकी की समस्या वहीं है जहां पहले थी। परन्तु हमें आशा करनी चाहिये कि गढ़वाल के सुधार वादी भाई अपने सत्प्रयत्नों को और भी अधिक वेग और बल से इस दिशा में प्रेरित करेंगे और शीघ्र ही समस्या का हल हो जायगा जो आर्यों के लिये पूर्णतया सन्तोषजनक होगा।

सुधाकर, मन्त्री।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

घोषणा

सर्व साधारण की सूचनार्थ घोषित किया जाता है कि हैदराबाद आर्य सत्याग्रह को सफलता पूर्वक चलाने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने जो अपील प्रकाशित की थी उसके अनुसार देश और विदेश में आर्यों तथा आर्य संस्थाओं के अतिरिक्त बहुत सी अन्य संस्थाओं तथा महानुभावों ने धन एकत्र किया था। यह सारा धन हैदराबाद सत्याग्रह निधि का धन था। सत्याग्रह की समाप्ति पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा ने धन संग्रह करने वाली सभी संस्थाओं तथा महानुभावों से इस निधि के लिए प्राप्त धन का हिसाब तथा शेष धन भेजने के लिए प्रार्थना की। फल स्वरूप बहुत स्थानों से शेष धन प्राप्त हो गया और हिसाब तो लगभग सभी जगहों से प्राप्त हो चुका है। परन्तु खेद के साथ यह सूचित करना पड़ता है कि प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान, लाहौर ने बार-बार प्रार्थनाएँ करने पर भी न तो हैदराबाद सत्याग्रह निधि का शेष धन ही भेजने की कृपा की है और नहीं इस निधि का हिसाब भेजा है। यहां तक कि इस सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा के पत्रों का उत्तर तक देने का कष्ट नहीं उठाया।

सत्याग्रह सञ्चालन के दिनों में प्रादेशिक सभा तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली समाजों तथा महानुभावों की ओर से केवल १४२२७ रु० १ आना ६ पाई ही सार्वदेशिक सभा को प्राप्त हुए थे। मौखिक बातचीत तथा अन्य प्रकार से जहां तक पता लगा है उससे अनुमान होता है कि उस सभा के पास लगभग २५००० रु० शेष रहे जो सार्वदेशिक सभा की हैदराबाद सत्याग्रह निधि में देने चाहिए थे और जो नहीं दिए हैं।

धनश्यामसिंह गुप्त

प्रधान

सार्वदेशिक सभा,

देहली।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

From untruth lead me to truth,
From darkness lead me to light,
From death lead me to immortality.

I thank you very much for the signal honour you have done me in choosing me as the president of the First South India Aryan Conference. I am new to these parts and feel naturally diffident. A southerner, well acquainted with all the phases of life here, should have been the fittest person for such a task. I do not mean that you ignored this point. Your original president-elect was Mr. Satyamurti, that leading public man of Madras whose qualifications of head and heart have won him such a popularity among his countrymen and whose many-sided activities are so well-known throughout India. But God willed otherwise. I need not dwell upon the importance of the campaign in which he is engaged at present. These are very critical times not only for India, but for the whole world. Every sane man is feeling that the old order has grown too rotten and there is an urgent need of bringing a better substitute. The question is what that order should be and what ways and means should we adopt. It will be irrelevant to discuss here the points which do not fall within the jurisdiction of your conference and I shall confine myself to the task immediately in hand. I should be brief and to the point.

The Aryasamaj has not so far been able to do any organized work in the Southern India. At the beginning of this century, two Arya Sanyasis of profound learning,

The presidential address of His Holiness Mahatma Narayanswamiji Maharaj read at the first South India Aryan Conference, Madura, on 26th December, 1940.

(४६)

Swamis Visheshwaranand and Nityanand had visited Mysore and the then ruler of the state was so impressed that he readily embraced the Vedic religion. Unfortunately he died young and the Aryasamaj could not make a headway. In 1918, His Highness the Maharaja of Kolhapur directed his attention to the work of the Aryasamaj and put the Raja Ram College and High School in the charge of the Arya Pratinidhi Sabha U. P. He wanted to chalk out a regular programme of the Aryasamajic activities in the Southern Maharashtra and neighbouring parts. But in this case, too, the sudden and untimely death of the Maharaja hampered the work. The late Principal Balkrishna of the Raja Ram College Kolhapur tried his best to keep the flame burning and organized a separate Arya Pratinidhi Sabha for the Mahartsashtra Country; yet the Aryasamaj could not get a strong footing in the south. In the meantime there occurred a very serious thing. I hope the clarion-call of the well-known Aryan Satyagraha of 1939 in the Nizam's dominions is still ringing in your ears. It was the first great non-violent battle in the cause of truth and justice, not only in the life of the Aryasamaj, but in that of the whole of Hindudom. What in the point of discipline and self-sacrifice and what in that of truthfulness and non-violence, the Aryan Satyagraha stands unique in the history of Satyagraha in India. For several centuries, never before had the jarring and warring sections of Hinduism come so close to each other. It not only evoked the sympathies and appreciation of friends and foes alike; it met an unprecedented success in cementing the gulf between the points of view of His Exalted Highness's Government and those of his Arya subjects. The event is too recent to warrant a narration of details,

Our object in assembling here today is to see if it is possible to find out any efficacious prescription in the pharmacopia of old Rishis for the diseases from which mankind is

(४०)

suffering today. Up till a few years back we boasted of our modern civilization and were never tired of ridiculing the crude thinking and crude living of our ancestors. But all is not gold that glitters. The materialistic tendencies of the modern world have de-humanized man and brought him to the level of intellectual wolves. That knowledge of the laws of God's nature which goes by the name science has been woefully misused. We have learnt how to dive deep in the ocean like whales and fly in high heavens like kites but we have forgotten how to live peacefully on the earth. Science has but quickened our wolvisish appetites and sharpened our wolvisish teeth. Is it science? Is it Jnan or Vidya? Was it for this sort of knowledge that our sages said. ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः। "Salvation is not possible without knowledge"? Is it salvation that we are seeking? Or hellish destruction? At this very moment, when we are peacefully holding this meeting in this pandal, do you know how many lives are being lost in cold-blood and what scientific means are not being discovered to hasten the destruction of mankind! We read of the old Mahabharat and the destruction it brought to India. But then, there was a silver lining to the blackclouds. Lord Krishna preaching spirituality to Arjuna at the battle-field, is a great thing; at least the conception is very noble and inspiring. Lord Krishna's Gita has given solace to many and has saved mankind from total petrification or annihilation. And if you trace the stream of Krishna's Teachings to its very fountain-head—the Vedas, you will marvel what a treasure of knowledge exists which we are not utilising on account of our ignorance. Lord Krishna rightly says :—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।

न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ (गीता १६-२३)

'He who forsakes the path of the Vedas and acts through greed gets neither success, nor peace, nor salvation'.

Has not the present world forsaken the path of the

(४५)

Vedas ? And is it not, therefore, precipitating towards destruction ?

The message that Shri Krishna gave five thousand years ago, not to Arjuna alone, but to mankind in general through Arjuna, that self-same message has now been repeated by Swami-Dayanand, the founder of the Aryasamaj. The gist of all his teachings can be put in one word "Back to the Vedas".

"What do the Vedas teach ?" You ask. "Do they not teach black magic, superstition, nonsensical rituals, pernicious caste-system and one thousand and one evils which stand in the way of the progress of the Indians ?" Swami Dayanand replies,—“No, certainly not. The present-day plight of the Hindus is not due to Vedic teachings, but to the corruption which has crept into the society on account of anti-vedic propensities”.

The present-day Hinduism is not pure gold; it is eighty percent alloy. In name the followers of the Vedas, the Hindus have gone astray from the straight path of the Rishis. Vedic teachings have been distorted or mis-interpreted and in cases where correct notions prevail, there is no correspondence between theory and practice. Reality has gone and hollow spiritless rituals have taken its place. The object of Swami Dayanand was to trace Hinduism to its pristine purity, i.e., Vedism, to purge it of all excrescences; and the Aryasamaj proposes to fulfil that object. We have assembled here to seek your co-operation.

You know that the Hindus are a divided house—divided into myriads of sections and sub-sections each trying to press down others; Brahmins and non-Brahmins; Touchables and non-Touchables; Aryans and Dravids; each flying at the throat of the other, having nothing common between them; no common cause, no future programme; and to make the matters worse, outside element constantly fanning the flame

(४१)

of differences and preventing us from cementing the gulf. Politically, India is divided into Moslems and non-Moslems, giving the Hindus no importance whatsoever. Religiously, Hinduism is a congeries of vague doctrines not able to stand the onslaughts of foreigners. Socially, we are so divided that even Hindus are sick of Hindu society and are ready to join its enemies. Numerically, we are fast declining. Under these circumstances, is it not urgent that we pause and ask "Is there a way out of the difficulty?" The Aryasamaj offers a solution. Will you consider it?

First let us start with the question of worship. They say that religion is an opium; it has made man mad. But the experience of a few past centuries teaches us that irreligiosity is a worse opium and all the substitutes for religion which have uptill now been proposed and tried in one form or another, have resulted into chaos and destruction. The Aryasamaj says that we cannot do away with religious sentiments. They are ingrained in the very nature of man. Let us purify them. The Vedas do not teach fetish-worship. They teach the worship of One formless and changeless God, called by different names of Siva or blissful, Vishnu or all pervading, Agni or effulgent. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (Rig.Veda).

"God is one, the wise call Him by many names." It is a mistake to suppose that the Vedas inculcate plurality of gods. It is only plurality of names that has been alluded to. Different forms that we have given to God are the creations of our own brains and are disintegrating the society. The Vaishnavaites and the Shivaïtes quarrel with each other on forms and forget that Vishnu and Shiva are the names of the same deity. The Aryasamaj says, "Do away with these mythological forms and worship Him who pervades within you invisibly as your Atma."

Then take up the question of society. In these parts of India there is a much wider gulf between several sections

(५०)

of the Hindus. It is said that mere sight of the low-born is enough to pollute the high caste people. We in the north, look upon such tales as fables. But when we come to the south, we are shocked to find that it is a reality. Is it Hinduism? Is it Vedism? No. Swami Dayanand has proved that the classification of man into four Varnas of Brahman, Kshattriya, Vaishya and Sudra is based upon qualifications and not upon birth. Division of labour is necessary for social integrity. The question of hatred, suppression or repression does not come in and should not come in. Every society has magistrates, professors, doctors, lawyers each distinct in profession and yet supplementary. So ought the Brahmans or teaching class, Kshattriyas or fighting class, Vaishyas or trading class, Sudras or labour class. Can you do away with your teachers, soldiers, traders or labourers? No. But when you base them not on qualifications or professions, but on birth, these classes do not function properly and create mischief. A doctor's son may be a doctor, but not necessarily so. If whoever is a doctor's son is put in charge of a hospital, you can well realise what the result will be. If the Hindu Society had today true Brahmins trying to teach every individual person, instead of claiming undue superiority for themselves, the Hindues would have been a different nation. The society needs true Brahmins, true Kshattriyas, true Vaishyas and true Sudras. No use denouncing Varna Dharma and Ashram Dharma. What is needed is the change of out-look, the correct interpretation of the Vedic teachings and their faithful following.

The cleavage between Dravidian culture and Aryan culture is another point and has often been unduly emphasized in these parts of the country. Originally it was suggested by the Christians who wanted to reap a cheap harvest by creating a division in our midst. Fanciful ethnological theories were set-up. It was insinuated that the Aryans were

(५१)

foreign conquerors who subjugated the old Dravidians and crushed their culture. Swami Dayanand says that 'Arya' is not a geographical or territorial term. He has proved from Vedic literature that "Arya" means a righteous man, of whatever country, society or parentage he may be. Originally mankind was one. The difference arose afterwards. There is no such thing as Aryan conqueror and Dravidian conquered. We are all one. The Vedic religion allows no difference between man and man. Teach all, purify all, love all and hate none. The Vedas say:—

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

Let us look upon all beings with a friend's eye. The Aryasamaj aims at being the society of the righteous,—Brahmins, righteous Kshatriyas, righteous Vaisyas and righteous Sudras, contributing their best to the harmonious development of the whole, irrespective of caste, community, parentage or race.

It is a pity that for some centuries past the teaching of the Vedas has been restricted to one community only. It is clearly against the injunctions of the Vedas. The Yajur Veda say:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।

[Yajnt Veda XXVI-2.]

"Just as I give this blissful divine knowledge to mankind — to Brahmins, Kshatriyas, Sudras, Vaishyas and lowliest of the low," (similarly you should impart it to all freely and unrestrictedly). The Aryasamaj is against divine Vedas being monopolised by one section or community. The Vedas are meant for all men and women, of whatever race, nation or parentage.

The narrow ideas of modern nationalism and modern patriotism which put one nation above others and which burst out periodically in the form of Hitlerism, Mussolinism or other isms, can never bring peace to mankind. The goal

(५२)

of the Aryasamaj is to build humanitarianism with the broadest possible base of love and brother-hood. The great western savants like H. G. Wells echo the voice of the Aryasamaj when they propose the formation of a World Federation. The foundation of the World Federation has already been laid in in the Aryasamaj. Will you like to lend it your support ?

Religion, for the Aryasamaj, is not a mere set of rituals. Rituals there are. But they have their limited significance. The real religion consists in serving humanity, in helping the sick and needy, in educating the ignorant, in purifying the impure, in guiding the misguided. It is not possible here to describe in full detail all the activities that the Aryasamaj has been pursuing ever since its very birth. Suffice to say that the Aryasamaj was the 1st indigenous institute to start girls' schools, widow-homes, orphanages, schools for untouchable and so on. And even now when in these sixty-five years, other societies have come up with a similar programme, the Aryasamaj has not ceased to lead. It has a net work of Schools, Colleges, Gurukulas Pathshalas both for boys and girls, widow-homes and orphanages and a number of schools for depressed classes * In order to save the

* The following is the list of Aryasamajic institutions which shows our capacity to organize:—

The number of Aryasamaj centres in India	2100
Outside India	500
Sanyasi Preachers	122
Vanaprasatha Preachers	26
Salaried Pracharaks	171
Honorary	Many more
Gurukulas and their branches	53
First Grade Colleges	3
Second Grade Colleges	8
High Schools	Over 100
Girls' Colleges	3
Girls' Schools	231
Sanskrit and Hindi Pathshalas	112
Pathshalas of the Depressed Classes	353
Night Schools	84
Updeshak Vidyalayas	3
Orphanages	31
Widow-homes	47
Printing Presses	13
Monthly and weakly Journals	41
Reading-rooms and Libraries	51

(५३)

Hindu children from falling into a lien hands, it has Dayanand Salvation Mission, Shuddhi Sabhas and other similar movements.

Twenty years ago when the Moplahs of Malabar perpetrated indiscriminate atrocities on the neighbouring Hindus, it was the Aryasamajists of the north who rushed to the spot and at the risk of their very lives, protected them. It was through the instrumentality of the Aryasamajists that thousands of the Hindus forcibly converted to Islam, could come back to their fold. Our Calicut centre was started in those very days and it has ever since been pursuing the work. Had the Hindus of these parts valued our work and lent us their unstinted support, much could have been done in these two decades. Still there is time. The question is:— Will you rise to the situation and take up the work? I admit that superstitions die very hard; it is difficult to make chinks in the solid walls of orthodoxy. But the question of reforms is not an academic question. It is a question of life and death. Now or never. If you do not wake up in time, it will be more difficult to retrieve the lost ground.

I have often been asked a question: "What is your attitude towards Swaraj?" No doubt, the Aryasamaj is a religious organisation. But religion in Vedic sense covers all the departments of human life including "Swaraj." Let me first give a few extracts from the writings of Swami Dayanand, its revered founder :—

(1)

"Formerly the people of the Arya Varta travelled freely all over the world for trade, government or diversion. The present scruples of touchability &c., or fear to lose one's religion are due to misguidance and ignorance.

[Satyrath Prakash Chapter X.]

(2)

The people of Arya Varta are extenuating their miseries by following into the footsteps of that mischievous,

(28)

Gotra-Killing, traitorous and low minded Duryodhana."

[Ibid. Chapter X.]

(3)

When the Aryas ruled, the beneficial animals like cow &c. were never slaughtered, Then the people of the Arya Varta and other countries lived happily.
Since the time the flesh-eating foreigners came here and cow-killers and wine-drinkers became supreme, the miseries of the Aryas have been gradually multiplying.

[Ibid. Chapter X.]

(4)

"This shows that from the begining of the Universe up to the Mahabharat, the Chakravati Government was in the hands of the Aryas. Now the star of their mis-fortune having risen, they are being trampled under the foot of the foreigners."

[Ibid. Chapter XI.]

(5)

Now partly owing to ill-luck and partly due to idleness, vanity and civil dissensions of the Aryans, their rule over other hands is out of question. Even in their own home, they are not free, independent and unrestrained masters. Whatever possessions they have, are under foreigners....
Whatever may be said otherwise, only Swadeshi Rajya is the best form of Government. Foreign rule, even when free from religious interferences, and selfish motives, and embued with paternal kindness and justice is not completely blissful."

[Ibid. Chapar VIII.]

(6)

"O God, grant us boldness, perseverance, statesmanship, discipline, dash, power and other good qualities that we may attain self-government (Chakravarti Rajya). May no foreigners rule over us ! May we never be slaves !
O Ocean of Mercy ! May our Swaraj ever increase !"

[Aryabhivinaya.]

(५५)

These are the quotations from the works which Swami Dayanand wrote as early as in 1875. He was the first to use the term "Swaraj." It was full thirty years after, that the great Dadabhai Noroji again used the word in his Presidential address of the Calcutta Session of the Indian National Congress in 1906. Since then the word has found a currency in the language of the Congress.

It has been the policy of the Aryasamaj to keep aloof from current politics. But the Samaj gives full liberty to its members to join any school of politics they like.

It should not, however, be understood that if any section of Indians tries to push a measure which may result in the splitting up of India into geographical or cultural divisions, the Aryasamaj will look upon it as a distant passive onlooker. For example, if Mr. Jinnah's chimerical scheme *Pakistan* which even his fellow-religionists regard as hopelessly unfeasible, matures to any extent, the Aryasamajists will stake their all to wreck it. It is the clear policy of the Aryasamaj that communalism should not tarnish the politics of the country. The Government of India should be carried on strict democratic lines. If any agency puts an obstacle in the way, it is the paramount duty of the Aryasamaj to remove it.

As regards Swadeshism, well, the Aryasamaj has supported its cause from the very beginning. The number of Swadeshists is proportionately very large in the Aryasamaj. I began the use of Swadeshi long before the partition of Bengal. It will not be out of place to quote Swami-Dayanand in this connection:—

"See what great sacrifices the people of the west make for the prosperity of their nation. They leave no stone unturned. They allow the shoes made in their country to come into the offices and courts, and not Swadeshi Shoes. This shows that they care more for the shoes made in their country than for the people of other countries."

[Satyarth Prakasha Chapter XI.]

(२६)

You may probably ask me, "Tell us what you want us to do. Tell us definitely in a business-like way." Well, the first thing that I wish you to realize is that the Aryan culture is the oldest, the best and the most enduring of all cultures. While other nations have come and gone and their cultures, though dazzling enough, could not stand the cataclysm of time, your Aryan culture has survived all sorts of storms. Your culture is based upon the sound principle "live and let live." If you but appreciate the value of this, this appreciation itself will be a motive force to bring the jarring elements of present Hinduism together and to effect a perfect Sangathan. Remember that mere words cannot unite you. Real unification needs a strong foundation, foundation on points of culture. Secondly, real sangathan should come from within. Coming closer to each other only at the time of external danger is too temporary. It cannot stand. The Aryasamaj proposes that you study your culture and try to propagate it. It is necessary not only for India but for the whole world.

The second point is that you study the evils that have crept into Hinduism and try to eradicate them. Even the most orthodox and nochanger Hindu cannot say that all is well with Hinduism and it has nothing wrong with it. If our body has got a disease, why love it, why conceal it? It will prove fatal. The best course is to study it and to cure it. It needs boldness, it needs strength; but if you mean to live, you will have to be bold and strong.

You know the danger that is hovering over you. You are internally divided. People want to divide you externally too. The Pakistan movement is too obvious to need description. The air is surcharged with it. But you cannot blame your enemies. They wish to have political domination over you. They wish to live. It is not their lookout to let you live. They care a fig for you. If you think that life is worth living, you will have to strive for it. A weak constitution is a prey to germs of diseases. Strengthen your constitution, that it might fight the germs out.

(५७)

One of the problems of India is a common language, its *Lingua Franca*,—rather, *Lingua Indianna*. I should call it *Rashtra bhasha*. Swami Dayanand was a Gujrati by birth. He had his provincial patriotism. But he intuitively felt that if the Hindus are to be united they should have a common language. Hindi being the language of the majority; he declared it as the *Arya Bhasha*, or the language of Aryas. Wherever *Aryasamaj* has gone, it has especially preached Hindi, not because it wants to crush other languages—its literature is being published in all languages:— but because it feels that without Hindi, we cannot have a united *Rashtra*. I am glad that Madras is alive to this need. Hindi is becoming more and more popular. Wherever I have gone, I have found a love for it. It is a healthy sign. I congratulate you on it and request you to strive more.

Our urgent need is that there should be more and more centres of the *Aryasamaj* in the South. There should be no village without one. And each *Samaj* should have humanitarian institutions attached to it. It is possible only when local support is forth-coming. We in the north had to struggle very hard. I have seen the worst days. But patience bore us up. You have to undergo the same ordeals. Madras is famous for intellectual giants. The south has taken a prominent part in advancement of Aryan Culture. Swami Shankaracharya was a South Indian, so was Ramanujacharya, so was Madhavacharya. I wonder what Madras intelligentsia is waiting for. I wish to see Madras take up the cause of the *Aryasamaj* and with it of Vedic Culture.

I shall be neglecting a great duty if I do not thank Madras people for their hospitality. Your Chairman of Reception Committee is a venerable old man. His services in the cause of Aryan Culture are very many. It is a matter of pleasure that his whole family is a lover of the Vedas. Then, Madras is a big place, next to Madras in extent and importance. It is the Mathura of Southern India. Bhagwan Krishna started his life in Mathura; so did Bhagwan Dayanand. Let Madras, too, compete with its name-sake and be the centre of *Aryasamajic* activities. May God help us.

Grandeur of Sanskrit.

Wonder-Language of World-Culture.

[By—Pandit G. Dhareshver]

I

[Following is the first of a series of articles on Sanskrit language by Pandit Dhareshver, ex-Professor of Sanskrit, Osmania University, in the course of which he explains the richness of the language and the culture that it represents. He also seeks to reveal the influence it can exert to enrich the modern languages of India. It must be of topical interest and use in view of the current researches of the Scientific Terms Committee.]

The word Sanskrit means refined, purified, cultured. The Language which is known as Sanskrit in modern times was known to Panini simply as “Bhasha”—the Speech, just as Hindi is known as “Bhasha” at present. Just as now Hindi, is the common speech of Hindustan, so Sanskrit was the language of Aryawarta three thousand years ago when the great grammarian lived. The name Sanskrit meaning “the polished language of culture” seems to have been given to it when gradually the common folk drifted away from its use, as illiteracy spread among them, owing to the natural process of degeneration that overtook the people of this vast continent-country.

The ever-memorable remark at Professor Max Muller “The Veda has a two-fold interest: it belongs to the history of the world and to the history of India” with regard to the Veda, holds with equal truth and force as regards Sanskrit too. In Sanskrit and the Veda the people of India have two God-given gifts, which, added to the third gift—the mother-land, India itself—can if properly utilised, confer countless blessings upon them.

MOTHER-CULTURE

These three, Mother-Land, Mother-Speech and Mother-Culture, were known as ILA, BHARATI

(५२)

and SARASVATI even in the most ancient times of recorded history. These three: India, Sanskrit and Veda have had the most far-reaching influence upon human culture; and can even now wield wonderfully uplifting unifying and harmonising power over the future fate of man.

These three: Ila, Bharati, Sarasvati, i.e. India, Sanskrit, Veda, have the power to electrify, unify and raise humanity by bringing together and elevating the scattered elements and warring sects thereof, by doing away with narrow-minded bigotry and vanity, and by broadening their vision.

The most thoughtful persons, all the world over, are agreed about the necessity of evolving order out of chaos, concord out of conflict, unity out of schisms, and willing co-operation out of soul-killing competition. In India's Sanskrit and the Veda they can find the best levers to elevate mankind. India Sanskrit and Veda were and are the Guru and Guide on our path towards Peace, Order, Harmony; they have ever been so.

VERBAL VARIETY

Here we are concerned with Sanskrit, as with Veda we have dealt elsewhere. Sanskrit is indeed a wonder-language. Its roots go to the very root of thought, Panini, some three thousand years ago, indicated what Yaska and others had pointed out before him, this wonderful nature of Sanskrit. It is a language of world-connections. In fact Sanskrit has given us the verbal variety that we find around us. English, for instance, the language which we call "foreign" and which has come to us across the "seven seas and seven oceans" is almost wholly Sanskritic, nearer perhaps than some of our Indian tongues. More people speak Sanskritic tongues today in the world than any other, Sanskrit is thus the greatest unifying link that can bring mankind nearer and nearer.

हैदराबाद सत्याग्रह-विजयोपलक्ष में !

भारी रियायत !!

श्री चमूपति-साहित्य-विभाग

की

पुस्तकों के मूल्य में असाधारण कमी

१. वेदामृत (स्वामी वेदानन्द तीर्थ)	मूल्य २॥) घटाया मूल्य २)
२. आर्य प्रतिनिधि सभा का इतिहास	" " " " १॥)
३. शास्त्रार्थ दर्पण (उर्दू)	" ॥) " " ॥)
४. यास्कयुग (श्री पं० चमूपति जी)	" ॥) " " ॥)
५. त्रिदेव निर्णय (श्री पं० शिवशंकर जी)	" ॥) " " ॥)
६. वैदिक-पीयूष-बिन्दु " "	" १-) " " ३)
७. ऋग्वेदशतक (श्री स्वामी अच्युतानन्द जी)	" १) " " २)
८. वैदिक स्वर्ग (उर्दू) (श्री पं० चमूपति जी)	" ॥) " " ॥)
९. वेद से वेदार्थ (श्री प्रो० रुलियाराम जी)	" १) " " २)
१०. देवयज्ञ (श्री पं० बुद्धदेव जी)	" १) " " २)
११. स्वर्ग " "	" १-) " " ३)
१२. मरुत्सूक्त " "	" १) " " १)
१३. Glimpses of Dayanand	" १॥) " " १॥)
१४. Immortal Sayings of Dayanand	" १) " " २)
१५. दयानन्द-रत्नमाला	" ३) " " २)
१६. जीवन-ज्योति (ले० पं० चमूपति जी एम० ए०) सामवेद के प्रथम ११४ मन्त्रों की सरस-व्याख्या	१॥)
१७. मौत के बाद रूह की हालत (उर्दू) पं० मनसारामकृत १०० प्रति का ३)	
१८. वेदार्थ-कोष—मूल्य	३०)
१९. आर्य समाज और सनातन धर्म	१०० प्रति का ३)
२०. श्राद्ध	" ३)
२१. निरक्त का मूल वेद में—(श्री शान्त स्वामी अनुभवानन्द जी)	१-)
२२. आर्य समाज (उर्दू) १०० प्रति का	६)
२३. ऋभु-देवता— पं० भगवदत्त जी)	॥)
२४. शतपथ ब्राह्मण भाषा भाष्य प्रथम भाग (श्री पं० बुद्धदेव जी)	३)

अधिष्ठाता—श्री चमूपति-साहित्य-विभाग

आर्य-प्रतिनिधि-सभा, गुरुदत्त भवन, लाहौर।



गढ़वाल की समस्या

गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या पर पिछले दो अंकों में हम प्रकाश डाल चुके हैं। इसी सम्बन्ध में इस अंक में मन्त्री सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य प्रकाशित हुआ है जिसमें "लैंसडाउन" के २३ फरवरी के 'सर्वदल सम्मेलन' में आर्यों के भाग न लेने और उसके कारणों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। डोला पालकी की समस्या के गढ़वाल के आर्य ही पीड़ित व्यक्ति हैं फिर उस सम्मेलन को जिसमें उन पीड़ितों ने भाग न लिया हो सर्वदल सम्मेलन का नाम देना 'सर्वदल' शब्द का उपहास करना मात्र है। इस दृष्टि से उस सम्मेलन के आगे 'तथा कथित' शब्द जोड़ना नितान्त उपयुक्त है।

सर्वदल सम्मेलन के संयोजकों ने इस समस्या का यह हल प्रस्तुत किया था कि 'हरिजन भाइयों को सवर्णों की नाई देव स्थानों के सामने सम्मानार्थ डोला पालकी में से उतर जाना चाहिये। यह हल उन हरिजनों के लिए तो उपयुक्त कहा जा सकता है जो आर्य समाज में दीक्षित न हों परन्तु इस समस्या से तो आर्य समाज में दीक्षित हुए आर्य भाई ही पीड़ित हैं और उन पर यह शर्त लगाना सरासर अन्याय और उनके धार्मिक-भावों और सिद्धान्तों पर कुठाराघात है। उस प्रथा के लिए जिसमें उनका सिद्धान्तः विश्वास न हो, मानने के लिए उन्हें विवश करना औचित्य की सीमा से भी परे है और यदि वे इस हल को स्वीकार न करें जैसा कि उन्होंने सम्मेलन में से उठकर चले जाने से अपने रुख से प्रगट किया है तो इस समस्या के हल के विफल होने की उत्तरदायिता उन पर न होकर सम्मेलन के संयोजकों पर ही होगी।

सरकारी कागजों और हाईकोर्ट तथा अन्य न्यायालयों की फायलों में गढ़वाल के आर्य धर्म में दीक्षित शिल्पकार इत्यादि भाई जिन्हें सवर्ण 'हरिजन'

(६२)

कहते हैं आर्य शब्द से अंकित हुए हुए हैं और डोला पालकी निकालने के नागरिक अधिकार के उपयोग में सरकार की ओर से उपर्युक्त प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। यह भी स्मरण रखने योग्य बात है कि गढ़वाल के आर्यों ने इस अधिकार की प्राप्ति और रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग किया है और बड़े से बड़े कष्ट सहन किए हैं। फिर उन्हें उपर्युक्त प्रकार की शर्त के नीचे मुक्त करने के लिए प्रेरणा करना अथवा उनका इस शर्त को मान लेना जो अर्थ रखता है उस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। इस हल से तो यह प्रति ध्वनित होता है कि सवर्ण भाई दया और उपकार के नाते आर्यों को कोई वस्तु देते हैं जबकि 'आर्य भाई' एक मौलिक अधिकार के रूप में वह वस्तु चाहते हैं। ऋगड़ा इसी मनोवृत्ति पर है। जब तक सवर्णों की मनोवृत्ति यह रहेगी तब तक उनके हाथों इस समस्या का आर्यों के लिए सन्तोष जनक हल होना कठिन देख पड़ता है। हमारा अभिप्राय सर्व दल सम्मेलन के संयोजकों को उनके प्रयत्नों में निरुत्साहित करने का नहीं है। उन्हें अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिए। हमारा अभिप्राय आर्यों की स्थिति का सम्यक्त्व स्पष्टीकरण करना मात्र है। जिससे उनके प्रयत्न ठीक ठीक फल लाएँ। आशा है वे आर्यों की स्थिति को शान्त हृदय से सोचने और समझने का कष्ट करेंगे।

हमारा तो यह अटल विश्वास है कि सवर्णों के हाथों हरिजनों की समस्याओं के हल के लिए सवर्णों की मनोवृत्ति में आमूल चूल परिवर्तन होना आवश्यक है। ऋषि दयानन्द ही वर्तमान युग में सबसे पहले सुधारक थे जिन्होंने इस समस्या के मूल पर हाथ रक्खा था। उन्होंने उपकार भाव से अन्य सन्तों की नाई हरिजन हित को नहीं देखा था। उन्होंने तो मनुष्यत्व के हित से उनके हितों को देखा और उन्हें गुण, कर्म के अनुसार आर्यत्व वा मनुष्यत्व का पद देकर 'हरिजन श्रेणी' को मिटाने का प्रयास किया था। अन्य सुधारकों और सन्तों ने उन्हें 'हरिजन' रखकर उपकार और दया भाव से उन्हें उठाने का यत्न किया था। ऋषि दयानन्द ने उन्हें 'हरिजन' न रखकर उठाने की विधि बतलाई है। उनके तथा अन्यो के हरिजनोद्धार में यही मौलिक भेद है। जब तक 'हरिजनोद्धार' कार्य में से यह मौलिक भेद नहीं मिटता है तब तक हमें भय है यह कार्य लाभ के बदले हानि न पहुँचाए। हरिजनोद्धार के पक्ष पातियों को इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना और आर्य समाज की स्थिति को ठीक

(६३)

ठीक समझना चाहिए और ऊपरी प्रयत्नों से इस समस्या को बिगड़ने न देना चाहिये ।

जन गणना

जन गणना समाप्त हो गई है । आर्य समाज का इस दिशा में जो कर्तव्य था अथवा उसका जो कार्य था उसे पूरा करने के लिये उसने जितना सम्भव था यत्न किया है । देखना यह है कि उसका यत्न कहां तक सफल होता है । इसमें तो कोई सन्देह नहीं इस बार आर्यों की संख्या बहुत बढ़ेगी पर देखना यह है कि वह कहाँ तक ठीक २ रूप में अंकित होती है । हमें प्रसन्नता है कि आशानुरूप आर्यसमाजों, प्रान्तीय सभाओं और आर्य भाइयों ने सार्व-देशिक सभा के आदेश निर्देशों का सम्मान करने में रस दिखलाया है ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का साधारण अधिवेशन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक साधारण अधिवेशन २६ और २७ एप्रिल १९४१ को देहली में करने का सभा की २-३ मार्च की अन्तरंग सभा में निश्चय हुआ है । सम्बन्धित सज्जनों को यह तिथि नोट कर लेनी चाहिए ।

मदुरा में आर्य समाज

आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दक्षिण की मथुरा 'मदुरा' में गत ऋषि बोधोत्सव के पुनीत अवसर पर आर्य समाज स्थापित हो गया है । हम इस समाज की अभिवृद्धि और विस्तार की कामना करते हुए आर्य तथा हिन्दू जनता से प्रार्थना करते हैं कि वह इस समाज को उन्नत होने में अपना पूरा पूरा योग दें । पौराणिकता के गढ़ 'मदुरा' में इस समाज का होना और उसका उन्नत होना कितना आवश्यक है इस पर कोई प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है ।

कलकत्ता हाईकोर्ट का महत्व पूर्ण निश्चय

कलकत्ता हाईकोर्ट ने गत ३ जनवरी को एक महत्व पूर्ण निर्णय दिया है जो अपने ढंग का सर्व प्रथम निर्णय बतलाया जाता है । नूरजहां बेगम नाम की एक मुस्लिम महिला ने जो यूगेनटिंसको नामक एक रूसी सज्जन को विवाही थी, अपने विवाह विच्छेद की प्रार्थना की थी ।

नूरजहां बेगम ने बयान दिया कि उसके माता पिता रूसी थे और २० मई १९३१ को प्रतिवादी के साथ बर्लिन में उसका सिविल विवाह हुआ था और १९४० में वह मुस्लिम धर्म में दीक्षित हुई थी । तब उसने अपने पति को इंगलैंड तार देकर इस्लाम ग्रहण करने की

(६४)

प्रार्थना की थी परन्तु उसके पति ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया था । अब उसने इस्लामी कानून के अनुसार विवाह विच्छेद तथा अन्य सुविधाओं के लिये प्रार्थना की थी ।

नूरजहां वेगम के अभियोग को खारिज करते हुए माननीय न्यायाधीश ने इस पर विचार किया कि क्या भारत का कानून ऐसा है कि इस्लाम धर्म में दीक्षित हुआ व्यक्ति इस्लामी शरीअत के अनुसार विवाह विच्छेद करा सकता है ? और कहा—

“दो मुख्य ग्रन्थ हीदिया और फतवा आलमगीरी जिनसे इस मुकदमें में हमारा सम्बन्ध है उन मुस्लिम राज्यों के प्रयोग के लिए निर्मित हुई थीं जिनका राजधर्म इस्लाम था । इन दोनों प्रामाणिक ग्रन्थों की धाराओं की जाच पड़ताल करने पर प्रकट होता है कि मुस्लिम प्रदेशों की हकूमतों की नीति तबलीग (धर्म परिवर्तन) को प्रोत्साहित और धर्म से च्युत होने वालों के साथ कठोरता का वर्तव्य करने की थी । इस बीसवीं शताब्दी में हकूमत की नीति यह नहीं है कि वह बतौर धर्म परिवर्तन की एजेन्सी के कार्य करे और एक धर्म को हानि पहुँचा कर दूसरे धर्म का संरक्षण करे । इस आधार पर मेरी सम्मति यह है कि वादी जिस नियम में विश्वास रखता है वह पुराना और सार्वजनिक नीति के विरुद्ध समझा जाना चाहिए ।”

माननीय न्यायाधीश ने फैसला किया कि वादी जिस नियम को लागू कराना चाहता है वह न्याय नहीं है । भारतवर्ष में विवाह सम्बन्धी विषयों में जो अंग्रेजी कानून व्यवहृत होता है उसकी मुख्य धाराओं और सिद्धान्तों तथा उपर्युक्त नियम में विभिन्नता है । न किसी स्थिर प्रथा वा नियम की धारा से उसका समर्थन ही होता है । वादी रूस के नियमों के अनुसार ही विवाह विच्छेद करा सकती है । मुस्लिम धर्म के जिस कानून पर वादी का विश्वास है वह अप्रचलित, पुराना और सार्वजनिक नीति के विरुद्ध समझा जाना चाहिए ।”

हिन्दू महासभा का सत्याग्रह सन्वन्धी प्रस्ताव

हिन्दू महासभा के मदुरा सेशन के मुख्य प्रस्ताव के द्वारा सरकार से माँग की गई है कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् १ वर्ष के भीतर २ वेस्ट मिनिस्टर के प्रकार का भारतवर्ष को स्वायत्त शासन (डोमिनियन स्टेट्स) दिया जाय और स्पष्ट शब्दों में पाकिस्तान की योजना को रद्द किया जाय । प्रस्ताव में यह भी बतलाया गया है कि ३१ मार्च १९४१ के भीतर २ यदि उपर्युक्त २ घोषणाएँ न हुईं तो महासभा सत्याग्रह आरम्भ करेगी । सत्याग्रह का रूप क्या होगा यह प्रस्ताव में नहीं बतलाया गया है वरन् अवसर के आने पर वह रूप प्रगट करने की बात कही गई है ।

हिन्दू महासभा का तात्कालिक प्रोग्राम

महासभा के मदुरा सेशन (अधिवेशन) में एक प्रस्ताव के द्वारा निम्न प्रोग्राम निर्णीत हुआ है ।

(६५)

सेना, जल सेना और वायु सेना में अधिक से अधिक हिन्दुओं को भरती कराना हिन्दुओं के सैनिक शिक्षण और युद्ध सामग्री के निर्माण के लिए समस्त सुविधाओं से लाभ उठाना, स्कूलों में सैनिक शिक्षण अनिवार्य कराना, बाहरी आक्रमण और आन्तरिक अराजकता से जाति की रक्षा में समर्थ होने के लिए सिविक गार्ड (नागरिक रक्षा मण्डल) और हवाई आक्रमणों से रक्षा की योजनाओं में भाग लेना, इस शर्त के साथ कि सिविक गार्डों का प्रयोग भारत के देश हित सम्बन्धी किसी राजनैतिक आन्दोलन के विरुद्ध न हो और उनकी प्रगतियाँ हिन्दुओं के वैध हितों के लिए हानिकारक भी न हो। विदेशी माल का बहिष्कार, नए उद्योग धन्धे चलाना, बाजारों पर कब्जा करना, और आनेवाली जन गणना में हिन्दुओं की सही संख्या अंकित कराना।

अलीगढ़ के विद्यार्थी और मि० जिन्ना

पिछले महीने अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने कांग्रेस के अध्यक्ष श्री अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी के अवसर पर एक विरोध सभा की थी। उसमें ५०० से अधिक विद्यार्थी उपस्थित थे। देहली विश्व विद्यालय के भी कई विद्यार्थी उपस्थित थे। सभा में जो प्रस्ताव पास हुए थे उनमें से एक इस प्रकार है:—

“यह सभा कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी पर ऐसे आड़े समय में जबकि ब्रिटेन यूरोप में स्वाधीनता और जनसत्ता के लिए लड़ रहा है और भारतवर्ष को इन दोनों वस्तुओं से वंचित रख रहा है ब्रिटिश सरकार की घोर निन्दा करती है। यह सभा मौलाना आजाद को विश्वास दिलाती है कि अलीगढ़ के विद्यार्थी पूर्णतया उनके साथ हैं और जब वर्तमान आन्दोलन में भाग लेने के लिए उन्हें कहा जायगा तब वे एक क्षण के लिए भी पीछे न रहेंगे। यह सभा भारत के मुसलमानों से अपील करती है कि वे अपने छोटे २ राजनैतिक वर्गों के भेद भाव के बिना कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लें और मुसलमानों पर मुहम्मद अली जिन्ना ने जो कलंक का टीका लगवा रक्खा है उसे मिटा दें।”

बंगाल और स्त्रियों के प्रति अपराध

बंगाल में स्त्रियों के प्रति अपराधों और अत्याचारों की कहानी बड़ी दुखद है। इन अपराधों को यदि हम बंगाल का कलङ्क कहें तो अनुचित न होगा। बंगाल भारत का एक सुशिक्षित और उन्नत प्रान्त है। ऐसे प्रान्त में इन अपराधों का होना और द्रुत गति से बढ़ना, बड़ा खेदजनक है। कलंक को धोने के लिए बंगाल की सरकार को शीघ्र से

(६६)

शीघ्र कठोर कार्यवाही करनी चाहिए। बंगाल की जनता का भी इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा कर्तव्य है और वह यह है कि वह सरकार को उसके प्रयत्नों में दिल खोलकर सहायता दे।

जहां तक हमने विचार किया है, इन अपराधों के लिए बंगाल की धार्मिक और सामाजिक मामलों में कट्टरता और बाल-विवाह इत्यादि की सामाजिक कुरीतियां भी जिम्मेवार हैं। कारण कोई भी क्यों न हो, इन अपराधों को मिटाने के लिए व्यवस्थित कार्य अवश्य होना चाहिए। बंगाल में जहाँ कहीं गुण्डों के हाथों से नारियों की रक्षा हुई है वहाँ हमारे आर्य भाई आगे रहे हैं। बंगाल के आर्य भाइयों को यह कार्य अपनी प्रगतियों का विशेष अंग बनाना चाहिए। बाहरी सहायता की यदि उन्हें आवश्यकता हुई हो उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि उसकी कमी न रहेगी। हम मानते हैं कि बंगाल में आर्य समाज का बहुत कम विस्तार है परन्तु इतने मात्र से नारी रक्षा जैसे कार्य की हमें उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए। यदि हम इस कार्य को ठीक ठीक रीति से और सफलतापूर्वक करेंगे तो आर्य समाज के विस्तार की कमी हमारे मार्ग में कदापि बाधक न होगी। इस सिलसिले में आवश्यकतानुसार हमें नारी संरक्षण गृहों अनाथालयों और वनिता आश्रमों की व्यवस्था करके रक्षा कार्य करना चाहिए।

कांग्रेस के सदस्यों का ऐसे मामलों में रवैया बड़ा विचित्र रहता है। वे प्रायः इस प्रकार के अपराधों के प्रति न अपना मुंह खोलते हैं और न अपनी लेखनी उठाते हैं। शायद केवल इसलिए कि ऐसा करना साम्प्रदायिकता होगी। उनके इस रवैए की कौन न्याय-प्रिय, सहृदय और देशभक्त व्यक्ति प्रशंसा कर सकता है। यह तो देश की सेवा के बदले असेवा करना और दूरवर्ती दुष्परिणाम उत्पन्न होने देना है। कांग्रेस के सदस्यों को अपने रवैए पर गम्भीरता और शान्ति से विचार करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। बंगाल में सुभाषचन्द्र बोस आदि प्रमुख कांग्रेस मैन इसके अपवाद हैं। उन्होंने खुले तौर पर बंगाल के अपराधों की निन्दा की थी। अभी कुछ दिन हुए श्रीयुक्ता हेमप्रभा मजूमदार एम० एल० ए० ने बंगाल के प्रधान मन्त्री को इस सम्बन्ध में पत्र लिखकर उनके कर्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया था। पत्र का कुछ भाग इस प्रकार है:—

एक और समस्या है जिसने गत कुछ वर्षों में गम्भीर रूप धारण कर लिया है और जिसका सङ्केत किए बिना नहीं रह सकती। मेरा अभिप्रायः स्त्रियों के प्रति बढ़ते हुए अपराधों और उनकी भयंकरता की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना है। यह समस्या साम्प्रदायिक समस्या नहीं है और केवल हिन्दुओं से इसका सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध समस्त वीरों और वीरांगनाओं और मनुष्य

(६७)

समाज के प्रेमियों से है और होना चाहिए भने ही उनके धार्मिक विचार भिन्न र
क्यों न हों। इन अपराधों में से बहुत से अपराध मुस्लिम नारियों के प्रति भी
किए जाते हैं। आपकी सरकार ने इस अभिशाप को मिटाने के लिए कुछ नहीं
किया है जो बंगाल के श्रेष्ठ नाम पर धब्बा है।

युद्ध के नियम

मानवी इतिहास के लम्बे प्रवाह में युद्ध हुए हैं। श्री रामचन्द्र ने रावण को युद्ध में
परास्त किया था। कौरवों और पाँडवों का भाई भाइयों का अत्यन्त विनाशकारी युद्ध था
जिसमें प्राचीन भारत के बहुत से क्षत्रिय परिवारों का अस्तित्व मिट गया था। प्राचीन काल
में यूनानियों का ट्राजन लोगों के साथ भयंकर युद्ध हुआ था। संसार के समस्त महाकाव्यों
का विषय युद्ध रहा है।

इन महाकाव्यों को हम अपने बच्चों को पढ़ाते हैं। इसमें सन्देह नहीं हम चित्र का
उज्ज्वल पक्ष उनके सामने रखते हुए वीरों का गुणगान करते हैं। इस प्रकार हम अपने बच्चों
को युद्ध से किस प्रकार उपराम रखने की आशा कर सकते हैं ?

जब तक मानवी आत्मा में प्रेम, द्वेष, ईर्ष्या, स्पर्धा और महत्वाकांक्षा विद्यमान है
तब तक युद्धों का होना बन्द न होगा। परन्तु इस खेल के नियम भी हैं। यदि इन नियमों
का कठोरता से पालन हो तो युद्ध का परिणाम विजयी और पराजित दोनों के लिये सम्मान
योग्य होगा। सुनिश्चित नियमों के अधीन जो युद्ध होते हैं उनके पीछे कटुता बहुत कम
देख पड़ती है। पराजित की कटुता विजयी के लिये बहुत भयानक होती है जैसा कि आज
कल की घटनाओं से भुस्फुट है। सचमुच आज के संसार के हम नर नारी बड़े अभागे हैं जो
ऐसे विनाशकारी युद्ध को देख रहे हैं जिसकी उपमा मानवी इतिहास में नहीं मिलती। यह
भी निश्चित देख पड़ता है कि भविष्य में बहुत समय तक युद्ध होंगे।

यदि युद्ध अपरिहार्य हो तो मानव जाति को अपने समूल विनाश से बचने के लिये
युद्ध के देवताओं को कहना चाहिए कि वे युद्ध के सुनिश्चित नियम बनाएँ। इस सम्बन्ध में
लोकमत जाग्रत होना चाहिए। यदि आज प्राचीन काल के वीर क्षत्री होते तो वे निहत्थे स्त्री,
पुरुषों, बालकों पर अन्धाधुन्ध बम वर्षा और टैंकों के प्रयोग से अपने पौरुष पर कालिमा
न लगाते।

भाग्यनगर (हैदराबाद) सत्याग्रह के हुतात्माओं का पुण्य स्मारक

भाग्यनगर आर्य सत्याग्रह को सफल बनाने में जिन २८ आर्य वीरों ने
अपने प्राणों की आहुति दी सारा आर्य जगत् उनका ऋणि हैं। उनके प्रति

(६८)

कृतज्ञता प्रगट करना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है । उनकी स्मृति स्थिर की जाये ताकि भविष्य में भी आर्य सन्तानों में इनके स्मरण से उत्साह और साहस का सञ्चार हो । इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है कि इन वीरों के नामों की एक पीतल की पट्टिका Brass Plate तैयार कराई जाय । जिसे प्रत्येक आर्य समाज, सभा तथा संस्था में लगाने के लिए प्रेरणा की जावे ।

इस निश्चय के अनुसार पीतल की पट्टिका तैयार कराई गई है जिसका परिमाण २४" × १६" है । इस पर २८ आर्य वीरों के नाम, उनके पिताओं के नाम जन्म स्थान, मृत्यु स्थान मृत्यु की तिथि आदि विवरण खुदाये गये हैं । पट्टिका के चारों ओर बेल बनाई गई है । पट्टिका का मूल्य २४) है ।

जो आर्य समाज, सभायें, संस्थायें तथा महानुभाव इस पट्टिका को खरीदना चाहें वे २४०० (चौबीस रुपये) तथा अलीगढ़ से अपने यहां तक का रेल पार्सल का किराया रेलवे स्टेशन के उल्लेख सहित अपने आर्डर के साथ सार्वदेशिक सभा में भेज दें ।

प्लेट का भार ३॥ सेर तथा पैकिंग सहित कुल भार ५ सेर होगा ।

आर्य समाज स्थापना दिवस

आर्यसमाज का स्थापना दिवस आगामी २८ मार्च १९४१ को मनाया जायगा । यह दिवस आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है । इसे समारोह और सफलता से मनाने के लिये आर्यसमाज को अभी से प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए । विस्तृत प्रोग्राम शीघ्र ही सार्वदेशिक सभा के कार्यालय से जारी होगा ।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित

जगत् प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री

धोखे से बचने के लिये आर्यों को

बिना वी० पी० भेजी जाती है ।

पहिले पत्र भेज कर 5- नमूना फ्री मंगालें

नमूना पसन्द होने पर आर्डर दें

अगर नमूना जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेज दें

अन्यथा

कूड़े में फेंक दें

फिर

मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं ।

क्या

इससे भी बढ़ कर कोई सच्चाई की कसौटी हो सकती है ।

भाव ॥) सेर, ८० रुपये भर का सेर

थोक ग्राहक को २५) प्रति सैकड़ा कमीशन ।

मार्ग-व्यय ग्राहक के जिम्मे

स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश ॥) और संस्कार विधि ८) में मिलती है ।

परन्तु पुस्तकों का मूल्य मार्ग व्यय सहित पेशगी भेज दें ।

रामेश्वरदयालु आर्य पो० अमोली, फतेहपुर (यू० पी०)

हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१-ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसल्मान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाईं इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २।)

२-मेरी अवीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किसकूट नीति से अवीसीनिया की सीमा पर भगड़ा कर अवीसीनिया को हड़प लिया आँख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

३-हमारी जापान यात्रा— इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्वकी अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १।।)

पुस्तक मिलने का पता:—

बाबूलाल आर्य भार्गव श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार
वाँदा (यु० पी०) जी० आई० पी० रेलवे।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सवाराज चावला द्वारा
“चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस”, अज्जानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

अप्रैल १९४१

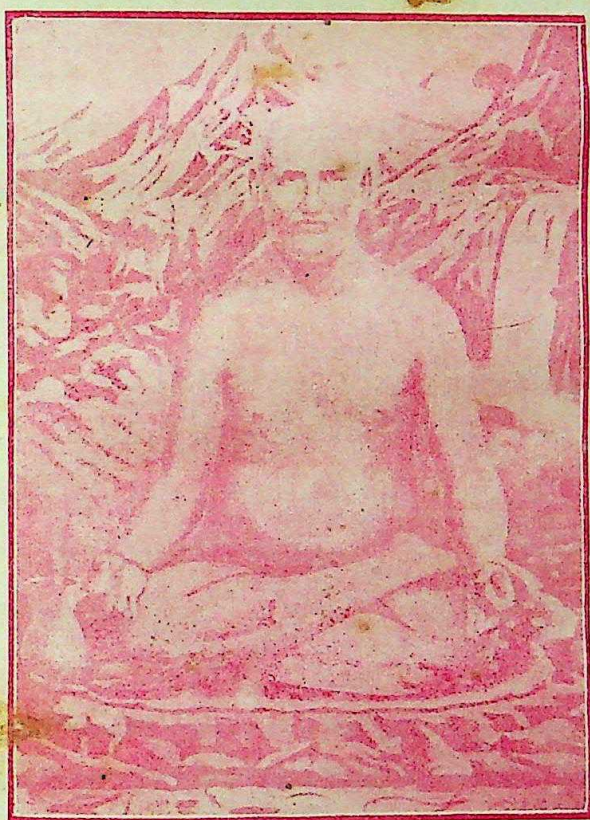
Peg. No. L. 2121

वेद



यजुर्वेद

सावदाशिक



सम्पादक— प्रो० सुधाकर, एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

अधिक मू० स्वदेश २) एक प्रति का ३) विदेश से १ शि० वार्षिक

वेद

सामवेद

लेख-सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. वेद की शिक्षाएँ	...	६६
२. मन-मन्दिर	श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट	७०
३. संस्कृति क्या है ?	सर अकबर हैदरी	७५
४. सुमन-संचय	श्री रघुनाथप्रसाद पाठक	८१
५. आर्यसमाज की चिनगारियाँ	श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज	८६
६. आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या	...	९०
७. Grandeur of Sanskrit (Pandit G. Dhareshver)		९३
८. Hindu Philosophy and Modern Sciences (Rai Bahadur Ram Chandra M. A. P. E. S. Retired)		९७
९. His Majesty's Order Ignored by Census Authorities (Babu Kalika Prasad, M.A.B.L. Ranchi)		१०७
१०. आर्यकुमार जगत्		१०६
११. टोंक में तबलीगो कार्य		११०
१२. लोहारू कांड		१११
१३. सम्पादकीय		११३

आर्यसमाज के नियोपनियम १।) प्रति सैकड़ा २।) प्रति प्रवेश-पत्र ॥) सैकड़ा ।

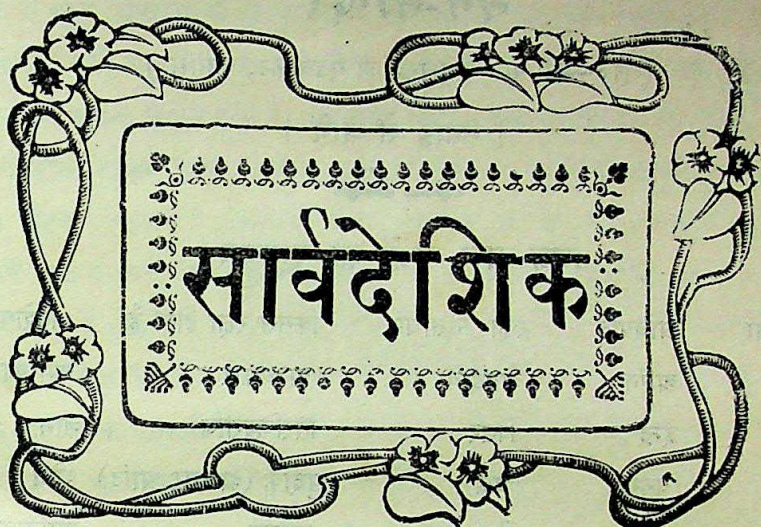
मिलने का पता— सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

सस्ता, ताजा, बढ़िया सब्जी व फूल-फल का बीज और गाछ हमसे मँगाइये ।

पता:—मेहता डी० सी० वर्मा, बेगमपुर (पटना)

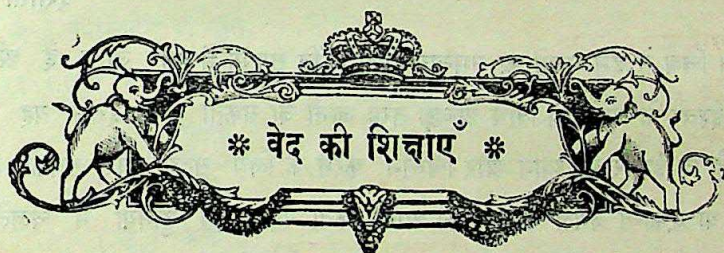
बीज

॥ ओ३म् ॥



* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६	}	चैत्र १९९८	}	अंक २
		अप्रैल १९४१ ई०]		[दयानन्दाब्द ११७



सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ।

अथ० १६।२।५

गरुड़ के समान मेरी तीक्ष्ण दृष्टि और आंखों में निरन्तर ज्योति बनी रहे ।

Let the vision in thy eyes be strong and sharp let its strength be maintained till thy old age.

*

*

*

पश्येम शरदः शतम् ।

यजु० ३६।२४

हम सौ वर्ष तक देखें ।

May we live and exercise our faculty of vision for a hundred years !

मन-मन्दिर

(ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, आगरा)

[गताङ्क से आगे]



चित्र द्वारा मन्त्रों का समन्वय

नाम दिशा	अधिपति	रक्षा के साधन	किससे रक्षा होती है	विशेष
प्राची	अग्नि	आदित्य	अन्धकार	कर्म का द्योतक
दक्षिणा	इन्द्र	पितर	तिरच्छिराजि	ज्ञान
प्रतीची	वरुण	अन्न	पृदाकू (अजगर आदि)	भोग
उदीची	सोम	विद्युत्	अज्ञान	आत्मिक शांति
ध्रुवा	विष्णु	वृक्षादि	नास्तिकता	ईश्वर का न्याय होना
ऊर्ध्वा	बृहस्पति	वर्षा	दुःख	ईश्वर का महत्त्व दर्शाता है।

इस चित्र से इन मन्त्रों का समन्वय भली भाँति समझ में आ जाता है और इस समन्वय से ईश्वर के ध्यान की विधि अच्छी तरह जानी जा सकती है। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि ईश्वर का ध्यान और चिन्तन करने के लिये सदैव और सबको हिमालय की गुफा में या एकान्त जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं। इस दुनिया में चलते फिरते, उठते बैठते, सब कुछ देखते सुनते, अनेक प्रकार के कर्म करते और फल भोगते हुए हमारी आत्मा में ईश्वर का चिन्तन स्थायी रहे और हम ईश्वर को न भूलें; यह सबसे अच्छा ध्यान है। सब दुनियाँ को नहीं छोड़ सकते और न दुनियाँ का त्यागना सबके लिए अभोष्ट ही है। दुनिया में रहें, दुनिया वालों से मिलें और फिर ईश्वर को न भूलें, यह सब से उत्तम ध्यान है। इस स्थल पर हम एक कहानी उद्धृत करना चाहते हैं जो हमने स्वामी रामतीर्थ के ग्रन्थों में बहुत दिन हुए पढ़ी थी। किसी का घोड़ा बहुत प्यासा था। वह उस घोड़े को लेकर पंजाब के किसी ग्राम में एक ऐसे कुएं पर पहुंच गया जहाँ रेंट से पानी निकाला जा रहा था। पानी बड़े जोरों से निकलता था परन्तु उसके साथ ही आवाज भी बड़े जोरों से होती थी। उस

आवाज को सुन कर उसका घोड़ा चौंक जाता था और कुएं से पीछे हट जाता था। परिणाम यह हुआ कि बहुत देर बीत जाने पर भी घोड़ा पानी न पी सका और उस आदमी ने उस कुएं वाले से बहुत शिकायत की कि वह उसके घोड़े की प्यास न बुझा सका। उस कुएं पर पानी निकालने वाले आदमी ने जो उत्तर दिया वह विचारणीय है। उसने कहा कि तुमने अपने घोड़े की आदत बिगाड़ रखी है यदि घोड़ा प्यास बुझाना चाहता है तो उसको शोर से चौंकने की आदत छोड़नी होगी। नहीं तो पानी होते हुए भी प्यासा ही रहेगा। इसी प्रकार यदि हम ईश्वर चिन्तन के सांसारिक पदार्थों के मध्य में रह कर अभ्यासी न होंगे तो हमारी तृप्ति कभी न होगी। जो सच्चा कर्मकाण्डी, परोपकारी और लोकसेवा करने वाला है वही ईश्वर भक्त है। ऋषि दयानन्द ने क्रियात्मक भक्ति के आदेश को हमारे सामने रखा है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर भक्ति के लिए आँख मीच कर एकान्त में बैठना आवश्यक नहीं बल्कि उन्होंने योग के आनन्द को जनसेवा के लिए और संसार के उत्थान के लिए परित्याग कर दिया। कर्मयोग ही सच्चा भक्तियोग है।

मन मन्दिर निर्माण

साधारण मन्दिरों में स्थूल पूजा के लिए हमें निम्नलिखित वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

- (१) उपासक या पुजारी
- (२) उपास्यदेव या मूर्ति
- (३) पूजा के निम्न लिखित साधन
 - (ध) आर्तियाँ
 - (व) भोग
 - (स) जल
 - (द) पुष्पादि
 - (म) स्तुति

इन साधनों से उपासक या पुजारी देवता या मूर्ति की पूजा करता है, परन्तु यह बात पूजा करने वाले भूल जाते हैं कि निराकार परमात्मा की मूर्ति नहीं हो सकती और इन प्राकृतिक पदार्थों से निराकार परमात्मा की पूजा नहीं होती। बैठते हैं पूजा करने और प्राकृतिक वस्तुओं के झंझट में और अधिक फँस जाते हैं। जब से यह मूर्ति-पूजा प्रचलित हुई है यह देखा जाता है कि जो पुजारी और बड़े मूर्तिपूजक हैं वह बहुत बड़े भोगबिलासी हैं

जो कम पूजा करते हैं या नाम-मात्र की पूजा करते हैं वह चौबीस घंटे वाले पुजारियों से बहुत अच्छे हैं।

जीवात्मा को निराकार परमात्मा की पूजा करनी है और इस पूजा के लिये हमारा हृदय मन्दिर सब से अच्छा स्थान है और इस ब्रह्माण्ड के पदार्थ पूजा की सामग्री है—एक छोटे से दीपक के स्थान में आरती के लिये यह विशाल सूर्य हैं। भोग लगाने के लिये इस संसार के अन्न इत्यादि और भोग पदार्थ हैं। ये मेघ जल सिंचन के लिए और कल्पाष ग्रीवा वाले वृक्ष पुष्प चढ़ाने के लिए। स्तुति के लिए वेद वाक्य और प्रेम भरी जिह्वा। आत्मा हृदय मन्दिर में प्रवेश करके एकाग्र चित्त होकर बैठे और परमात्मा की पूजा इन ब्रह्माण्ड के पदार्थों को लक्ष्य में रख कर मानसिक रूप में करे। इससे हमारा मन एक ऐसे विशाल मन्दिर के रूप में हो जावेगा जिसके लिए ईंट और पत्थर की आवश्यकता नहीं और न किसी अन्य जड़ पदार्थों की। जिसे तूफान और भूचाल हानि न पहुंचा सकेंगे और जिसकी सीमा एक छोटा सा स्थान नहीं बल्कि यह सारा ब्रह्माण्ड ही जिसकी सीमा के अन्तर्गत होगा। इस संसार के सब पदार्थ पूजा के लिये होंगे और हम उनके उपयोग में ऐसे ही सावधान और स्वच्छ हृदय रहेंगे जैसे भावपूजा की सामग्री के लिए हमारे अन्दर होते हैं। हमारी आत्मा सच्चा पुजारी बन कर अपने इष्टदेव परमात्मा की पूजा करेगी और संसार के सब पदार्थों को पूजा की सामग्री के भावों से देखेगी।

इस प्रकार की पूजा की विधि से ध्यान परिपक्व और मर्यादित होता है।

अब तक इस सन्ध्या की विधि में जो अंग आये हैं उनका योग के अंगों से सम्बन्ध इस प्रकार रहा है कि मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के अन्त तक यम, नियम, आसन, प्रतिहार और प्राणायाम धारण और ध्यान नाम वाले अंग पूर्ण हो जाते हैं। ध्यान के अभ्यासी होने के पश्चात् समाधि का नम्बर है और ध्यान के अभ्यासी ही समाधि के आनन्द के भोगने के अधिकारी हैं। समाधि अवस्था में विशेषता यह है कि जहाँ ध्यान का अभ्यास करने में हमें प्राकृतिक पदार्थों को अपने लक्ष्य में रख कर उनको ईश्वर का महत्व दर्शाने वाला जानने और मानने की आवश्यकता है वहाँ समाधि में इन पदार्थों को बिल्कुल भूल कर साक्षात् ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने का अभ्यासी बनना होगा।

ये प्राकृतिक पदार्थ प्रकाश के साधन हैं। यदि ईश्वर का जलवा इनके द्वारा प्रकट हो परन्तु यदि हम इनके ही भ्रंश में फँस जायें तो वजाय प्रकाश के साधन होने के ये अन्धकार के साधन बनेंगे।

प्रकृति या माया

षट् दर्शनों में प्रकृति को भिन्न भिन्न नामों से दर्शाया है। वेदान्त में इस प्रकृति को माया कहा है। माया से अभिप्राय यह नहीं कि यह प्रकृति सत्ता नहीं रखती परन्तु माया से यह अभिप्राय है कि वेद या ज्ञान का अन्त ईश्वर का साक्षात् करता है और जब ईश्वर का साक्षात् हो जावे तो उस समय प्रकृति अनावश्यक भ्रमोत्पादक हो जाती है। इसी प्रकार सन्ध्या की विधि में मनसा, परिक्रमा के मन्त्रों के पश्चात् उपस्थान मन्त्रों का स्थान आता है।

उपस्थान मंत्र

उपस्थान मंत्र योग के समाधि अंग के समान है। उपस्थान से अभिप्राय ईश्वर के समीप बैठना है। यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि ईश्वर और जीव में देश और काल की दूरी नहीं केवल ध्यान की ही दूरी है। ध्यान स्थिर होते ही उपासना आरम्भ हो जाती है जो उपासना शब्द के भाव हैं वही उपस्थान शब्द के भाव हैं। उपस्थान मंत्रों में इस प्रकृति को 'तम' कहा जाता है। उपस्थान मंत्रों का पहला मंत्र।

ओ उदयन्तम सस्पर्ष्वः पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्ज्योति रूत्तमम् ।

इसका अभिप्राय यह है कि तम से परे होकर हम उस महान् प्रभु को देखते हैं अर्थात् साक्षात् करते हैं और परमात्मा को जिस रूप में देखते हैं उसका वर्णन जिन शब्दों में किया गया है वह हमारी आत्मा को उत्थान की ओर ले जाने वाले हैं। परमात्मा को प्रकाशस्वरूप कहा गया है अर्थात् प्रलय के पीछे भी सदा वर्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करने वालों में भी प्रकाश करने वाला (सूर्य) चराचर के आत्मा (ज्योति रूत्तमम्) जो ज्ञान सत्स्वरूप और सब से उत्तम है हम सब आपकी शरण में आते हैं, हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है जब हम परमात्मा को इस रूप में साक्षात् कर सकें तो हम इस बात के अधिकारी होंगे कि परमात्मा का संबन्ध और आत्मा और प्रकृति के संबन्ध समझ सकें। दूसरे मंत्र में यह बताया गया है। इस मंत्र में यह दर्शाया गया है कि परमात्मा का वेदरूपी ज्ञान हमारे लिए इस संसार के सब पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला है अर्थात् इनके असली स्वरूप को हमारे सामने रखने वाला है जैसे इस संसार के सब पदार्थों को देखने के लिए सूर्य की आवश्यकता है इसी प्रकार इस वेदरूपी ज्ञान के सूर्य की आवश्यकता जीव के लिए परमात्मा प्रकृति और स्वयं जीव को अपने स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है।

(७४)

आज हर राष्ट्र और समुदाय अपना अपना भूगडा (केतन) पृथक् पृथक् रखते हैं जिससे उनकी सत्ता पृथक् रूप से प्रकट हो। परमात्मा ने वेदोंका ज्ञान इसीलिए प्रदान किया कि वेद ईश्वर के स्वरूप को चिरस्थायी रूप से प्रकट करने के लिए स्टैंडर्ड का काम देते रहें और ईश्वर के स्वरूप के साथ साथ संसार के अन्य पदार्थों के स्वरूप को भी ठीक २ प्रकट करते रहें। वेद इस विश्व को दर्शाने के लिए सूर्य हैं और परमात्मदेव के लिये केतन हैं। जहाँ हमने वेद और ईश्वर के सम्बन्ध को समझ लिया फिर हम किसी भ्रम या भ्रंश में नहीं फँस सकते। इसी आवश्यकता को अनुभव करने के लिए ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के १० नियमों में से पहिले तीन नियमों में यह दर्शाने का उद्योग किया है कि सब सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर हैं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका भी आदि मूल परमेश्वर हैं और वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। जब से यह प्राचीन सच्चाई हमारे सामने न रही तो बड़े बड़े विद्वान्, ईश्वर-भक्त और आस्तिक होने के स्थान में नास्तिक और अभिमानी हो गये। ईश्वर के साक्षात् होने पर सबसे पहिली बात जो हमें अपने हृदय में धारण करनी होगी वह ईश्वर के प्रदान किये हुए ज्ञानवेद के सम्बन्ध में है। वेद अर्थात् इस संसार के समस्त ज्ञान के श्रोत ईश्वर को जान कर हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती और इसी ज्ञान से समाधि का आनन्द आरम्भ होता है।

ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए

आर्य सेवक

ॐ के ॐ

ग्राहक बन कर

तन, मन, धन वैदिक धर्म सेवा निमित्त प्रदानकर पुण्य के भागी बनिये। प्रत्येक संस्था को जीवित रखने के लिये अपना मुखपत्र चलाना आवश्यक है।

वार्षिक मूल्य २)

मैनेजर—आर्य-सेवक, कार्यालय, सदर बाजार, नागपुर।

संस्कृति क्या है ?*

संसार की नवीन व्यवस्था में भारत का स्थान

नाज़ीवाद और पूर्वीय सभ्यता में विरोध

श्री अरविन्दघोष के विचार

[ले०—सर अकबर हैदरी]

—:❀:—

आज संसार की आत्मा संकट में पड़ गई है। मानव जाति सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से जिन बातों को महत्व देती आई है, उन सबका अस्तित्व आज अधर में लटका हुआ है। प्रश्न यह है कि आज जैसी अराजकता हमारे बीच छाई हुई है, उससे संस्कृति के बचे रहने की क्या कुछ भी आशा है ?

कोई राष्ट्र अपनी जनता में ज्ञान, विज्ञान तथा ललित कलाओं का विकास भले ही कर ले, किन्तु यदि वह अपने साधारण दृष्टिकोण, अपनी विचारधारा और अपने दैनिक जीवन में ज्ञान, सत्य और सौन्दर्य तथा जीवन के उच्च आदर्शों से प्रभावित होने के स्थान पर व्यापारिक, धार्मिक तथा निम्न कोटि के उद्देश्यों से प्रभावित होता है तो साधारणतः उसे सभ्य भले ही कह लिया जाय, किन्तु वास्तविक अर्थ में उसे सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता।

सुसंस्कृत कौन है ?

श्री अरविन्द घोष ने संस्कृति तथा सुसंस्कृत मानव समाज की व्याख्या बड़े सारगर्भित शब्दों में की है। आप के शब्दों में उस व्यक्ति को संस्कृति के वास्तविक अर्थ में सुसंस्कृत कहा जा सकता है। 'जो मन की इन्द्रियता (अस्थिर अवस्था) से ऊपर उठकर ज्ञान और विवेक को अपनाता है और जिसकी भावना जिज्ञासु के समान सदा ज्ञान की खोज में रहती है। सुसंस्कृत व्यक्ति के कर्म उसकी परिष्कृत अभिलाषा के परिणाम होते हैं और इन्हीं से चरित्र तथा अन्य नैतिक गुणों का निर्माण होता है। ऐसा व्यक्ति साधारण अथवा निम्नकोटि की मनोवृत्ति के बशीभूत होकर कार्य नहीं करता, बल्कि उसके कार्य सत्य, और सौंदर्य के अभिज्ञान तथा आत्म संयम के आधार पर किए हुए संकल्प के परिणाम होते हैं।'

* भारत सरकार के इन्फार्मेशन डिपार्टमेंट (सूचना विभाग) के सौजन्य से प्राप्त।

(७६)

इस प्रकार सच्ची संस्कृति सत्यं, शिवं, सुन्दरं की खोज में एकनिष्ठ होकर लगा रहना है। इस कसौटी पर कसने पर हम आधुनिक सभ्यता को यूनान की प्राचीन संस्कृति या जागृत काल के इटली अथवा अशोक या विक्रमादित्य कालीन प्राचीन भारत अथवा अकबर और शाहजहां के मध्यकालीन भारत से निरन्तर पाते हैं क्योंकि आज संसार के सभ्य कहाने वाले राष्ट्रों ने अपनी बौद्धिक तथा वैज्ञानिक सफलताओं का अपने व्यापारिक उद्देश्यों, हृदयहीन अधर्माकृति तथा पशुबल बढ़ाने में उपयोग करने के सिवा और कुछ नहीं किया।

आज यूरोप का अधिकांश मानव समाज अपनी शक्ति बढ़ाना ही जीवन का ध्येय समझता है। आधुनिकता का मतलब विज्ञान से श्रोतप्रोत, कुत्सित और प्राणहीन जीवन है।

कला के सम्बन्ध में पूर्वीय और पश्चिमीय दृष्टिकोण की विभिन्नता से भी इस विषय पर कम प्रकाश नहीं पड़ता। पूर्वीय कलाकार वस्तु के बाह्य की अपेक्षा उसके अन्तर को सजाने में ही कला की सार्थकता समझता है। उसकी कला का उच्चतम ध्येय आत्मा अर्थात् मनुष्य के अन्तर की दैवी सत्ता का ज्ञान प्राप्त करना अथवा इस दैवी सत्ता और प्रकृति के परस्पर भेदों पर प्रकाश डालना है। पूर्वीय कलाकार आत्मा को इसकी अभिव्यक्ति द्वारा, असीम दैवी सत्ता को इसके सीम प्रतिरूपों तथा सांसारिक उपकरणों द्वारा और ब्रह्म को इसकी अपरिमित तथा अपरिमेय शक्ति द्वारा समझता है।

भारत की एकता का प्रश्न

अक्सर कहा जाता है कि भारतीयों की आध्यात्मिकता ही उनके सांसारिक जीवन की असफलताओं तथा विदेशियों की अधीनता में पड़ने का कारण है। परन्तु दर्शन और साहित्य में भारत की महत्ता, चित्रकला तथा मूर्ति और गृह निर्माण कलाओं में उसकी सफलता और उसके इतिहास में महान् साम्राज्यों का उत्थान तथा पतन— इन सबसे यही प्रकट होता है कि भारतीय जनता संकल्प करने तथा भक्ति का प्रदर्शन करने में किसी से पीछे नहीं रही है।

भारत में राजनीतिक एकता न रहने का कारण देश की विशालता तथा यातायात के साधनों की कमी थी। यही कारण था कि विदेशियों ने उस पर विजय पायी, यद्यपि विजय होने के पूर्व उन्हें लम्बी और कठिन लड़ाइयां लड़ना पड़ता

(७७)

था। अब यातायात के आधुनिक साधनों का विकास होने के कारण देश के राजनीतिक जीवन में एकता आने लगी है। यदि राजनीतिक दृष्टि से भारत स्वाधीन हो जाय और अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को पुनः प्राप्त कर ले, जैसा कि उसके करने का मुझे पूर्ण विश्वास है, तो वह मानव जाति के उत्थान के लिए एक भारी शक्ति की सृष्टि कर देगा।

नाजीवाद की छाया

परन्तु एक सुखद स्वप्न के विपरीत हमारे सामने नाजीवाद की छाया फैलने लगी है। यह हमारी आध्यात्मिक सभ्यता और संस्कृति से बिल्कुल उलटी दिशा में ले जाने वाली विचार धारा है। मानव जाति की आध्यात्मिक उन्नति को रोकने के लिए जो कुछ भी हो सकता है, नाजीवाद उसी का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन के प्रति नाजियों का दृष्टिकोण तथा उससे संस्कृति के लिए जो खतरा हो सकता है उसे समझने के लिए हमें दो मनोवैज्ञानिक सत्यों को ध्यान में रखना होगा।

पहला सत्य है अहंभाव, जिसका मतलब यह है कि हम अपना अस्तित्व दूसरे देशों से भिन्न मानते हैं। यह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। अपने वास्तविक स्वरूप में परमात्मा तथा संसार के समस्त प्राणियों से हम अपनी एकता मानने के लिये बाध्य हैं।

दूसरे सत्य के अनुसार हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए कि व्यक्ति का अस्तित्व स्वयं अपने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका विस्तार अन्य सभी व्यक्तियों तक है। उसकी तथा अन्य व्यक्तियों की सत्ता एक ही है। यदि समाज व्यक्ति के अस्तित्व को मिटाने की चेष्टा करता है तो इसका मतलब है कि वह अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है और प्रोत्साहन तथा विकास के एक अमूल्य साधन से वंचित रह जाता है। उसी प्रकार व्यक्ति भी अपनी सत्ता को अलग नहीं रख सकता, क्योंकि उसका उद्गम सामूहिकता से हुआ है और उसको दबाने की चेष्टा करना अपनी जीवन शक्ति का लोप होने देना है।

जीवन के प्रति नाजी दृष्टि कोण

ये दो सत्य केवल व्यक्ति पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्र पर भी लागू होते हैं। जीवन के प्रति नाजियों के दृष्टिकोण का सार इस प्रकार है:—

(७८)

(१) समूह का एक अंग मात्र होने के कारण व्यक्ति का जीवन राष्ट्र के उत्तम परिचालन पर निर्भर रहना चाहिए। राज्य की प्रधानता तथा व्यक्तित्व के नाश की इस भावी विचार धारा को एक वर्गवादी सभी लोगों ने अपना लिया है।

(२) राज्य तथा समाज की सेवा ही नैतिकता का सर्वोपरि नियम है। अन्य राज्यों के प्रति व्यवहार में सबसे प्रभाव पूर्ण नियम पशुबल का प्रयोग है।

(३) चूंकि सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियों के जीवित रहने में ही मनुष्य जाति का सबसे अधिक कल्याण है और चूंकि सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियों के जीवित रहने का एक मात्र उपाय अयोग्य व्यक्तियों का नाश तथा अपेक्षाकृत कम अयोग्य व्यक्तियों का समूह में समा जाना है इसलिये मानव जाति की उन्नति का सबसे सीधा मार्ग संसार की जर्मन संस्कृति द्वारा विजय है।

गत महायुद्ध के समय जर्मन विचारधारा के सम्बन्ध में उपर्युक्त व्याख्या श्री अरविन्द घोष की 'आर्य' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। हाल की घटनाओं तथा नाजी आन्दोलन की वाइविल मीनकाम्प से उपर्युक्त व्याख्या की सार्थकता अब भली भांति प्रकट हो गई है इसमें कहा गया है कि कुछ जातियां आर्य हैं और इनमें से भी कुछ नोर्डिक हैं। नोर्डिक शब्द में भारतीय जातियों के आर्य पूर्व पुरुषों को छोड़ दिया गया है। कहा गया है कि इन आर्य जातियों में जर्मन जाति सबसे प्रधान है और संसार की प्रगति का एक मात्र उपाय यही है कि जर्मन लोग अन्य निम्न कोटि की सभी जातियों पर प्रभुता प्राप्त कर लें और अपनी संख्या का प्रत्येक उपाय से विस्तार करें। हिटलर अपनी पुस्तक में कहता है कि "पूर्व के ढोंगियों के लिये मेरी व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। वह यह भी कहता है— "काली जातियों को बौद्धिक पेशों के लिये तैयार करना परम पिता के प्रति सबसे बड़ा पाप है।"

यदि नाजी लोग संसार पर प्रभुता प्राप्त कर लेते हैं तो मानव जाति और मानव सभ्यता का क्या होगा, यह ऊपर जो कुछ मैं कह चुका हूँ उससे स्पष्ट है। यदि अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का मतलब आधुनिक और प्रकाश है तो नाजी शब्द 'कुलचूर' का मतलब कटुता और अन्धकार है।

(७५)

विश्व सङ्घ की स्थापना

बर्बरता के ऐसे आक्रमण से मानव जाति की रक्षा के लिए और संसार में शान्ति और व्यवस्था सुरक्षित रखने के लिए ताकि संस्कृति और आध्यात्मिकता की रक्षा हो सके और मानव जाति, जीवन के आह्लाद और सौंदर्य का अनुभव कर सके एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था या विश्व सङ्घ की स्थापना होनी चाहिए, जो संसार में अराजकता और युद्ध को फैलने से रोक सके। यह व्यवस्था या सङ्घ संसार में शान्ति और व्यवस्था उसी प्रकार कायम रखेगा जिस प्रकार कोई सरकार देश की सीमाओं के भीतर शासन करती है। परन्तु इस क्षण समस्या के ऐसे विवेक पूर्ण निबटारे से हम बहुत दूर हैं। नहीं, सच तो यह है कि मनुष्य जाति के इतिहास के इस काल में हम उससे बिल्कुल विपरीत दिशा की ओर चले जा रहे हैं। आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे लौटकर हम अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था के गर्त में जा गिरे हैं। हम फिर से जीवन सङ्घर्ष के ऐसे सिद्धांत पर पहुंच गये हैं, जिसमें सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व दिया गया है। जीवन सङ्घर्ष का यह आधार मनुष्य की अपेक्षा पशुओं को ही अधिक शोभा देता है।

राष्ट्रों, जातियों, संस्कृतियों तथा मजहबों के बीच आज जो विरोध, शत्रुता तथा अविश्वास की भावना दिखाई दे रही है, यह हमारी प्राचीन अहंभावना के कारण है। यह दूसरे पर अपनी इच्छा लादने की हमारी प्रवृत्ति के कारण है। यह दूसरे घर को छीनकर उसे अपना घर बना लेने, उस पर अपनी प्रभुता स्थापित करने तथा एक के द्वारा दूसरे के अस्तित्व को मिटा देने के भय के कारण है।

अब हमें एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है, जिसमें पारस्परिक सहनशीलता ही कानून हो, जिसमें एक साथ विभिन्न जातियां, राष्ट्र, संस्कृतियां और आध्यात्मिकताएँ रहें और फले फूलें। ऐसी व्यवस्था में ऐसी सामूहिक एकता में ही आज दिखाई देने वाली विरोध, शत्रुता और अविश्वास की भावनाएँ मिट सकती हैं।

मानव जाति की पूर्ण विकसित सभ्यता में हमारी यही स्थिति होगी और इसी को अपनी उन्नति का ध्येय मानकर हमें आगे बढ़ना चाहिए। भारत

(८०)

की आध्यात्मिक संस्कृति का उद्देश्य मानवता के सर्वोच्च आदर्शों की प्राप्ति करना रहा है। इसीलिए संसार में नयी व्यवस्था होने पर भारत उसमें अपना उचित स्थान ही प्राप्त नहीं करेगा, वरन् मानव जाति के विकास में संसार को मार्ग दिखाने में भी समर्थ हो सकेगा। मनुष्य जाति को आध्यात्मिकता से इसमें ओत प्रोत करने के लिए भारत के पास आदर्शों की महत्ता है और उसकी जनता में उन्हें कार्यान्वित करने की सामर्थ्य है।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) दयानन्द ग्रन्थमाला	२॥	(२१) कर्तव्य दर्पण	=॥
(२) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश अ० १ स० १-		(२२) समस्त आर्य्य समानों की सूची ॥	
(३) प्राणायाम विधि	॥	(२३) दश नियम व्याख्या	≡
(४) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द	॥	(२४) सार्वदेशिक सभा का इतिहास	२
सजिल्द	१	सजिल्द	२॥
(५) विदेशों में आर्य्य समाज	१=	(२५) वलिदान	॥
(६) यमपितृ परिचय	१	(२६) कायाकल्प सजिल्द	१॥
(७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	१॥	(२७) पञ्चयज्ञ प्रकाश	॥
(८) आर्य्य सिद्धान्त विमर्श	१॥	(२८) Agnihotra	
(९) भजन भास्कर	॥	Well Bound	२॥
(१०) वेद में असित शब्द	७॥	(२९) Crucifixion by an eye	
(११) वैदिक सूर्य्य विज्ञान	७	witness	७
(१२) विरजानन्द विजय	७	(३०) Truth and Vedas	७
(१३) हिन्दू मुस्लिम इतिहास	७	(३१) Truth bed rocks of Aryn	
(१४) इज्जहारे हक्रीकृत (उर्दू में)	॥=	Culture	॥
(१५) सत्य निर्णय (हिन्दी में)	१॥	(३२) Vedic Teachings	१॥
(१६) धर्म और उसकी आवश्यकता	७	(३३) Voice of Arya Varta	७
(१७) आर्य्य पर्व पद्धति	॥=	(३४) Daily Prayer of	
(१८) कथा माला	७	an Arya	७
(१९) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म	७	(३५) Commentary on	
(२०) आर्य्यवर्त्त की वाणी	७	Ishopanishat	१
		(३६) The Scopes Mission of	
		Arya Samaj Bound	१
		Unbound	१=

सुमन-संचय

(१)

महात्मा का प्रभाव

एक समय भगवान् बुद्ध अर्धल बन में यात्रा कर रहे थे। उन्होंने देखा एक गड़रिया बहुत सी भेड़ों को लिए जा रहा है। भेड़ों के उस समूह में भेड़ का एक छोटा बच्चा खुर में चोट लग जाने और तेज धूप से व्याकुल होकर चलने में अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा था। भगवान् बुद्ध सभी जीवों को एक समान करुणा दृष्टि से देखते थे। उन्होंने स्नेह से उस बच्चे को उठा लिया और भेड़ों के साथ २ चलने लगे। बुद्ध ने उस गड़रिये से कहा भाई तुम इस तेज धूप में इन भेड़ों को क्यों ले जा रहे हो? यात्रा करने का समय तो वास्तव में संध्या और प्रातःकाल का होता है। गड़रिये ने कहा महाराज! आज संध्या को महाराज (नरेश) को इन पशुओं की बलि देनी है, इसलिए समय पर इनका पहुँचना आवश्यक है।' बुद्ध को यह जान कर अत्यन्त खेद हुआ। इसी बीच में भगवान् बुद्ध के एक शिष्य ने आकर कहा 'महाराज! सङ्घ में नर-नारियों की अपूर्व भीड़ लगी है और वे आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृपा कर शीघ्र पधारिये और उन्हें धर्मोपदेश दीजिए।' महात्मा बुद्ध ने संघ को जाने के लिए निषेध कर दिया और बच्चे को गोद में लेकर गड़रिए के साथ चल दिये।

जब वे राज मंदिर में पहुँचे तो द्वार रक्षकों ने महात्मा के तेज से प्रभावित होकर द्वार खोल दिया। बुद्ध चुपचाप मन्दिर में प्रविष्ट हुए। राजा उस समय पहले बकरे की बलि देने लगा था। राजा ने अपने समीप खड़े हुए वधिक को संकेत किया। एक ने हाथ में छुरी संभाली और दूसरे ने मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया इसी समय बुद्ध ने समीप पहुँच कर बकरे की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरा और विनय की कि इस पशु की

(८२)

हत्या न की जाय और तुरन्त रस्सियों को काट कर पशु को स्वतन्त्र कर दिया । लोग चुपचाप खड़े इस घटना को देखते रहे कुछ कहने का साहस किसी को भी न हुआ ।

बुद्ध भगवान् उन सबको स्तब्ध देखकर बोले:—

हिंसा करना घृणित कार्य है । पशुओं में भी मनुष्यों के सदृश ही जीव है । उन्हें भी हत्या के समय बहुत क्लेश होता है । आप लोग देवताओं की कृपा प्राप्त करने के लिए इन असहायों पर छुरी चलाते हैं । परन्तु जब आप इन पर स्वयं किसी प्रकार की कृपा नहीं करते तो आप को देवताओं से कृपा की भिक्षा माँगने का क्या अधिकार है । निर्दोष भेड़ें और बकरियाँ अपने दूध और ऊन से हमारी सेवा करती हैं और हम उनकी हत्या करते हैं यह कितना बड़ा अन्याय है ? आप समझते हैं कि इन जीवों का रक्त बहाने से आपके पाप धुल जायेंगे परन्तु वास्तव में इससे आपके पापों की वृद्धि होती है । यदि हम पापों से मुक्ति चाहते हैं तो हमें इन जीवों से प्रेम करना चाहिए । अपने हृदयों को पवित्र बनाना चाहिए । इस संसार में सुख और शान्ति के प्रचार का एक मात्र साधन यही है ।

भगवान् के इस उपदेश का प्रभाव सब पर गहरा पड़ा और अधिकों ने लज्जा और ग्लानि से अपने रुधिराण्डुत हाथों को बस्त्रों में छिपा लिया । राजा भी उनके प्रवचन से अत्यन्त प्रभावित हुआ और अत्यन्त सम्मान से उन्हें अपने प्रासाद में ले गया । दूसरे दिन ही उसने भगवान् की इच्छानुसार अपने राज्य में घोषणा करके पशु बलि बन्द करा दी और आहार के लिए भी पशु-बध का निरोध कर दिया ।

(२)

स्वार्थ त्याग

एक बार शाहजहाँ बादशाह की एक पुत्री बहुत बीमार हुई । शाह-जहाँ इस पुत्री को बहुत प्रेम करते थे । अनेकों हकीमों और वैद्यों की चिकित्सा कराई गई परन्तु राजकुमारी को आराम न हुआ । दिन पर दिन उसकी दशा खराब होती गई और बचने की भी आशा न रही । बादशाह अपनी पुत्री की जीवन रक्षा के लिए अपना राज और सर्वस्व भी अर्पण

(८३)

करने को उद्यत देख पड़ने लगे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार राजकुमारी के जीवन की रक्षा हो जाय। उन्हीं दिनों उनके दरबार में एक विदेशी राजदूत रहता था। उसने भी राजकुमारी के इलाज की बादशाह से प्रार्थना की। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर इलाज की आज्ञा दे दी। राजदूत ने राजकुमारी के रोग की परीक्षा की और रोग समझ में आ जाने पर चिकित्सा आरम्भ की। ८-१० दिन में ही राजकुमारी को आराम हो गया। बादशाह राजदूत से बड़े प्रसन्न हुए और उसे इनाम देने के लिए सोने जवाहरात के ढेर उसके सामने लगवा दिए। परन्तु राजदूत ने यह संपदा स्वीकार न की। इस बात पर बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने राजदूत से पूछा “तुम इन्हें स्वीकार क्यों नहीं करते यदि कम समझते हो तो और जितने चाहो ले लो।” राजदूत ने कहा— “जहाँ पनाह ! यदि आप मुझे इनाम देना चाहते हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा करें।” बादशाह ने पूछा ‘क्या ?’ राजदूत ने कहा, “शहंशाह ! मेरे देश के माल पर जो सरकारी कर लगता है वह माफ कर दिया जाय। इससे अधिक अपने लिए मैं कुछ नहीं चाहता।” बादशाह और उसके मुसाहिबों को इस तुच्छ मांग पर हंसी आई और वह मांग तत्काल स्वीकार कर दी गई। यह राजदूत अंग्रेजों का राजदूत था। उसकी चतुराई और निजी स्वार्थ त्याग का फल यह हुआ कि अंग्रेजों का व्यापार भारतवर्ष में बहुत फला और इसी के फल स्वरूप अंग्रेज जाति इस देश की शासक बन गई।

(३)

सच्ची माता

सम्राट् अकबर ने एक विशाल सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजपूत जाति का प्रत्येक बच्चा चित्तौड़ की विपत्ति को अपनी विपत्ति मानता था अतः राणा के निमन्त्रण की प्रतीक्षा किए बिना लाखों राजपूत कैसरिया बाना पहिने हुए चित्तौड़ में एकत्र हो गये। १६ वर्ष का बच्चा फत्ता चित्तौड़ न गया और घर में ही बैठा रहा। फत्ता की मां अपने पुत्र को इस समय घर में बैठा देखकर बहुत दुखी हुई।

एक दिन उसने फत्ता से कहा ‘तू घर में निकम्मा बैठा है। क्या तुझे चित्तौड़ की आपत्ति का पता नहीं ?’ ‘माँ, मुझे पता है पर मुझे इससे क्या ?

(८४)

राणा ने प्रत्येक को बुलाया है परन्तु उन्होंने मुझे बुलाना उचित नहीं समझा। मैं उनके लिए क्यों लड़ूँ। यह कहते कहते फत्ता की आँखें डबडबा गईं।

माँ ने कहा 'बेटा ! यदि राणा ने तुमको नहीं बुलाया तो क्या हुआ ? चित्तौड़ केवल राणा का नहीं है, वह तो मेरा, तेरा और हर एक राजपूत का है। यदि चित्तौड़ नष्ट हो गया तो इसकी शर्म से केवल राणा का मस्तक ही न झुकेगा, वरन् मेरे, तेरे और प्रत्येक राजपूत के मुँह पर कालिख पुत जायगी।'।

'माँ मैं तो नहीं जाऊँगा पर.....' कहते कहते फत्ता की हिचकी बँध गई। कर्मा देवी ताड़ गई कि थोड़ी कसर शेष है। उसने कहा 'याद रखो, युद्ध समाप्त होने पर हमारे चारण गाँवों में। "एक बार मेवाड़ पर अकबर ने चढ़ाई की। सच्चे राजपूतों ने मेवाड़ की रक्षा के लिए अपनी जान लड़ा दी, खून बहाया और मातृ भूमि के लिए मर मिटे पर फत्ता घर बैठा रहा। वह कायर था, सच्चा राजपूत न था" माता का यह उद्बोधन वीरवर फत्ता के हृदय पर जाकर लगा और वह रण वस्त्रों और अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि को चला गया।

अकबर ने चित्तौड़ को चारों ओर से घेर रखा था। कोई राजपूत न अन्दर जा सकता था और न बाहर निकल सकता था। फत्ता ने अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ मुगल सेना के घेरे को चीर कर किले का रास्ता बनाया और किले में पहुँच गया। फत्ता की वीरता की धाक सब पर जम गई उसी को सूर्य द्वार की रक्षा का भार सौंपा गया।

फत्ता के संग्राम में चले जाने पर माता कर्मा देवी सोचने लगी कि हमारी मातृ भूमि बड़े संकट में है। मुगल सेना विशाल है, हमारे सैनिक थोड़े हैं। इस समय चित्तौड़ को उसकी प्रत्येक सन्तान की आवश्यकता है।

यह सोचकर कर्मा देवी युद्ध सज्जा से तैयार होने लगी। फत्ता की बहिन कर्णावती और उसकी वीरपत्नी कमला देवी ने कर्मा देवी को युद्ध की पोशाक पहनते देखकर पूछा 'माँ ! यह युद्ध वेश क्यों बनाया है ?' कर्मा देवी ने कहा 'मैं चित्तौड़ जा रही हूँ। घर में पड़े पड़े मेरा मन नहीं लगता। मेरा लड़का मातृ भूमि की रक्षा के लिए लड़ ही रहा है। कदाचित् मैं भी अपनी मातृ भूमि की रक्षा के लिए अपने बच्चे की कुछ सहायता कर सकूँ।

कर्णावती ने कहा 'हम दोनों भाई बहिन बचपन से साथ साथ खेले हैं। माँ ! यह अन्तिम खेल भी भाई के साथ खेल लेने दो।'।

(८५)

कमलावती ने कहा “क्या तुम समझती हो कि मैं घर में बैठी रहूँगी ? नहीं ! मैं अपने वीर पति की बगल में लड़ते लड़ते मरना चाहती हूँ ।”

तीनों वीराङ्गनाएं हथियारों से सुसज्जित होकर घोड़े पर सवार हो चित्तौड़ को चल दीं ।

५००० चुनी हुई मुगल सेना के बीच में अकेला फत्ता घिरा हुआ अपने जौहर दिखा रहा था । मुगल सेना की एक और बड़ी टुकड़ी राजपूतों को घेरा ही चाहती थी, इसी समय मुगलों पर सनसनाती गोलियों की बौछार होने लगी । मुगल वीर कट कटकर गिरने लगे । चारों ओर देखा पर कहीं भी शत्रु दृष्टि न पड़ा मुगल सेना ने कदम उठाया ही था कि फिर गोलियों की वर्षा होने लगी ।

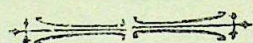
अकबर ने चारों ओर ध्यान से देखा । उस ने जो कुछ देखा उस से वह स्तब्ध रह गया । देखा कि सामने, कुछ ऊंची भूमि पर, वृत्तों के पीछे एक बूढ़ी स्त्री और २ तरुणियां घोड़े पर चढ़ी गोलियों की बौछार कर रही हैं और चुनी हुई ५००० मुगल सेना को रोक रही हैं । अकबर उनके साहस और वीरता को देखकर दंग रह गया । मन ही मन उन्हें प्रणाम करके कहने लगा ‘यदि यह जाति मेरी मित्र हो जाय तो सारे संसार को विजय कर सकता हूँ ।’ अकबर ने आज्ञा दी कि इन तीनों को जीता पकड़ा जाय । मारा न जाय । पर किसी राजपूत और राजपूत वीराङ्गना को जीता पकड़ने के लिए कहना सरल है पकड़ लेना सरल नहीं है ।

यह विषम युद्ध बहुत देर तक चला और अन्त में तीनों वीराङ्गनाएं घायल होकर गिर पड़ीं । उधर फत्ता वीरता प्रदर्शित करता हुआ उनके निकट पहुँचा । माँ, बहिन और पत्नी को देखकर घोड़े से उतरा । कर्णावती मर चुकी थी । पति को देखकर कमलावती मुसकराई और अन्तिम श्वास छोड़ दिया । फत्ता ने अपनी माँ का सिर गोद में लिया । कर्मादेवी ने आँखें खोलीं । कहा ‘वीर फत्ता ! तुम यहाँ कहाँ ? जाओ, लड़ो और विजय प्राप्त करो या मर जाओ ।’ हम तुम्हारी स्वर्ग में प्रतीक्षा करेंगी । कर्मादेवी ने आकाश की ओर देखा मुसकराई और सांस छोड़ दिया ।

अन्त में फत्ता भी इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ ।

—धुनाथ प्रसाद पाठक

आर्य समाज की चिनगारियाँ



आर्य समाज की सेवा

श्री ठाकुरदत्त जी धवन अपने समय में आर्य समाज के मुख्य कार्य कर्ताओं में से एक थे। आप डेरा इस्माईलखा के निवासी थे और ई. यू. सो. पद पर नियुक्त थे। जिला करनाल में आप वर्षों तक रहे। सरकारी काम के साथ साथ आप आर्य समाज का काम भी किया करते थे। हरयाणा प्रान्त में आर्य समाज का जो प्रचार है उसमें आपका उद्योग भी सम्मिलित है।

जिस समय आप करनाल में जज थे उस समय लंच के समय में आप समाज विषयक लेख लिखा करते थे। आपने उर्दू और अंग्रेजी भाषा में आर्य-समाज सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थीं। उस समय आपकी शिकायत हुई कि राय ठाकुरदत्त जी न्यायालय के समय में आर्य समाज का काम करते हैं। इस शिकायत पर आपसे उत्तर माँगा गया आपने अपने वक्तव्य में इस बात को स्वीकार किया कि वह न्यायालय में बैठकर उस समय आर्य समाज का भी काम करते हैं परन्तु आपने स्वीकार करते हुए अपनी अवस्था इस प्रकार वर्णन की थी। “अन्य आफीसर मध्याह्नोत्तर में लंच खाते हैं जितना समय वे लंच खाने में लगाते हैं मैं उसी लंच के समय को भोजन में न लगाकर आर्य समाज को सेवा में लगाता हूँ। मैं लंच के समय भोजन नहीं करता हूँ वह न्यायालय के काम का समय नहीं है अतः मैं उस समय आर्य समाज का काम करके किसी दोष का भागो नहीं हूँ।”

यह उत्तर सुनकर उच्च अधिकारी चुप हो गये और शिकायत करने वालों को लज्जित होना पड़ा।

जिस समय आपने पेन्शन ली उस समय डेरा इस्माईलखा में जाकर रहने लगे उस समय सिंधु में बाढ़ आगई डेरा इस्माईलखा सिंधु तट पर होने से नगर को बहा ले जाने का भय उपस्थित हो गया। अधिकारियों ने नगर में बंध बँधवाने की घोषणा करके नगर निवासियों को प्रेरणा की कि सब नगर वासी चलकर सिंधु तट पर बंध बांधे और उस दिन उच्च अधिकारियों को भी निरीक्षण के लिये आना

था। नगर के सामान्य व्यक्ति बंध बाँधने के स्थान पर गए और मिट्टी खोदकर टोकरियों से उठाकर बंध बनाने लगे और प्रतिष्ठित व्यक्ति उच्च कर्मचारियों की प्रतीक्षा में मार्ग पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। जिस समय उच्च कर्मचारी आये उस समय उन प्रतिष्ठित नगर निवासियों ने उनका स्वागत किया परन्तु ठाकुरदत्त जी ध्वन उनमें न थे। पदाधिकारी ने पूछा राय ठाकुरदत्त जी कहाँ हैं लोगों ने शिकायत की कि वह बड़े अभिमानी हैं नहीं आये हैं। उच्च कर्मचारी ने यह सब कुछ सुना और कुछ न कह कर सबके साथ जहाँ बंध बनाना था और नगर निवासी बना रहे थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर राय ठाकुरदत्त जी से भेंट हुई क्योंकि राय ठाकुरदत्त जी वहाँ लोगों को मिट्टी की भरी टोकरियाँ उठवा रहे थे और लँगोट बांधे उनके साथ काम कर रहे थे।

यह दृश्य देखकर उस उच्च कर्मचारी ने उन प्रतिष्ठित नगर निवासियों को सम्बोधन करके कहा—यदि आप लोग भी राय ठाकुरदत्त जी की भांति यहाँ आकर काम करते तो मार्ग पर बैठकर मेरी प्रतीक्षा करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा होता' यह सुनकर और राय ठाकुरदत्त सिंह जी के कृत्य को देखकर वह सब लज्जित हो गए।

प्रत्येक व्यक्ति को राय ठाकुरदत्त जी की घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

ऋषि-दर्शन

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी जब पढ़ते थे उस समय उन्होंने ऋषि के दर्शन किये। आपके पिता लाला नानकचन्द जी बरेली में कोतवाल थे। आप उनके पास रहते और वहाँ ही पढ़ते थे। उस समय महर्षि जी का बरेली में आगमन हुआ और वैदिक प्रचार आरम्भ हुआ। पौराणिक दल में खलबली मचना स्वाभाविक था, कोई नास्तिक, कोई ईसाई, कोई अंग्रेज पादरियों का वेतनभोगी कहने लगे। मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी का पहला नाम) को कहा गया कि आप उस साधु के पास न जायें। मुंशीराम जी उस समय स्वयं नास्तिक अर्थात् अनोश्वरवादी थे। आप एक बार किसी प्रकार दर्शन के लिये गए और ईश्वर विषय पर ही बातचीत की। मुंशीराम जी की युक्तियों का उत्तर दिया गया। जब वह निरुत्तर हो गए तो कहने लगे युक्ति तो और कोई नहीं है परन्तु ईश्वर पर विश्वास अब

भी नहीं हुआ। तब ऋषि ने कहा मेरा काम तो युक्तियों का वा प्रश्नों का उत्तर देना था। विश्वास तो आपको स्वयं ही जब होगा तब होगा।

उसके पश्चात् आप आस्तिक तो बन गए परन्तु अभी आर्य समाजी नहीं बने जिसका मुख्य कारण आपकी अवस्था ही प्रतीत होती है। जो सम्बन्धी ऋषि दर्शन से रोकते थे उनको क्या पता था कि मुंशीराम जी का जीवन कार्य ही ऋषि मंत्रियों का प्रचार करना है।

आप ने जब वकालत पढ़नी लाहौर में आरम्भ की, उस समय धर्म के अंकुर हृदय में उत्पन्न हुए और धर्म के जिज्ञासु बन गए। उस समय किसी के बतलाने पर सत्यार्थ प्रकाश की आवश्यकता पड़ी और आप आर्य समाज में सत्यार्थ प्रकाश क्रय करने गए। उस समय मन्त्री जी व पुस्तकाध्यक्ष कोई न मिला अन्त में आप ने सत्यार्थ प्रकाश ली और पढ़ने लगे। उस में इतने निमग्न हुए कि उसे समाप्त करके ही विराम किया। उस प्रथम पाठ से ही आपके विचार बदल गए और आप आर्य समाजी हो गए।

आर्य समाजी होने का परिचय सम्बन्धियों को एक घटना से लगा। आप जालंधर आए वहाँ राय साहिब शालिग्राम जी की कन्या से आपका विवाह हुआ था और रायजादा भक्तराम जी बैरिस्टर आपके साले लगते थे। उनके गृह पर आपका भोजन था और उन्होंने पूर्ववत् माँस बनाया। जिस समय ला० मुंशीराम जी भोजन के लिये बैठे तो आपके सामने भी माँस का कटोरा आया। आपने उसे उठाकर सामने की भित्ति से दे मारा। श्री भक्तराम जी ने कहा, आप पहले तो खाते थे, अब यदि न खाना था तो उठा देते। इस प्रकार नष्ट क्यों किया? आपने उत्तर दिया अब सर्वदा मुझे स्मरण रहेगा कि किसी समय ऐसा किया था और इस से भविष्य में प्रवृत्ति न होगी और आपको पुनः देने का उत्साह भी न होगा। इस लिए इस समय यही करना उचित था।

वकालत पास करके आपने जालंधर में काम आरम्भ किया और लाला मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम जी बने। आप प्रतिष्ठित वकील, प्रतिष्ठित व्यक्ति के जामाता थे परन्तु आर्य समाज के कार्य की लगन इतनी थी कि आप प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हाथ में एकतारा लेकर गलियों में दोहे गाते फिरा करते थे। पञ्जाब में उन गाने वालों को 'वच्छो वालीये' के नाम से पुकारा जाता है। दोहे अनेक प्रकार से गाए जाते हैं।

(८६)

पाथर पूजे हर मिले मैं पूजूं पहाड़ ।

पाथर से चक्की भली जिसका पीसा खाय संसार ।

कौड़ी कौड़ी जोड़ के किया लाख करोड़ ।

जाती बारी सुधरया ली तड़ागी तोड़ ।

आप इस प्रकार गीत गाते फिरा करते थे और अनजान स्त्रीयें यह समझ कर कि यह भी मांगने वाला है इनको अन्न व आटा दे देती थीं । आप उसे लाकर आर्य समाज में दे देते थे । आप सुनाया करते थे कि कई बार माताएं अपनी कन्या व पुत्र वधु से कहती थीं बेचारा प्रतिदिन आता है उसे कुछ दो ।

आप ने आर्य समाज के जो काम किये हैं वह सब को विदित हैं और उनके लिए पाठकों को उनका जीवन चरित्र पढ़ना चाहिये ।

—स्वतन्त्रानन्द

सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाई के रेट्स

स्थान	१ मास का	३ मास का	६ मास का	१ वर्ष का
दूसरा पृष्ठ	१०)	२५)	४०)	७५)
एक कालम	६)	१५)	२५)	४०)
आधा „	३॥)	८)	१५)	२५)
चौथाई „	२)	४)	८)	१५)

उत्तरत का धन नियमानुसार पेशगी आना चाहिये ।

महात्मा नारायण स्वामी जी की

उपनिषदों की टीका का संग्रह

उपनिषद् प्रेमियों के लाभार्थ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तरेय उपनिषदों का संग्रह एक ही जिल्द में तैयार कर दिया गया है । मूल्य १॥=॥

मिलने का पता :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

(७)

हिन्दू विवाह के आवश्यक अंग

हिन्दुओं के विधान के अनुसार 'विवाह' एक पवित्र आत्मिक सम्बन्ध होता है जिससे चारों वर्ण बाध्य होते हैं। यह धार्मिक कर्तव्य होता है जिसकी पूर्ति करना प्रत्येक के लिए आवश्यक समझा जाता है। हिन्दू विवाह का आन्तरिक भाव यह होता है कि कन्या का पिता अथवा अन्य सम्बन्धी अग्नि को साक्षी करके कन्या को वर के अर्पण करते हैं। विवाह सूत्र में बँध जाने पर यह सूत्र अटूट हो जाता है और वर वधू के जीवन काल में इसके विच्छेद की हिन्दू कानून में व्यवस्था नहीं है। हिन्दू विवाह के आवश्यक अंग इस प्रकार हैं:—

(१) द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में वर और वधू एक गोत्र के नहीं होने चाहियें।

(२) वर और वधू का एक दूसरे से ऐसा रिश्ता नहीं होना चाहिये जो विवाह के लिए निषिद्ध हो।

(३) वर और कन्या एक ही वर्ण के होने चाहियें।

(४) विवाह संस्कार पवित्र अग्नि के सम्मुख वैदिक मन्त्रों के उच्चारण सहित होना चाहिए।

(५) सप्तपदी की अनिवार्य क्रिया होनी चाहिए जो अकेली विवाह को पूर्ण और अटूट बनाती है।

सगोत्र का नियम

जो वर और कन्या एक ही पूर्वज की सन्तान हों, हिन्दू कानून उनके पारस्परिक विवाह के निषेध पर बहुत बल देता है। द्विज लोगों का सम्बन्ध बहुत से गोत्रों से होता है जिसका अभिप्राय यह है कि उनके नाम के साथ जो गोत्र लगा होता है वे उस ऋषि की सन्तान हैं। हिन्दू कानून के सिद्धान्तानुसार कोई भी पुरुष एक ही गोत्र की कन्या से विवाह नहीं कर सकता क्योंकि वे दोनों एक ही दूरवर्ती पूर्वज की सन्तान समझे जाते हैं। पञ्जाब हाई कोर्ट ने अमरसिंह बनाम

(६१)

जयसिंह के अभियोग में १६१७ में इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया था। माननीय न्यायाधीश ने यह लिखा था कि जो नियम एक ही गोत्र के व्यक्तियों के अन्तर्जातीय विवाहों का विधान करता है वह केवल द्विजों पर लागू होता है क्योंकि वे अपनी उच्च स्थिति और शिक्षा के कारण यह जानते हैं कि कौन उनके गोत्र का है और कौन उनके गोत्र का नहीं है। यह नियम ब्राह्मणों पर दृढ़ता से लागू होता है परन्तु प्रीवी कौन्सिल की एक ताजी स्थापना के अनुसार क्षत्रियों और वैश्यों के लिए यह नियम अनिवार्य नहीं है। क्षत्रिय और वैश्य जिनका गोत्र होता है वे आवश्यक रूप से ऋषि की सन्तान नहीं समझे जाते वरन् ऋषियों के शिष्यों की सन्तानों की सन्तान समझे जाते हैं। इस सिद्धान्त के संशोधन के अनुसार क्षत्रियों और वैश्यों में एक गोत्र के होते हुए भी प्रीवी कौन्सिल की स्थापना है कि उनमें रक्त सम्बन्ध नहीं होता अतः उनमें अन्तर्जातीय विवाह हो सकता है। माता और पिता की ओर से कुछ अंशों में सन्तानों पर निषेध लागू होता है अर्थात् उन पर जो एक दूसरे के सपिण्ड होते हैं।

शारदा मन्दिर बुक डिपो की अन्य उपयोगी पुस्तकें

१. महापुरुषों के दर्शन—(लेखक श्रीराम स्वरूप कौशल एम. ए.)
२. स्त्रियों का ओज—(आचार्य चतुरसेन शास्त्री) मूल्य १)
३. देश का राष्ट्र गान—(राजनाथ पाण्डेय एम. ए.)
४. योगामृत—(लेखक प्रो. गोपाल जी बी. ए.) मूल्य १)
५. सहेली—कन्याओं के लिये। मूल्य ॥=)
६. उपदेशामृत पांचों भाग—बच्चों की धार्मिक शिक्षा के लिये। मूल्य १॥=)
७. जीवनामृत
८. आनन्दामृत
९. पुरुषार्थामृत
१०. भक्ति कुसुमाञ्जलि
११. कालचक्र
१२. कथामाला—(श्री नारायण स्वामी)
१३. कैलाश पथ पर ॥)
१४. नीराजना
१५. लोरजा

(प्रो. सुधाकर एम. ए.)

साहित्यिक (कविता १) प्रति पुस्तक

बच्चों के लिये—१. राजपूत बच्चे, २. अम्मा कहानी सुना, दो भाग, ३. बच्चों के नाटक, ४. सखा की सीख, ५. सखी की सीख।

मिलने का पता—

शारदा मन्दिर बुक डिपो, नई सड़क, देहली।

पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रचित

अमूल्य पुस्तकें

योग-रहस्य

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक में योग के अनेक रहस्यों को प्रगट करते हुए उन विधियों को बतलाया गया है जिनसे कोई भी नया आदमी जिसे रुचि हो योग के अभ्यासों को कर सकता है। इसी पुस्तक में 'योग-दर्शन' भाष्य सहित भी है। आत्मोन्नति के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पुस्तक में २०० से अधिक पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटे पेपर पर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल १-) प्रति।

मृत्यु-परलोक

सत्तरहवाँ-संस्करण

इस पुस्तक में शरीर, अन्तःकरण तथा जीवन का स्वरूप और भेद और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार मृत्यु का स्वरूप तथा वाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरक इत्यादि लोकों का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि आदि विषयों पर अति सुन्दर रूप से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली ही है। अतः इसे पढ़े बिना कोई व्यक्ति न रहना चाहिए। पुस्तक में लगभग ३०० पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटा पेपर तथा मोटे टाइप में अति सुन्दर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल १-)

विद्यार्थी जीवन रहस्य

द्वितीय-संस्करण

विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को जीवन निर्माण में सहायता देनेवाली अमूल्य पुस्तक

इस पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए उनके जीवन के मार्ग का सच्चा पथ प्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलावद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश अंकित हैं। अतः प्रत्येक नवयुवक तथा विशेष कर विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तक ऐन्टिक पेपर पर छपी हुई है। पृष्ठ संख्या लगभग १०० हैं। मूल्य केवल प्रचारार्थ ३-) प्रति।

नोट—पुस्तक विक्रेताओं को इन पर उचित कमीशन भी दिया जायगा। पुस्तक मिलने का पता—

कार्यालय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि-सभा,

बलिदान भवन, देहली।

GRANDEUR OF SANSKRIT

(By—Pandit G. Dhareshver)

“WONDER-LANGUAGE OF WORLD-CULTURE”

A revival of Latin and Greek is said to have lifted Europe from the Dark Ages into the Dawny Twilight of modern Scientific Age. And a revival of Sanskrit, is now sorely needed to give the finishing touch by lifting mankind from this Scientific Dawn into the fullness of the Day-Light of Vedic Enlightenment and illumination. There are three grades of knowledge : Ordinary, Scientific, and Philosophic. These are known in ancient India as Jnana. Vi-Jnana, Sam-Jnana or as UT (Subtle), Uttara (Subtler), and Uttama (Subtles). If the socalled Dark Ages of Europe has Jnana, our modern times have Vi-Jnana, but from this we must now try to advance into the full day-light glory of Sam-Jnana (Spiritual Illumination) and for this a deep study of I.a, Bharati, and Sarasvati (India, Sanskrit and Veda has become the 'sine qua non' we must now lift man from Dawn into Day.

LANGUAGE OF THE GODS.

Sanskrit is truly the language of science, philosophy and culture. Even only roots of Sanskrit, what to say of the Veda, can teach the man highest lessons he has yet to learn to become a real man in the true sense of the word. Sanskrit is known as Devavak (Speech of Gods) and Amaravak (Immortal, Everliving). Those who call it dead are dead to truth. It is the speech of immortals ; those who study and speak it can become immortal. It is the speech of Gods ; those who study and speak it can become gods i.e. sages. It is the speech of the ever-living and the never-dying; those who study and use it can never die but live for ever. Our people fell when they, not knowing the beauty and glory and

grandeur of Sanskrit, began to neglect it. Sanskrit can not only unify India, that is torn to-day into thousand shreds, but the whole world, which too is torn to pieces into mutually respected freely co-operating and truth-justice-freedom adoring groups of godly men.

Man (Sanskrit, *man* to think, to reason) ought to be a thoughtful, wise, considerate and rational being. In contrast to this, the beast is given the name *pashu*, in Sanskrit, as it can see only what is out-side, and has not the power to see within and reflect, like a real man. Thus we see that one who-acts thoughtlessly cannot lay claim to the noble title and dignity of Man. We can call ourselves men only so long as we act wisely.

KALI-YUGA.

Judged by this standard man today cannot claim to be man in the real sense of the word. For, the modern man has systematically unmaned himself and reduced himself to a level lower than the brute. He has abused his reason and perverted his knowledge and learning : he is seen to put the vast resources at his command to evil unworthy ends. The Veda asks man to pray for "blessings put to worthy ends." but man today glories in turning his knowledge and power to unworthy ends. We are living in Kali-Yuga, the age of strife and folly, and not in Satya-Yuga, the age of truth, wisdom, reason and harmony. The reason is that we are not lead by reason but by folly; not by wisdom but by thoughtlessness, greed and lust.

SIGNIFICANT ROOTS

Why go so far back as the Vedas, even a few tiny Sanskrit root can teach man wonderful lessons to lead him on, from this Kal (dis-harmony) to Satya (Truth, harmony) Yuga the golden age of concord and wisdom.

Man-nam—Here is one pair of tiny roots which go to the very root of thought, and reveal a most valuable lesson for

(६५)

man to learn. This pair gives a reversal of sense with the reversal of letters. *Man*, to think; and *Nam*, to bend, tell us that to think is to bend-not, and to bend is to think-not.

In fact, the truth these two roots set before us is this. Thoughtless beings have to bend before thoughtful men; superior thought triumphs over inferior thought; a lack of thought it is which leads people to be enslaved by evil forces. Free robust original independent thought can raise us; and most of our misery is due to folly. India fell when she ceased to adore wisdom; when she lost the power of original thought, robust manly thought. If, now, India desires to rise and be free, she must cultivate the noblest of all arts, namely, the art of manly thought. Sturdy thought can make her sturdy. Independent thought can make her free, strong and happy. In other words, we must try to be men in the real sense of the word, ever striving to be considerate the thoughtful and wise. This is the first step.

REVERSAL OF SENSE

ii. *Pat-Tap*.—Next take this pair of tiny roots which also give a reversal of sense with the reversal of letters. *Pat* means fall and *Tap* means discipline. From this is revealed the truth that the un-disciplined people do surely fall. If robust thought is the first thing needed for rise the second thing absolutely necessary is discipline. Thus we learn from these two pairs of Sanskrit roots that if mankind want to shake off slavery they must encourage well-disciplined free robust thought among themselves; they must be thoughtful wise and disciplined, Wisdom and discipline are the two factors that make for true rise and advancement. Indeed in the absence of them real progress is unthinkable. Mankind should learn to adore these.

iii. *Ram-Mar*.—Now take this third pair of tiny roots. Here too a reversal of letters gives a reversal of sense. *Ram* means to rejoice, and *Mar* means to die. We can be said to

(६६)

live only so long as we rejoice and delight in our environment; for, we die the moment we cease to make the best of our life. People who cannot make the best of their life, races who cannot respond to the true joy of life, nations who are not buoyed up by the real delights of life, do but show the signs of decay and death. The bliss of a noble active well-disciplined wise life is indescribable. We must strive for it.

THE DESTINY OF MAN.

To some extent our destiny is in our own sincere will, desire and determination to make or *mar* our future. Those of us who believe in Punar Janma (Re-birth) say that our destiny is nothing but what we make of it. Others who believe in mere chance say that as chance gave us our life it will too determine our fate. But none can deny that sincere strong will and determination can achieve wonderful transformations in our life. The lives of almost all great sages hold forth one great lesson before mankind that, given strong will and sincerity, man can shape his destiny.

As we have already pointed out India fell when she ceased to prize sturdy thought and the joy of living a well-planned life of order and discipline. We must therefore learn to prize the same again. We must cherish and encourage free robust thought and a well ordered noble life of serious endeavour. The three pairs of Sanskrit roots, it will now be seen, go to the very root of our present day problems; they tell us *why* man has fallen and *how* he can rise. They tell us, moreover, that man's destiny rests to a large extent on his own effort and will. Indeed they contain a whole philosophy of life and destiny. They tell you how to achieve freedom for which every soul hungers. Are we sincere and determined to make mankind free? Then we must take these three. Sturdy Thought, Good Discipline, and a Wise Active Joyous Life, and make them the guiding principles of our life.

Hyderabad Bulletin,

Hindu Philosophy and Modern Sciences

[By—Rai Bahadur Ram Chandra M.A., P.E.S. Retired]

CHAPTER I.

MAN AND NATURE*

इदं सर्वं । कस्य स्वद्धनम् ? "All this: Whose Own Wealth?"

(Ish. Up. 1-1)

View point 1. Whose own wealth is this—the whole of Nature? Is Nature its own master? Or is Nature the wealth, the possession, the power of Some One Else? This is the problem to be investigated. There are so many divergent views about the nature of man and the material objects we see around us, that one who begins to think freely is almost lost in a kind of wilderness and he becomes a theoretical agnostic, though not a so called atheist. He becomes, however, at least outwardly, the follower of a certain set of views for all the practical purposes of his daily life and belief, and behaves like a theist in all matters, speaking in general. The best way to understand the view-point or position of another person is to place one-self in the position of that person. This, however, is not a very easy matter. The words person and position, although very common, have a peculiar significance of their own here, and, therefore, they require a little explanation.

Known To Unknown 2. One of the best methods of acquiring knowledge is the well known principle of proceeding from the Known to the Unknown. A person is, to us, an ordinary man or woman in his or her normal senses,

*The object of these contributions will be to consider whether nature, consisting of Conscious and Non-conscious entities of all kinds, is its own controller or has some Intelligent Controller at the helm as its Master and Governor.

a human being, a rational animal, having (i) a living body, (ii) a conscious mind or consciousness, and (iii) possibly what is called a soul in every day language. In other words a person or man in general is a compound entity having several components, constituents, or constituting aspects, each constituent or aspect having a number of attributes. In short a person is, like other entities, a collection of a very large number of attributes, known and unknown. If, however, one of the essential and distinguishing attributes be missing, the resulting entity will not be, in strictly exact language, the ordinary person or man, but something else.

Theory and Practice 3. We do not know the real nature of man; as a matter of fact some scientists and thinkers hold that with our present senses and other instruments of acquiring knowledge, we do not know and can not know the real nature of any thing in the absolute; but for all practical purposes we know a person as well as anything else, say an animal a tree, or an inanimate object. A person or a man is, therefore known to be essentially a living material body with innumerable attributes some of which we know directly by our senses, some others we infer by reasoning, and possibly many more which are said to be known neither directly by the senses, nor by inference, but by faith intuition, conscience, a higher kind of understanding perception, scriptural authority, call it by any name but the senses, the chief instruments of acquiring knowledge.

Possessor 4. A man is thus a conscious, intelligent and complex being (entity), who possesses certain attributes, and possibly a number of various entities, essentially differing in their very nature, i.e., whether the constituting

(३३)

entities are conscious or non-conscious. He is essentially a possessor, or owner or master of something in a restricted sense. His possessions which consist of collections of various attributes and of their complicated combinations and permutations, take various names and forms, say personal qualities, up-to-date knowledge, wealth, relations etc. etc. All these taken together may constitute not only his possession but may also determine what may be called his position in society or in the world. There is, therefore, little difference between position and possession. On this assumption, no two men are or can be exactly alike in all respects in this world so far as our knowledge goes, though they may resemble each other in certain respects only. Hence we find so many varieties of views which are held by different thinkers.

Resemblance of Views 5. How can one man, then, place himself into the position of another? One can do so only to a certain extent, and that, too, within numerous limitations, the object being to find out what one would think and do if one had the same amount of knowledge about certain things and almost the same environments as the other. This idea resembles, in a way, the idea contained in a well known proverb, "Do unto others as you would be done by", the implication being that your criticism and appreciation of the views of a person who thinks and acts in a certain manner, should be considerate and sympathetic, i.e., you should consider as to how you yourself would think and act in similar circumstances, in other words if you were placed in his position.

Investigation of Views 6. The remarks made in the preceding paragraphs are to be borne in mind when investigating truth in general, and especially when trying to ascertain the views of others on various topics, say 'man', 'life', 'body', 'mind', 'soul', 'matter', 'force', 'power', 'energy',

'world', 'universe', 'Nature', 'God', etc. etc., and their equivalents in other languages.

Man 7. Let us first try to find out what we mean by man. As a matter of fact every body knows what a man is for practical purposes or for mutual dealings; but very-few, if any, know the true nature of man. Physical science does not seem to throw much light, so far, on the ultimate, true or real nature of the so called inorganic matter, what to say of man, an extremely complex organic entity, where we have to deal with not only (i) matter, but also with (ii) life and (iii) consciousness in all its various states and stages.

World and Science 8. Science has made many discoveries in the phenomenal world, but it is the function of philosophy and metaphysics to deal with the noumena, the real nature of things. There are all sorts of theories and speculations about the origin, the true nature, the essence, the reality, and the ultimate Cause, if any, of the various facts and phenomena that we behold every day in the so called materiel world or inorganic Nature, and in our own transactions or doings, i. e. in organic Nature.

Scientific Theories 9. As regards scientific theories, a valuable extract from the Hindustan Times, New Delhi of Monday, 12th December, 1938, will go a long way to show what science has to say in this matter. This extract forms a valuable contribution by Sir S. M. Suleiman, to the 'Indian World', and is reproduced below for facility of reference later;—

- (a) "All scientific theories must in their very nature be mere speculations. Man can make only approximate guesses, necessarily wrong at first and certainly incomplete; and as further experience exposes his mistakes, he must give them up preferring other speculations. Such process

(१०१)

must go on continually, as the reality of Nature would ever elude his grasp. When one remembers that the Sun might have existed for eight million million years, the earth for two thousand million years, life on this earth for three hundred million years, and man himself for three hundred thousand years, the short period of a few thousand years during which human knowledge has grown is an infinitesimal fraction of time for knowing anything about the Reality of Nature”.

(b) **Limitation of Human vision.** That our scientific theories must of a necessity be uncertain would become patent, when one realises that according to calculation the radius of an electron may be five million millionth part of a centimeter, and the electron may be revolving round its nucleus several thousand million million times per second. If such is the extreme minuteness of its dimensions, it is impossible to be certain of its structure. Human vision is limited within a very narrow range, and there can be no knowing whether there are not even smaller worlds within such microscopic worlds, which may never be discovered by man”

(c) **Universe and Glaxies.** “The Sun is one million and three hundred thousand times the size of the earth, and yet this Sun of ours is but a tiny speck—a mere drop in the fathomless ocean of the universe. There may be some four hundred thousand million stars which are Suns in themselves forming our galactic system bounded by the milky way. The diameter of the milky way is so great that light travelling at the stupendous rate of 1,86,000 miles per second would take 2,22,000 years to travel from one end to the other; and beyond this huge galaxy of ours there are millions and millions of galaxies now revealed by the 100 inch telescope at Mt. Wilson and when the 200 inch telescope is ready, it will admit a million times light as much as an unaided eye. And yet our knowledge of

the Universe must unquestionably remain incomplete and uncertain. Our ideas must ever remain meagre, scanty and inadequate, and our scientific theories mere conjectures and speculations as to the Reality of the Universe. Of course imagination can go farther and farther and conceive larger and larger galaxies, but as our observation can never keep pace with our imagination, the uncertainty must ever remain."

- (d) **Einstein's Theory.** Science bristles with uncertainties and unrealities. Einstein's theory conceives of the entire space* as being finite and even within one's mental grasp. He has indeed calculated the radius of the entire space. Obviously it would be nothing short of presumptuousness on the part of man to attempt to measure the length and breadth of the Universe. The extreme limit of the Universe is a creation of imagination and can not be real.

Scientific theories can be pushed to any extreme. Eddington has boldly calculated the total number of electrons that exist in the whole Universe; but such a calculation cannot be taken at all seriously, nor can be believed to represent anything real."

- (e) **Relativity:**—"In Relativity, space and time are no longer treated as independent variables, but have been welded together so as to form a new kind of Space-Time with four dimensions. But as time is not commensurable with space, it has been given an imaginary and unreal unit, and the two combined to form a new hyper-space. Although denying the existence of any material medium or ether, Relativity attributes definite properties, for example, that of curvature to space, thus making it no longer bare void of old but having properties like a medium. *This new kind of space is boundless and limited and finite; it bends upon itself and gets ultimately closed up to form a finite domain.* Straight lines

* The reference is probably to Etherial space only and not to Hyper-space or Bishop Berkeleys' Ambient space.

go no longer straight but get curved and bending upon themselves return to their starting point. But this imaginary mathematical structure leaves it uncertain whether the imaginary curvature of space is positive, zero or negative. Relativists are not yet quite agreed among themselves about it. If it is a finite domain, what is beyond such space? According to Relativity, space is extending at a terrible rate. Indeed, the universe is in a state of terrible explosion. But what is this space expanding into? If it is expanding into non-space, then that non-space is the space according to classical notions. But the Relativists' reply is that this space-time of four dimensions is expanding into a space of five dimensions. This is nothing but a mathematical artifice, and neither has any physical sense nor can represent reality.

(f) **Practice and Theory:**—"One can not help feeling that these unconvincing conclusions are misinterpretation of Nature and really nothing more than artificial mathematical devices for expressing something very imperfectly understood. As the assumptions are approximately true, they give tolerably good results in practice, but not being rigorous nor exact, the philosophy based on them is irrational."

(g) **Wave mechanics and Electrons:**—"There is something still more mysterious in the modern theories about the nature of light. As Eddington has conceded, there is something radically wrong with the present fundamental conceptions of physics, and we do not see how to set it right. The modern conception of denying the existence of both matter and medium makes the propagation of waves through space utterly incomprehensible. The wave mechanics certainly gives good results but professedly does not attempt to give any physical idea of the structure of light. It has gone a step further and even annihilated matter. *An electron is supposed to be a train of waves stretching from infinity to infinity being any-*

where in this long train, its speed being known and position unknown. But once anyone tries to observe it with light, this infinite train instantaneously contracts to a zero point, the position becomes known but the speed becomes indeterminate. It is a wave group. It is a wave group continually moving, changing shape and spreading out, until an attempt is made to observe it when it contracts to a zero point."

(h) **Symbolic Representation of Light and Matter:—**

"Such wave of light or of an electron starting from a distant star would have spread out almost to immeasurable dimensions by the time it reaches the earth. So long as it has not hit anything, it has gone on expanding to an immense extent, but as soon as it hits some atom on the earth, this infinite train re-gathers itself and contracts to almost zero point in order to enter the atom. Such ideas appear to laymen grotesque and are nothing but symbolical representation of the behaviour of light and matter."

- (i) **Matter**—"Under modern theories matter has disappeared into something unsubstantial, the tangible has changed into the untangible, and the real into the unreal. Matter as now conceived is a group of infinite waves spreading out indefinitely and yet mysteriously gathering itself up and converging to a point when meeting another matter. These waves are not even waves of energy, but have been called mathematical waves of chance or probability, and some have called them even waves of knowledge or of ignorance. The fact is that they are not any real waves at all, but mere imaginary, artificial and fictitious waves, represented only by weird mathematical formulae involving imaginary quantities. It is impossible to picture these waves in one's mind, and being unreal, they cannot be located in space and time. Such in a nutshell is the hopeless state of modern science. One does not feel inclined to believe that such a false picture of Nature is in accord with

reality, and finds it difficult to concede that everything in the world is a mere solution of some mathematical equation and the observed natural phenomena nothing more than a mere mental concept of the mathematician. Modern sciences treat the phenomena in the Universe as mere expressions of mathematical formulae without any reference to physical characteristics, making not only their visual perception, but even the mental-picture of them, utterly impossible. We can not but regard them as mere mathematical devices which work temporarily as symbolical representations of known facts, but which can by no mean be a true interpreter of reality. *Indian World*.

Beginning and Ending of Universe 10. Modern Science now seems to assume that the Universe has a beginning as well as an ending. Eddington has written and spoken on this subject very distinctly. Some of his views may be reproduced below for facility of reference from his book the "Universe Around Us":—

- (a) **Creation of Matter:**—"All this makes it clear that the present matter of the Universe cannot have existed for ever; indeed we can probably assign an upper limit to its age of, say, some such round number as two hundred million million years. And, wherever we fix it, our next step in time leads us to contemplate a definite event, or series of events or continuous processes of creation of matter at some time infinitely remote. In some way matter, which had not previously existed, came, or was brought, into existence."

"If we want a concrete picture of such a creation, we may think of the finger of God agitating the ether".*

"We may think of space, time and matter being treated together and inseparably as a single system. Such a view is consonant not only

* See Chapter XI Voluntary activity or effect of volition on cosmic existence.

with ancient metaphysical theories, but also with the modern theory of Relativity".

"The Universe now becomes a finite picture whose dimensions are a certain amount of space, and a certain amount of time; the protons and electrons are streaks of paint which define the picture against its space-time background".

- (b) **End of Universe.** "Energy cannot run downhill for ever; and, like the clock weight, it must touch the bottom at last. And so the universe cannot go on for ever; a time must come when its last erg of energy has reached the lowest rung on the ladder of descending availability. And at this moment the active life of the Universe must cease. This energy is still there, but it has lost all capacity for change. We are left with a dead, although possibly a warm Universe—a heat death. Such is the teaching of modern thermodynamics. There is no reason for challenging or doubting it; and indeed, it is so fully confirmed by the whole of our terrestrial experience that it is difficult to see at what point it could be open to attack. It disposes at once of any possibility of a cyclic Universe in which the events, we see, are the pouring of river water into the sea; while events, we do not see, restore this water to the river. The water of the river can go round and round this way, just because it is not the whole of the Universe: something extraneous to the river cycle keeps it continually in motion—namely the heart of the Sun. But the Universe as a whole cannot so go round and round. Short of postulating action from outside the universe, the energy of the Universe, whatever this may mean, must continually lose availability; a Universe in which the energy has no further availability to lose would be dead already. Change can occur only in one direction which leads to the heat—death".

- (c) **Radiation.** A prism separates white sun-light into its constituent coloured lights. An alter-

(१००)

native instrument, the diffraction grating, analyses light into its constituent wave-lengths, and these are found to correspond to the colours of the rainbow. The wave length in a system of ripples is the distance from the crest of one ripple to that of the next, and the term may be applied to all phenomena of an undulatory nature."

Man and Universe 11. We have thus got some idea of what we understand, only to a certain extent, by man and the Universe, the former being the owner or master of a living body (conscious) and a large number of other things, both intelligent and non-intelligent, and the latter being the sum total of an infinite number of galactical Universes including an infinite number of all sorts of things, both conscious (intelligent) and not-conscious (non-intelligent).

Now the question is whether the so-called master or owner in the case of man is identical with the living body in all its aspects—physical, vital, psychical etc., or some entity distinct from and external or additional to the living body. This question closely resembles a similar query about the master or owner in the case of the Universe, *viz.* whether the master is identical with the galactical Universes, taken as a whole as one, called Nature, or some entity distinct from and external or additional to the Universe.

Before starting with a consideration of this difficult problem, a reference may be made to a well-known Skt. Proverb, *viz.*, " यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे " as in the body, so in the Universe, the implication being that if the body has an owner, the Universe too, has one. This brings us to the quotation heading this Chapter, "Whose own wealth is all this, the whole of the Universe?"

The solution of this problem depends on the production of wealth or the question of causes and effects, which will form the topic of the next Chapter.

His Majesty's Order Ignored by Census Authorities.

Great Injustice Done to Hindus.

Number of Hindus Greatly Reduced.

(By—Babu Kalika Prasad, M.A.B.L., Ranchi.)

After the Round Table Conference, His Majesty in Council framed the Government of India Scheduled Castes (Order in 1936), according to the provisions of the Government of India Act 1935 at the court of Buckingham Palace on the 30th of April 1936. This Order contains lists of the Scheduled castes of the different Provinces of India.

According to this order of His Majesty, the Bhuiyas of the District of Palamou, and Purnea, Gaya, (Patna Dn.) etc. in Bihar were included in the list of the Scheduled castes, but curiously enough this order was not heeded by the Census Authorities and in their Instruction Book issued for Hazaribagh, Palamou, Gaya, Sadar Sub Division of Purnea District, and the Native States of Surguja, Chhambhakar, Korea and Udaipur the Bhuiyas were included as Aboriginies. The Government of Bihar also by their Notification published in the Bihar Gazette Part II dated 12th October 1938 have shown the Bhuiyas in the list of the Scheduled castes for the entire Chotanagpur Division and have in the same Gazette given a separate list of the Aboriginies in which 33 different castes are included.

It is a matter of great regret that inspite of the Order in Council of His Majesty as well as inspite of the lists issued by the Bihar Provincial Government the Provincial Census Authorities arbitrarily have included the Bhuiyas among the Aboriginies in their Instruction Book issued by them for the Districts of Hazaribagh, Palamou, Gaya etc.

The whole facts are now placed before the Public and the attention of the Government is also drawn to this glaring injustice done to the Hindus as by such action of the Census Authorities the number of the Hindus have been greatly reduced. So the Census figure in the matter of the recording of the Hindus can never be regarded as correct and unimpeachable but is ever liable to be challenged by the Hindus as incorrect. It is therefore expected that the authorities concerned should give a statement on the point raised for the satisfaction of the public.



आवश्यक सूचना

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सिद्धांतशास्त्री आदि धार्मिक परीक्षाओं में सम्मिलित हुए परीक्षार्थियों का परीक्षाफल अप्रैल के द्वितीय सप्ताह तक घोषित कर दिया जावेगा, परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की सूची प्रत्येक केन्द्र के केन्द्राध्यक्ष के पास भेज दी जावेगी। परीक्षार्थियों को अपना २ परीक्षाफल अपने अपने केन्द्राध्यक्ष से मालूम कर लेना चाहिए।

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्

आपको यह जान कर हर्ष होगा कि भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष कुछ धार्मिक परीक्षाएँ ली जाती हैं, जिनमें छोटे बच्चों से लेकर प्रौढ़ आयु वाले स्त्री पुरुषों तक सभी सम्मिलित हो सकते हैं। ये परीक्षाएँ दिन प्रति दिन अब इतनी लोकप्रिय हो रही हैं कि देश के प्रायः सभी प्रान्तों से अब इन परीक्षाओं में प्रतिवर्ष हजारों आर्य कुमार व कुमारियाँ सम्मिलित होती हैं।

इन परीक्षाओं की पाठविधि आपने देखी ही होगी, आगामी वर्ष से विचार है कि इन परीक्षाओं को अत्यधिक उपयोगी, शिक्षाप्रद और आचार निर्माण करने वाली बनाने के लिये, इनमें कुछ आवश्यक परिवर्तन किये जावें, जिससे ये परीक्षाएँ आर्य समाज के प्रचार के दृष्टिकोण से अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकें।

मैं आर्य विद्वानों और आर्य पुरुषों से प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके कुछेक परिवर्तन सुझाने का कष्ट कर कृतार्थ करें। आपके इस कष्ट के लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँगा। परिवर्तन सम्बन्धी सब विचार इस मास में होने वाली परीक्षा समिति की बैठक में रखे जादेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप उससे पूर्व अपनी अमूल्य समिति भेज कर कृतार्थ करेंगे।

—देवव्रत धर्मन्द

टोंक में तबलीगी कार्य

हमारे पास टोंक स्टेट से सूचना प्राप्त हुई है कि स्टेट की ओर से एक 'शरह शरीफ' नामक महकमा बना हुआ है जिसके द्वारा वहां हिन्दुओं को उचित व अनुचित रीति से मुसलमान बनाने का कार्य किया जाता है।

वैसे हर एक धर्म वालों को अधिकार है कि अपने धर्म का प्रचार करें और लोगों को अपने धर्म के सिद्धान्तों की विशेषता बताकर अपने धर्म में लाने का यत्न करें। परन्तु यही कार्य जब किसी स्टेट की ओर से किया जाता है तो यह एक प्रकार का अत्याचार और अन्याय है।

टोंक स्टेट राजपूताना में है और इसकी जन-संख्या में हिन्दू प्रजा की ही संख्या अधिक है। स्टेट के कोष में जो धन जाता है उसका अधिकांश भाग हिन्दुओं द्वारा ही जाता है। ऐसी दशा में उस धन को मुसलमानों की संख्या वृद्धि में व्यय करना कहां तक उचित है यह स्पष्ट है।

हमारे पास जो सूचना आई है उससे तो यह ज्ञात होता है कि यह भी नहीं कि धर्मोपदेशकों द्वारा प्रचार कराया जाता हो, बल्कि भूले भटकें स्त्रियों और बच्चों को फँसा कर अलोभन देकर और अनुचित दबाव डालकर स्टेट के अधिकारी वर्ग उन्हें मुसलमान बनाने का कार्य करते हैं।

हम टोंक के नवाब साहब की सेवा में अत्यन्त नम्र परन्तु जोरदार शब्दों में निवेदन करते हैं कि कृपाकर इस ओर ध्यान दिया जाय और इस प्रकार होने वाले अन्याय को रोका जाय। अन्यथा प्रजा में वह असन्तोष उत्पन्न होगा कि जिसका सम्हालना कठिन हो जायगा।

किसी भी सरकार को उचित नहीं कि वह धर्म प्रचार का कार्य करे। आस पास राजपूताने में ही अनेकों हिन्दू रियासतें हैं, सौभाग्य से उनकी प्रजा भी अधिकांश हिन्दू ही है तथापि किसी भी हिन्दू रियासत में ऐसा कोई महकमा नहीं है जहां मुसलमानों या ईसाइयों को हिन्दू बनाने का कार्य किया जाता हो। राजपूताना भर की तमाम हिन्दू रियासतों की यही नीति है कि वे धार्मिक मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं करते। एक केवल टोंक स्टेट ही ऐसी है जिसके शासक मुसलमान इस्लाम धर्मानुयायी हैं और 'शरह शरीफ' का महकमा बनाकर हिन्दू प्रजा द्वारा कर रूप में प्राप्त धन से उसी के विरुद्ध मुसलमानी धर्म का प्रचार कराती है।

इस अनुचित कार्यवाही का स्थान २ से तीव्र विरोध होना चाहिये और भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित कराना चाहिये जिससे कि यह अन्याय पूर्ण कार्य रुके।

भगवान स्वरूप 'न्याय भूषण' मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान व मालवा अजमेर।

लोहारू कांड

प्रत्यक्ष दर्शी का वयान

पं० धर्मवीर जी वेदालङ्कार मन्त्री श्रद्धानन्द मेमोरियल ट्रस्ट और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक श्री पं० समरसिंह जी वेदालङ्कार ने लोहारू से वापिस आने पर प्रेस को निम्न वक्तव्य दिया:—

“हम लोहारू आर्य समाज के उत्सव में आमंत्रित किए गए थे। सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली (इन्टर नेशनल लीग) के कार्य कर्ता प्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज इस उत्सव का नेतृत्व करने के लिये बुलाए गए थे। स्थानीय कार्य कर्ताओं ने पहले नगर कीर्तन और उनका जलूस निकालना स्थगित कर दिया था क्योंकि रियासत की पुलिस ने उसकी रक्षा की जिम्मेवारी नहीं ली थी। बाद में रियासत के अधिकारियों ने जलूस और नगर कीर्तन को निकालने की प्रेरणा की और पुलिस ने एक खास सड़क पर जलूस के निकाले जाने की शर्त पर उसकी रक्षा की गारण्टी दी।

६ बजे सायं लगभग रेल द्वारा स्वामी जी के आते ही पुलिस के पहरे में जलूस प्रारम्भ हुआ। जलूस थोड़ी ही दूर गया था कि मुस्लिम गुण्डे सामने आ गए और जलूस को घेर कर अकारण ही जलूस वालों पर लाठियों से अन्धाधुन्ध वर्षा करने लग गए लोहारू शहर के लोगों से मालूम हुआ कि इस आक्रमण में बिना वर्दी पहने पुलिस और फौज के आदमी भी शामिल थे और इनके अतिरिक्त पटवारी, लम्बरदार आदि भी भाग ले रहे थे। स्थानीय आर्य समाज के अग्रणी और अतिथि ही विशेष रूप से आक्रमण का लक्ष्य बनाए गए। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, भक्त फूलसिंह जी, पं० जयप्रकाश जी, चौ० नौनन्दसिंह जी स्वामी केवलानन्द जी तथा १० और व्यक्तियों के सख्त चोटें आईं। लगभग ३० आदमियों के साधारण चोट आई हैं जिनमें हम दोनों महाशय बद्रीप्रसाद जी और पं० बीरेन्द्र जी (आर्य समाज दीवान हाल) आदि हैं। स्वामी जी, पं० जयप्रकाश जी तथा श्री हरिगोविन्द भार्गव जी को देहली ले आये हैं और वे श्विन् हस्पताल में दाखिल कर दिये गये हैं।

७ जखमी व्यक्ति रिवाड़ी के सिविल हस्पताल में प्रविष्ट कराए गए हैं। भक्त

फूलसिंह जी, चौ० नौनंदसिंह जी और कुछ अन्य व्यक्ति लापता हैं और अभी तक पता नहीं वे कहां हैं। रियासत के हिन्दू भयभीत हैं और आर्य समाज का उत्सव बन्द कर दिया गया है।

सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सहायक मंत्री श्री पं० ज्ञानचन्द जी सूबेदार टेकचन्द के साथ १ एप्रिल को लोहारू गए और ३ एप्रिल के प्रातः भक्त फूलसिंह जी, ठा० नौनंदसिंह जी और गोहारसिंह को लेकर देहली लौट आए। इन तीनों सज्जनों को राज्य की पुलिस २६ मार्च के आक्रमण के बाद राज्य के हस्पताल में ले गई थी।

लोहारू में पंडित जी ने दीवान साहब से भेंट की और लगभग दो घंटे तक बातचीत होती रही। दीवान साहब पंजाब के रिटायर्ड पी. सी. एस. हैं और उन्हें आर्य समाज का अच्छा परिचय है। उन्होंने ध्यान और सहानुभूति के साथ पंडित जी की बातें सुनी। पंडित जी ने इस कांड पर भारत के आर्यसमाजियों और हिन्दुओं की भावनाओं से दीवान साहब को अवगत किया। दीवान साहब ने पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करके घटना का सरकारी पत्र पंडित जी को दिया। बाद में पंडित जी घटना स्थल पर गए और स्थानीय व्यक्तियों से मिलकर बातचीत की। भक्त फूलसिंह और गोहारसिंह इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट कर दिये गए हैं।



लोहार काण्ड

लोहार के दुखद काँड से आर्य जगत् में दुख और रोष का व्याप्त हो जाना स्वाभाविक था क्योंकि वहाँ आर्य समाज के शान्त और धार्मिक जल्स पर मुस्लिम गुण्डों ने अकारण ही अमानुषिकता पूर्ण आक्रमण किया जिसके फल स्वरूप ४० आर्य भाइयों के चोटें लगी हैं जिनमें से १४ सख्त घायल हुए हैं। इन घायलों में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्य-कर्त्ता प्रधान श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रा नन्द जी तथा भक्त फूलसिंह जी जैसी ऊँची स्थिति के आर्य सज्जन हैं। इस समय तक आर्य जगत् से जो समाचार हमें प्राप्त हुए हैं अथवा हमने समाचार पत्रों में पढ़े हैं उनसे विदित होता है कि इस काण्ड से आर्य जगत् की आत्मा कांप गई है।

लोहार पँजाब के हिसार जिले की एक छोटी सी रियासत है। इसके शासक मुसलमान हैं, इसकी कुल जन संख्या २३३८३ तथा वार्षिक आय एक लाख २६ हजार के लगभग है। यहां की आबादी में ७५ प्रतिशत हिन्दू हैं। इतनी छोटी रियासत होते हुए भी यह अपनी बद इन्तजामी के लिये पर्याप्त बदनाम है। सन् १९३६ की दुर्घटना अभी तक भूली नहीं गई थी जिसमें निहत्ती हिन्दू प्रजा पर राज्य के कारिन्दों द्वारा अमानुषिक अत्याचार हुए थे और राज्य के कर्मचारियों की गोलियों का निशाना बनकर कई व्यक्ति मर गए थे। अब २६ मार्च को लोहार में एक दूसरी उपर्युक्त दुर्घटना हो गई है। इससे भी राज्य की बद इन्तजामी और भी अधिक स्पष्ट हो गई है।

लोहार राज्य में हिन्दुओं की संख्या जितनी अधिक है उतनी ही कम उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है। यहाँ कुछ दिन पूर्व तक हिन्दू विधवाओं तक पर राज कर लगा हुआ था। कहा जाता है एक बार एक स्कूल टीचर ने एक सनातनी पण्डित को बुलवा कर मन्दिर में उपदेश कराया। इससे राज कर्मचारियों में खलबली मच गई। उस बेचारे स्कूल टीचर को इस अपराध में नौकरी से हाथ धोना पड़ा। ऐसी स्थिति में आर्य समाज के प्रति रियासत का रवैया कैसा हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। आर्य समाज के कार्य में समय समय पर रुकावटों द्वारा राज का यह रवैया व्यक्त होता रहा है। हैदराबाद सत्याग्रह

(११४)

काल में स्टेशनों पर सत्याग्रहियों का स्वागत करने वाले आर्य भाइयों पर अत्याचार किए जा चुके हैं।

२६ और ३० मार्च आर्य समाज के प्रथम वार्षिकोत्सव के लिए नियत का गई। यहां सन् १९४० से आर्य समाज स्थापित है।

समाज के कार्य को निरुत्साहित करने के लिए राज्य की ओर से छिपे छिपे वा प्रकट रूप से अनेक यत्न किये गये। समाज के कार्य कर्त्ताओं को समाज के कार्य के लिए अपनी राज की नौकरियों से भी हाथ धोना पड़ा। परन्तु येन केन प्रकारेण समाज का कार्य होता ही रहा। इस उत्सव पर आर्य समाज मन्दिर की आधार शिला रखने का भी निश्चय किया गया। आर्य समाज के निमंत्रण पर श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, भक्त फूलसिंह जी, श्रद्धानन्द ट्रस्ट के मंत्री पंडित धर्मवीर वेदालङ्कार, पण्डित समरसिंह वेदालङ्कार पंडित नौनंद सिंह जी, म० जय प्रकाश धनुर्धर, पुरोहित व भजनोपदेशक आर्य समाज दीवान हाल, म० बट्टी प्रसाद जी इत्यादि सज्जन देहली, हरियाना प्रान्त आदि से २६ ता० को लोहार पहुंचे। आर्य समाज के कार्य कर्त्ताओं ने नगर कीर्तन की आज्ञा मांगी जो राज्य ने दे दी। परन्तु बाद में इस बहाने से कि लोहार की जनता ने इस आज्ञा के विरुद्ध शिकायत की है, राज्य ने इस आज्ञा में परिवर्तन कर दिया। नगर कीर्तन व जलूस के लिए जो रास्ता दिया गया, उसका नगर से कोई सम्बन्ध न था अतः आर्य समाज के प्रबन्धकों ने समझा कि ऐसे नगर कीर्तन की आज्ञा लेना न लेना बराबर है जबकि शहर में प्रचारार्थ प्रविष्ट होने की मनाई है। इस पर समाज के जिम्मेवार कार्य कर्त्ताओं का एक डेपुटेशन २६ ता० को राज्य के दीवान से नगर कीर्तन को आज्ञा के लिये मिला। इस डेपुटेशन ने दीवान साहब से राज्य के आर्य समाज के प्रति रवैए की भी शिकायत की और उनको कहा कि राज्य ने जनता को उत्सव में भाग न लेने की जो प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से मनाही की है वह उठाली जाय और उत्सव में भाग लेने की जनता को स्वतन्त्रता दी जाय क्योंकि उत्सव में बाहर का तो क्या शहर के भी व्यक्ति भय के कारण सम्मिलित नहीं हुए थे। परन्तु डेपुटेशन को दीवान साहब की ओर से जो उत्तर मिला वह सन्तोष जनक न था फलतः कार्य कर्त्ताओं ने उत्सव की कार्यवाही श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के आने तक स्थगित रखने की घोषणा कर दी।

४, ५ घण्टे तक कार्यवाही स्थगित रहने के बाद और श्री स्वामी जी के आगमन से पूर्व लोहार राज्य के दीवान साहब की ओर से तहसीलदार और पुलिस इन्स्पेक्टर साहब लगभग २५ पुलिस के सिपाहियों के साथ स्टेशन पर आए और उन्होंने समाज के जिम्मेवार प्रबन्धकों से आग्रह पूर्वक कहा कि दीवान साहब ने अब हुक्म दिया है कि आप नगर कीर्तन व जलूस शहर में से निकाल सकते हैं। पुलिस का प्रबन्ध जलूस की रक्षा के लिए रहेगा। इत्यादि। प्रबन्धकों

(११५)

को नगर कीर्तन व जलूस निकालने के लिए पुलिस इन्स्पेक्टर ने प्रबल प्रेरणा की यद्यपि वे अपना विचार छोड़ चुके थे । उनकी प्रबल प्रेरणा के परिणाम स्वरूप आर्यसमाज के जिम्मेवार कार्यकर्ताओं ने नगरकीर्तन का आयोजन किया । इतने में २६ की शाम को ६ बजे श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज ट्रेन से आगए । आर्यसमाज का जलूस उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर मौजूद था । अधिकारियों की आज्ञा पर नगरकीर्तन निकाला गया । पुलिस का इन्स्पेक्टर तथा पुलिसमैन साथ थे । शहर में प्रविष्ट होने से पहले एक बार जलूस को रोका गया । दूसरी बार थाने के सामने दोबारा रोका गया । वहां लाठियों कुल्हाड़ियों और फरसियों से सुसज्जित २००, २५० के लगभग मुसलमान खड़े थे । पुलिस इन्स्पेक्टर ने उन्हें कहा कि नगरकीर्तन को रास्ता दे दो । उन्होंने उत्तर में आवाज बुलन्द की और कहा हम रास्ता नहीं देंगे । इस पर पुलिस इन्स्पेक्टर ने कहा आप इस रास्ते को छोड़कर दूसरी गली से जलूस ले जाय । जब जलूस गली में मुड़ा तो उस मुस्लिम भीड़ ने पीछे से हमला कर दिया । सामने से भी कुछ मुसलमानों ने आक्रमण किया और मकानों पर से ईंट पत्थर फेंके गए । आक्रमण का अधिक जोर स्वामी जी पर था । वे पहले तो अपनी लाठी से बार रोकते रहे परन्तु जब लाठी टूट गई और उनके सिर और हाथ में चोट आई तो वे गिर पड़े । परन्तु तत्काल ही संभल गये । उनके साथ भक्त फूलसिंह जी भी थे । उनके भी सख्त चोट आई । भजनीकों के भी सख्त चोट आई । कुल ४० व्यक्ति जखमी हुए बताये जाते हैं । यहाँ नगर कीर्तन बन्द कर दिया गया और सब के सब रेलवे स्टेशन पर आ गए । भक्त फूलसिंह नौनन्दसिंह और गहरसिंह बेहोश होकर गिर पड़े । उन्हें पुलिस उठा कर लोहार के अस्पताल में ले गई । स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी जयप्रकाश जी तथा अन्य व्यक्ति देहली पहुँचे । वहां उन्हें इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट किया गया है । लगभग ७ व्यक्ति रिवाड़ी के हस्पताल में प्रविष्ट किए गये थे । अब सब जखमियों की हालत सन्तोष जनक रीति से सुधर रही है । श्री भक्त फूलसिंह जी तथा नौनन्दसिंह जी भी इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट कर दिए गए हैं ।

यह तो स्पष्ट ही है कि आर्यसमाज का नगरकीर्तन न केवल पुलिस की सहमति से बल्कि उनकी स्पष्ट प्रेरणा पर उनके पहरे में निकला था । यह आक्रमण पुलिस स्टेशन के पास हुआ । यह भी कहा जाता है कि बिना बर्दी में पुलिस और मिलिटरी के लोग भी आक्रमण में सम्मिलित थे । पुलिस ने न केवल आर्य भाइयों की रक्षा ही नहीं की बल्कि सुनते हैं कि वे इस आक्रमण पर हँसते भी रहे । मुस्लिम बलवाइयों को थाने के निकट क्यों एकत्र होने दिया गया अथवा उन्हें काबू में क्यों नहीं रखा गया जबकि राज कर्मकारियों को पहले से ज्ञान था कि शहर में उत्तेजना फैली हुई है । आक्रमण से जलूस की रक्षा क्यों नहीं की गई ? ये प्रश्न हैं जिनसे इस दुर्घटना में पुलिस का हाथ होने का संदेह होता है । लोहार में आर्यों को दुकानों से

(११६)

दूध तक प्राप्त न हो सका पानी के लिए ।) तक में घड़ा मुयस्सर न हो सका । इन घटनाओं और व्यवहारों से भी प्रतीत होता है कि राज्य की ओर से उत्सव के विरुद्ध अन्दर २ आन्दोलन हुआ था ।

सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री श्री पं० ज्ञानचन्दजी लोहार गए थे और वहां दीवान साहब से मिले थे । राज्य का इस घटना पर जो पक्ष है वह श्री पं० जी को दिया गया और उन्होंने आर्यसमाज की जो भावना इस कांड के सम्बन्ध में है उससे दीवान साहब को परिचित कराया ।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस घटना को हुए आज इन पंक्तियों को लिखते समय तक लगभग १ सप्ताह होता है परन्तु लोहार राज्य की ओर से न तो इस घटना पर कोई वक्तव्य प्रकाशित हुआ है और न पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रगट की गई है ।

आर्यसमाज की अब दो मांगें हैं । एक तो यह कि इस काण्ड की निष्पत्ति से जाँच की जाय और अपराधियों को समुचित दण्ड दिया जाय और दूसरी यह है कि लोहार में आर्यसमाज का उत्सव पूरी शान से किया जाय । लोहार आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत है । उसने यह मामला अपने हाथ में ले लिया है और कार्य द्रुतगति से प्रारंभ हो गया है । यदि आर्यसमाज की ये मांगें स्वीकृत नहीं होती हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि स्वयं लोहार का राज्य एक विषम स्थिति उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार होगा । आर्यसमाज न्याय चाहता है । वह उसे मिलना चाहिये और इससे कम पर वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता ।

जब हम पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा अन्य आर्य भाइयों को ईंटों, पत्थरों लाठियों और कुल्हाड़ों के प्रहारों के मध्य पूर्ण अहिंसा व्रत पर दृढ़ खड़े रहने के अप्रत्यक्ष दृश्य की कल्पना करते हैं तो सचमुच हमारा मस्तक श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता है, और हम सोचने लग जाते हैं कि आर्यसमाज का मार्ग बड़ा दुरूह है और इस सभ्यता और प्रकाश के काल में धार्मिक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात क्यों किया जाता है । परन्तु दूसरे ही क्षण हमें इस विश्वास से सांत्वना मिल जाती है कि सत्य का मार्ग वास्तव में कठिन ही है और इसको प्रशस्त बनाने के लिये कौनसा त्याग और बलिदान है जो उसके उपासकों को नहीं करना पड़ता । समय आता है जब अत्याचार न्याय में, कठोरता प्रेम में और सन्देह विश्वास में परिणित हो जाता है ।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित

जगत प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री

घोखे से बचने के लिये आर्यों को

बिना वी० पी० भेजी जाती है ।

पहिले पत्र भेज कर ५- नमूना फ्री मंगालें

नमूना पसन्द होने पर आर्डर दें

अगर नमूना जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेज दें

अन्यथा

कूड़े में फेंक दें

फिर

मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं ।

क्या

इससे भी बढ़ कर कोई सच्चाई की कसौटी हो सकती है ।

भाव ॥) सेर, ८० रुपये भर का सेर

थोक ग्राहक को २५) प्रति सैकड़ा कमीशन ।

मार्ग-व्यय ग्राहक के जिम्मे

स्वामी दयानन्द कृत मत्पार्थ प्रकाश ॥) और संस्कार विधि ८) में मिलती है ।

परन्तु पुस्तकों का मूल्य मार्ग व्यय सहित पेशगी भेज दें ।

रामेश्वरदयालु आर्य पो० अमोली, फतेहपुर (यू०पी०)

हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१-ईराक की यात्रा—लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसल्मान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाईं इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २)

२-मेरी अवीसीनिया यात्रा—लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किस कूटनीति से अवीसीनिया की सीमा पर भगड़ा कर अवीसीनिया को इड़प लिया आंख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

३-हमारी जापान यात्रा—इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्वकी अवस्था के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल ॥)

पुस्तक मिलने का पता:—

बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठाकुर अर्दली बाजार
गाँदा (यु० पी०) जी० आई० पी० रेलवे ।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा
“चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस”, श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित ।

